TE|SF India
Transforming Education for Sustainable Futures

टीईएसएफ इंडिया शोध रिपोर्ट

सितंबर 2021

शिक्षा, आजीविका और स्वास्थ्य पर कोविड-19 का असर

संस्तुत साइटेशन : Batra, P., Bazaz, A., Shanmugam, A., Ranjit, N., Kaur, H. and Das, R. (2021). Impact of the COVID-19 Pandemic on Education, Livelihoods and Health. Bengaluru: TESF India, IIHS
DOI: https://doi.org/10.24943/SASCA02.2022

प्रकाशन वर्ष : 2021

आभार : टीईएसएफ इकॉनॉमिक ऐण्ड सोशल रिसर्च काउंसिल (यूके) से मिली आर्थिक सहायता के लिए उनका आभारी है (अवार्ड शीर्षक : 'यूकेआरआई जीसीआरएफ ट्रांसफॉर्मिंग एजुकेशन सिस्टम्स फॉर सस्टेनेबल डेवलपमेंट (टीईएस4एसडी) नेटवर्क प्लस')।

यह दस्तावेज CC BY-NC-SA Internation 4.0 License के अंतर्गत प्रकाशित किया गया है।

Attribution-NonCommercial-ShareAlike 4.0 International

इस लाइसेंस के माध्यम से दूसरों को गैर-व्यावसायिक उद्देश्य से इस दस्तावेज में निहित पाठ का पुनर्विश्लेशण करने, उसमें काट-छांट करने और उसके आधार पर कोई नई बात कहने की छूट देता है। इस छूट के आधार पर जो भी रचना सामने आएगी, उसमें इस दस्तावेज के लेखकों का उल्लेख जरूर हो और वह रचना गैर-व्यावसायिक हो। साथ ही, इस दस्तावेज के आधार पर तैयार होने वाली कोई भी डेरिवेटिव यानी व्युत्पन्न कृति भी इस लाइसेंस की शर्तों के अनुसार ही उपलब्ध करानी होगी।

इस दस्तावेज में जो तस्वीरें और छवियां प्रस्तुत की गई हैं वे इस लाइसेंस से बाहर हैं। इनका अधिकार मूल कलाकार के पास सुरक्षित है।

शोध टीम
दिल्ली : पूनम बत्रा, आमिर बज़ाज़, रुचिरा दास, ऐश्वर्या रतीश, श्रीमानसी कौशिक
बेंगलुरू : आमिर बज़ाज़, पूनम बत्रा, निहाल रंजीत, हरप्रीत कौर
त्रिची : पूनम बत्रा, आमिर बज़ाज़, अनीशा शनमुगम, श्रीमानसी कौशिक

आभार
संपादन : आईआईएचएस वर्ड लैब
डिजाइन व लेआउट : आईआईएचएस कम्यूनिकेशंज़ एंड डिज़ाइन टीम
ऑडियो-विजुअल कॉन्टेंट : आईआईएचएस मीडिया लैब
त्रिची के साक्षात्कारों का ट्रांस्क्रिप्शन : के नंदिनी
अनुवाद : योगेंद्र दत्त
संपादन (हिंदी) : समीक्षा रोहिल्ला

तस्वीरों हेतु आभार
कवर चित्र : शोधकर्ता के व्यक्तिगत संग्रह से
चित्र 1 आईआईएचएस जियोस्पेशल लैब से
चित्र 2 अमेरिकन इंडिया फाउंडेशन से
चित्र 3 दि प्रिंट, 2021 से
चित्र 4 सीएनएन, 2021 से
चित्र 5 आईआईएचएस मीडिया लैब से
चित्र 6 आईआईएचएस मीडिया लैब से
चित्र 7 pxhere से
चित्र 8 pxhere से
पिछले कवर की तस्वीर विकीमीडिया कॉमन्स से।

संपर्क
batra.poonam@gmail.com
pbatra.tesf@iihs.ac.in
TESF India website: https://www.tesfindia.iihs.co.in/

विषय सूची

सारांश……………………………………………………………………………………………3
संकेताक्षरों की सूची……………………………………………………………………………...5
भूमिका………………………………………………………………………………………...7
दिल्ली : स्कूली शिक्षा………………………………………………………………………...10
अध्ययन का उद्देश्य और शोध प्रक्रिया…………………………………………………………...10
नतीजे……………………………………………………………………………………...12
शैक्षिक प्रावधानों एवं प्रक्रिया पर लॉकडाउन का फौरी असर……………………………………..12
डिजिटल शिक्षा की चुनौतियां……………………………………………………………….14
स्कूलों के बंद होने का व्यवस्थागत प्रभाव……………………………………………………...22
निष्कर्ष और मुख्य सीख……………………………………………………………………...26
अध्यापकों की स्वायत्ता का खात्मा…………………………………………………………….27
जेंडर संबंधी चिंताएं…………………………………………………………………………28
मानसिक स्वास्थ्य के प्रति हिकारत का रवैया……………………………………………………30
नवउदारवादी एजेंडा पर जोर………………………………………………………………...31
बेंगलुरूः उच्च शिक्षा……………………………………………………………………………34
अध्ययन के उद्देश्य और शोध प्रक्रिया…………………………………………………………..35
नतीजे……………………………………………………………………………………...37
कोविड-19 और लॉकडाउन से उच्च शिक्षा पर पड़े प्रभाव…………………………………………...37
मौजूदा असुरक्षाओं में इज़ाफ़ा……………………………………………………………...42
उच्च शिक्षा संस्थानों एवं अध्यापकों की प्रतिक्रिया……………………………………………..46
निष्कर्ष और मुख्य सीख……………………………………………………………………...48
सामाजिक बेदखली और असमानताएं…………………………………………………………..49
उच्च शिक्षा का कॉमोडिफ़िकेशन……………………………………………………………...50
त्रिची : आजीविका…………………………………………………………………………...55
अध्ययन के उद्देश्य और शोध प्रक्रिया…………………………………………………………..56
नतीजे……………………………………………………………………………………...59
लॉकडाउन का फौरी असर…………………………………………………………………...59
हालात से निपटने की कोशिशें………………………………………………………………..62
स्वयं सहायता उपाय………………………………………………………………………...63
सरकारी उपाय ……………………………………………………………………………63
नागर समाज की कोशिशें……………………………………………………………………65
लॉकडाउन की पाबंदियों का निरंतर प्रभाव……………………………………………………..69
निष्कर्ष और मुख्य सीख……………………………………………………………………...72
निष्कर्ष………………………………………………………………………………………...78

सारांश

भारत सरकार ने कोविड-19 वायरस के संक्रमण को फैलने से रोकने के लिए मार्च 2020 के तीसरे हफ़्ते में पूरे देश में अचानक और सख्त लॉकडाउन लागू कर दिया था। इस फैसले को जिस तरह लागू किया गया, उससे भारतीय शिक्षा व्यवस्था और शहरी सामाजिक सुरक्षा तंत्र की कमियां व कमज़ोरियां खुलकर सामने आ गयी हैं। लॉकडाउन के फलस्वरूप देश भर के स्कूल व उच्च शिक्षा संस्थान बंद कर दिये गये और शहरों व कस्बों की तमाम आर्थिक गतिविधियां पलक झपकते ठप पड़ गयीं। इससे विद्यार्थियों और शहरी अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में काम करने वाले करोड़ों मज़दूरों पर बहुत गहरा असर पड़ा है।

प्रस्तुत शोध में हमने भारतीय समाज के सबसे हाशियाई तबकों की शिक्षा, आजीविका और स्वास्थ्य पर कोविड-19 महामारी और लॉकडाउन के प्रभावों को समझने की कोशिश की है। इस शोध के लिए देश के तीन प्रमुख शहरों को चुना गया। दिल्ली में हमने स्कूलों के बंद होने से पैदा हुई स्थितियों का जायज़ा लिया है। बेंगलुरू में उच्च शिक्षा संस्थानों के बंद होने के परिणामों पर शोध किया गया है जबकि तिरुचिरापल्ली (त्रिची) में हमने इस बात का अध्ययन किया कि आमदनी खत्म हो जाने से अनौपचारिक अर्थव्यवस्था के मज़दूरों की जिंदगी पर किस तरह के असर पड़े हैं। इस शोध से हमें ये समझने का भी मौका मिला कि जिन तबकों का अध्ययन किया गया, उनके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर क्या असर पड़े हैं। हमने इस बात का भी जायज़ा लिया कि इस गहरे आर्थिक संकट से निपटने के लिए सरकारी और गैर-सरकारी स्रोतों से किस तरह के राहत उपाय किये गये। स्थिति को विस्तार से जानने के लिए अलग-अलग लोगों के ऑनलाइन और ऑफलाइन इंटरव्यू लिये गये। राहत सुविधाएं मुहैया करा रहे विभिन्न संगठनों के साथ पैनल चर्चाएं आयोजित की गयीं। विभिन्न रिपोर्ट्स, केस स्टडीज़ और सरकारी दस्तावेज़ों से सेकेंडरी डेटा भी इकट्ठा किया गया।

बीते दशकों के दौरान भारत में अलग-अलग किस्म के सरकारी और निजी स्कूलों से मिल कर बनी एक बहुपरती शिक्षा व्यवस्था विकसित हुई है। इसकी वजह से शिक्षा तक पहुंच भी आर्थिक क्षमता पर निर्भर हो गयी है। इसी ज़रूरत को ध्यान में रखते हुए बहुत सारे सस्ते निजी स्कूल भी सामने आए हैं जो अच्छी शिक्षा नहीं दे पाते। इस बहुपरती शिक्षा व्यवस्था की वजह से लर्निंग के मामले में हमारी स्कूली व्यवस्था का प्रदर्शन अच्छा नहीं रहा है। लिहाज़ा हमने शोध के दौरान ये समझने का प्रयास किया है कि महामारी और डिजिटल लर्निंग से टीचिंग-लर्निंग प्रकिया व मौजूदा शैक्षिक बंदोबस्त पर क्या असर पड़े हैं। हमने जानने की कोशिश की है कि इससे अलग-अलग तरह के स्कूलों और सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि से आने वाले अध्यापकों, अभिभावकों और बच्चों पर किस तरह के असर पड़े हैं। अध्ययन में पाया गया कि ऑनलाइन शिक्षा को अपनाने से विभिन्न कक्षाओं में हाशियाई परिवारों के बच्चों की उपस्थिति में भारी गिरावट आयी है। इससे ये भी पता चला है कि डिजिटल लर्निंग के कारण संसाधनों के वितरण और शिक्षाशास्त्रीय पद्धतियों के लिहाज़ से क्या समस्याएं आती हैं। अध्ययन में ये भी साफ हो गया है कि एक नियमनमुक्त निजी स्कूल व्यवस्था को टिकाये रखना कितना मुश्किल है। शोध के नतीजों से पता चलता है कि एक तरफ तो हाशियाई समुदायों के बहुत सारे बच्चे डिजिटल साधनों के अभाव की वजह से लर्निंग प्रकिया से बाहर चले गये हैं और दूसरी तरफ बहुत सारे अभिभावकों ने भी रोज़गार या आमदनी का नियमित ज़रिया छिन जाने पर अपने बच्चों को निजी स्कूलों से निकाल लिया है क्योंकि वे उनकी फीस नहीं चुका सकते थे। राज्य को इस महामारी की आड़ में शिक्षा के डिजिटलीकरण और समूची निर्णय प्रक्रिया के केंद्रीकरण के नवउदारवादी एजेंडा को लागू करने का बढ़िया मौका मिला है। इसकी वजह से पाठ्यचर्या और शिक्षाशास्त्र जैसे मामलों में स्कूल अध्यापकों की एजेंसी पूरी तरह खत्म हो चुकी है। अध्ययन में हमने पाया है कि स्कूलों के बंद होने से विद्यार्थियों, अध्यापकों और अभिभावक, सभी के मानसिक स्वास्थ्य पर गहरा असर पड़ रहा है। अध्ययन से ये भी पता चलता है कि बच्चियों, किशोरियों और कामकाजी महिलाओं पर उनकी जेंडर पहचान के कारण किस तरह के प्रभाव पड़ रहे हैं।

पिछले कुछ दशकों के दौरान भारत में उच्च शिक्षा क्षेत्र सरकारी प्रभुत्व वाले क्षेत्र से निजी क्षेत्र की भारी उपस्थिति वाले क्षेत्र में तब्दील हो गया है। इसकी वजह से उच्च शिक्षा में व्यवसायीकरण बढ़ा है और शिक्षा का आर्थिक व्यय सरकार के बजाय छात्र-छात्राओं के ऊपर आ गया है और फलस्वरूप उच्च शिक्षा तक पहुंच के मामले में और ज़्यादा असमानताएं पैदा हुई हैं। इस अध्ययन में बेंगलुरु शहर में स्थित कुछ उच्च शिक्षा संस्थानों में विभिन्न सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि वाले विद्यार्थियों, शोधकर्ताओं व अध्यापकों के अनुभवों को भी समझने का प्रयास किया जा रहा है। ऑनलाइन क्लासेज़ के सर्वव्यापी चलन से उच्च शिक्षा संस्थानों के विद्यार्थियों व अध्यापकों की लर्निंग व शिक्षाशास्त्रीय व्यवहार पर भी उसी तरह असर पड़ा है जैसे स्कूली शिक्षा क्षेत्र प्रभावित हुआ है। इस संक्रमण ने फ़ील्ड आधारित या प्रयोगशाला केंद्रित गतिविधियों व अनुभव आधारित लर्निंग को भी अस्त-व्यस्त कर डाला है। महामारी के दौरान यह बात बहुत स्पष्ट रूप से सामने

आयी है कि पूरे देश में वर्ग, जाति, जेंडर और सामुदायिक पृष्ठभूमि के आधार पर डिजिटल बुनियादी ढांचों और सुविधाओं तक पहुंच में भारी असमानता आज भी बनी हुई है। डिजिटल शिक्षा का जितने बड़े पैमाने पर प्रसार किया गया, उसके लिहाज़ से देखें तो इस बदलाव के आर्थिक बोझ को वहन करने और उपकरणों की कमी को दूर करने में संस्थागत व सरकारी प्रतिक्रिया आवश्यकता से बहुत कमज़ोर रही है। इस शोध में उच्च शिक्षा के कमॉडिफिकेशन से कई सामाजिक तबकों की बेदखली भी सामने आयी है। ये इस बात का संकेत है कि राज्य को उच्च शिक्षा में अपना निवेश बढ़ाना होगा ताकि सभी के लिए समतापरक और स्तरीय शिक्षा मुहैया करायी जा सके।

भारतीय शहर असमानता और गरीबी के महासागर हैं। इनमें अनौपचारिक क्षेत्र मज़दूरों की तादाद बहुत ज़्यादा है जो प्रायः प्रवासी मज़दूर होते हैं। उनके पास रहने की सुविधा नहीं होती और वे शहरों के केंद्र से दूर बसते जाते हैं। इन मज़दूरों की नौकरी पक्की नहीं होती। उन्हें कभी भी नौकरी से निकाल दिया जाता है। उनकी तनख़्वाह और काम के घंटों पर कोई नियम लागू नहीं होता। वे बेहद कठोर स्थितियों में जीवनयापन करते हैं। उनके पास स्थायी घर, भोजन, स्वास्थ्य सुविधाओं और बच्चों की शिक्षा का स्थायी बंदोबस्त नहीं होता। ऐसे मज़दूरों की स्थिति को समझने के लिए हमने त्रिची शहर में महामारी के दौरान आजीविका, स्वास्थ्य और शिक्षा के लिहाज़ से अलग-अलग श्रेणी के अनौपचारिक क्षेत्र मज़दूरों (स्वरोज़गार मज़दूर, दिहाड़ी, हफ़्तावार और महावार तनख़्वाह पाने वाले मज़दूर) के जीवन अनुभवों को समझने का प्रयास किया है। अध्ययन से पता चला है कि इन मज़दूरों की नौकरी और आमदनी छिन जाने से उन्हें भोजन और भाड़े जैसे न्यूनतम खर्चों को पूरा करने में भी भारी मुश्किलें पेश आयी हैं जिससे उनकी *आर्थिक, भौतिक व सामाजिक* असुरक्षाएं खुलकर सामने आ गयी हैं। तमिलनाडु के सरकारी राहत उपाय भी इसलिए कम पड़ गये क्योंकि उनमें लोगों की विविध ज़रूरतों के अनुसार राहत देने के बजाय एक जैसी सुविधाएं दी जा रही थीं। राहत देने की प्रक्रिया में संरचनात्मक खामियां भी थीं। दूसरी तरफ गैरसरकारी राहत प्रयास समुदायों की देखरेख में चल रहे थे और लिहाज़ा बहुत बड़े पैमाने पर नहीं थे। शहर और उसकी मौजूदा सामाजिक व्यवस्थाएं भी नाकाफ़ी साबित हुईं और सबसे संकटग्रस्त व असुरक्षित लोगों को वैसी सुरक्षा प्रदान नहीं कर पायी जैसी ज़रूरत थी। अध्ययन से पता चलता है कि न केवल 'गरीबों' बल्कि सभी असुरक्षित लोगों व परिवारों की स्थितियों को ध्यान में रखते हुए सरकार की तरफ से विभिन्न प्रकार की सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था मुहैया करायी जानी चाहिए थी।

इस महामारी ने ऐसी संरचनात्मक गतिकी और असमानताओं को सामने ला दिया है जो संकट के समय एक-दूसरे को और मजबूत करती हैं तथा विभिन्न समुदायों, धर्मों और संस्थानों को अलग-अलग ढंग से प्रभावित करती हैं। इस संकट ने गरीबों, निराश्रितों, बेघरों, सामाजिक रूप से हाशियाई लोगों, प्रवासियों, रिफ्यूजियों और अनौपचारिक बस्तियों में रहने वालों को ग्रस्त कर रही क्रूर आर्थिक, चिकित्सकीय, जातिगत, जेंडर आधारित और शैक्षित असमानताओं को पूरी तरह उजागर कर दिया है।

साक्ष्यों से पता चलता है कि भारत की शहरी व्यवस्था न केवल हाशिये पर रहने वालों को बुनियादी सेवाओं तक समान पहुंच मुहैया कराने में कमज़ोर रही है बल्कि अच्छे स्कूलों और उच्च शिक्षा संस्थानों से भी कमज़ोर तबके के लोगों को बेदखल करती जा रही है। इस स्थिति में गरीब परिवारों के बच्चों व युवाओं की शिक्षा पर बहुत गहरा असर पड़ता है और फलस्वरूप पीढ़ी की पीढ़ी सीखने के अवसरों से वंचित और संस्थानों से बाहर रह जाती हैं। इससे उनके जीवन अवसरों पर सीधा नकारात्मक असर पड़ता है।

प्रस्तुत अध्ययन के नतीजे इस बात पर एक बार फिर जोर देते हैं कि हमें महामारी के दौरान शैक्षिक असमानता को बढ़ाने वाले कारकों के साथ-साथ परस्पर जुड़ी शहरी चुनौतियों को संबोधित करते हुए जाति, वर्ग, जेंडर और भौगोलिक पिछड़ेपन जैसी स्थितियों पर भी बहुत गंभीरता से ध्यान देना होगा। शहरी असमानता और असुरक्षाओं को समझने और उन पर ध्यान देने से हमें शहरी नीति व नागर व्यवहार को सही दिशा में मोड़ने, उन्हें ज़्यादा न्यायपरक, समतापरक और मानवीय बनाने में मदद मिल सकती है।

संकेताक्षरों की सूची

एआईएडीएमके	ऑल इंडिया अन्ना द्रविड़ मुनेत्र कझगम
भाजपा	भारतीय जनता पार्टी
सीबीएससी	केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (सेंट्रल बोर्ड ऑफ सेकेंडरी एजुकेशन)
सीएसएफ	सेंट्रल स्क्वेयर फाउंडेशन
डीएमके	द्रविड मुनेत्र कझगम
डीआरडीओ	डिफेंस रिसर्च डेवलपमेंट ऑर्गेनाइजेशन
डीयू	दिल्ली विश्वविद्यालय
ईडब्ल्यूएस	आर्थिक रूप से पिछड़े तबके (इकोनॉमिकली वीकर सेक्शंस)
एफपीएस	उचित दर दुकान
जीएनईएम	गुड़गांव नागरिक एकता मंच
जीओआई	भारत सरकार (गवर्नमेंट ऑफ इंडिया)
एचईएफए	हायर एजुकेशन फंडिंग एजेंसी
आईआईएचएस	इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ ह्यूमन सैटलमेंट्स
आईआईआईटी	इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ इन्फॉर्मेशन टेक्नोलॉजी
आईआईएम	इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ मैनेजमेंट
आईआईएससी	इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ साइंस
आईएसईसी	इंस्टिट्यूट ऑफ सोशल ऐंड इकोनॉमिक चेंज
इसरो	भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संस्थान (इंडियन स्पेस रिसर्च ऑर्गेनाइजेशन)
आईटी	सूचना प्रौद्योगिकी (इन्फार्मेशन टेक्नोलॉजी)
जेएनसीएएसआर	जवाहर लाल नेहरू इंस्टिट्यूट फॉर एडवांस्ड साइंटिफक रिसर्च
जेटीएस	जूनियर टेक्निकल स्कूल
एलएफपी	सस्ते स्कूल/कम फीस वाले स्कूल (लो फी पेइंग)
एलएमएस	लर्निंग मैनेजमेंट सिस्टम्स
एमसीडी	दिल्ली नगर निगम (म्युनिसिपल कॉर्पोरेशन ऑफ दिल्ली)
एमडीएम	मिड-डे मील
एमएचआरडी	मिनिस्ट्री ऑफ ह्यूमन रिसोर्स डेवलपमेंट (मानव संसाधन और विकास मंत्रालय)
एनएएल	नैशनल एयरोस्पेस लेबोरेट्रीज़
एनसीटी	नैशनल कैपिटल टेरिटरी (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र)
एनडीएमसी	नई दिल्ली नगरपालिका परिषद

एनईपी	राष्ट्रीय शिक्षा नीति (नैशनल एजुकेशन पॉलिसी)
एनजीओ	गैर-सरकारी संगठन (नॉन गवर्नमेंटल ऑर्गेनाजेशन)
एनआईएएस	नैशनल इंस्टिट्यूट ऑफ एडवांस्ड स्टडीज
एनआरईजीए	राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी कानून (नैशनल रूरल एम्प्लॉयमेंट गारंटी ऐक्ट)
पीडीएस	सार्वजनिक वितरण व्यवस्था (पब्लिक डिस्ट्रीब्यूशन सिस्टम)
आरडब्ल्यूए	रेज़िडेंट्स वेलफेयर एसोसिऐशन
एसडीजी	टिकाऊ विकास लक्ष्य (सस्टेनेबल डेवलपमेंट गोल्स)
एसडीएम	सब-डिवीजनल मजिस्ट्रेट
एसएसए	सर्वशिक्षा अभियान
एसडब्ल्यूएएन	स्ट्रेंडेड वर्कर्स ऐक्शन नेटवर्क
टीसीसी	त्रिची सिटी कॉर्पोरेशन
टीआईएफआर	टाटा इंस्टिट्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च

भूमिका

साल 2020 के शुरुआती महीनों में कोविड-19 महामारी ने न केवल भारत बल्कि पूरी दुनिया को एक गहरे स्वास्थ्य संकट में ढ़केल दिया था। इस वायरस के फैलाव को रोकने के लिए भारत सरकार ने मार्च 2020 के तीसरे हफ़्ते में अचानक और बहुत सख्त लॉकडाउन की घोषणा कर दी। इसकी वजह से देश भर के स्कूल और शिक्षा संस्थान बंद कर दिए गये और शहरों व कस्बों में सभी प्रकार की आर्थिक गतिविधियां पूरी तरह ठप हो गयीं। महामारी से भारत की आबादी के दो अहम तबकों पर सीधा और बहुत गहरा असर पड़ा। एक तरफ तो महानगरों, कस्बों और गांवों में फैले स्कूलों और शिक्षा संस्थानों में पढ़ने वाले लाखों बच्चों और नौजवानों की पढ़ाई-लिखाई बंद हो गयी और दूसरी तरफ भारत के शहरों की अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में काम करने वाले करोड़ों प्रवासी मज़दूर अपनी नौकरियों से हाथ धो बैठे।

हमने महामारी की पहली लहर से भारतीय समाज के सबसे हाशियाई तबकों की शिक्षा, आजीविका और स्वास्थ्य पर पड़े प्रभावों को समझने के लिए ये शोध किया है। इस अध्ययन के लिए मुख्य रूप से तीन तबकों और तीन स्थानों को चुना गया : (क) तिरुचिरापल्ली (त्रिची) में अनौपचारिक क्षेत्र मज़दूर; (ख) दिल्ली में स्कूली बच्चे, उनके अभिभावक व अध्यापक; तथा (ग) बेंगलुरू के उच्च शिक्षा संस्थानों के विद्यार्थी और अध्यापक। अध्ययन से इन तबकों के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के बारे में भी महत्वपूर्ण जानकारियां सामने आयी हैं।[1]

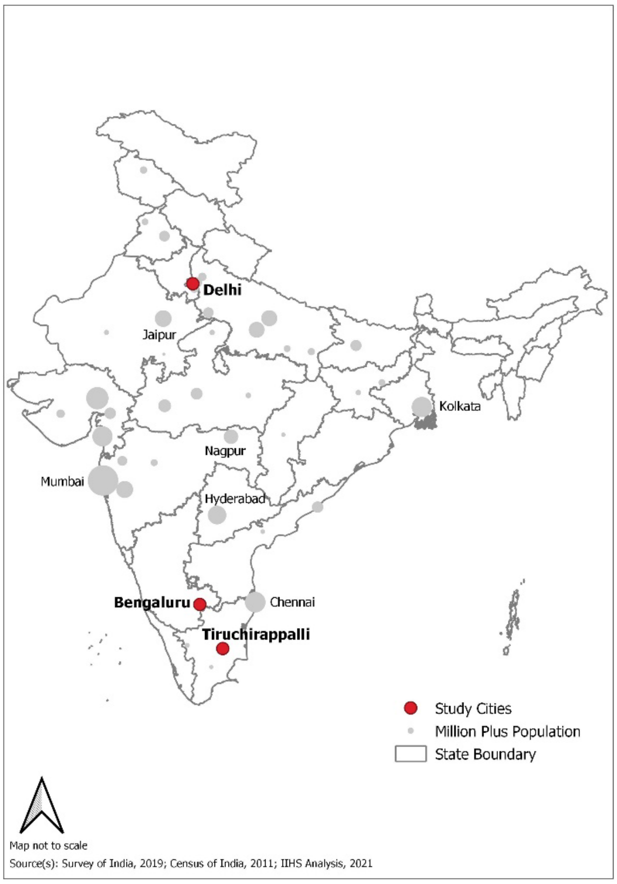

चित्र 1 : शोध अध्ययन के लिए चुने गये इलाके

[1] हम अपने सभी उत्तरदाताओं के प्रति बेहद आभारी हैं जिन्होंने इतने कठिन दौर में इस अध्ययन के लिए हमें अपना बहुमूल्य समय दिया है। हम उनको धन्यवाद देते हैं कि उन्होंने हमें अपने जीवन के मूल्यवान अनुभव और विवरण हमारे साथ साझा किये। हम इस शोध तथा नयी अंतर्दृष्टि हासिल करने के क्रम में उनके इस अमूल्य योगदान के लिए उन्हें धन्यवाद देना चाहते हैं।

हमारे देश में शहरीकरण की गति बहुत तेज है जिसके कारण श्रमशक्ति में शामिल होने वाले नये लोगों के लिए शहर ही रोज़गारों और अवसरों का सबसे बड़ा स्रोत होते हैं। यही कारण है कि देश की शहरी आबादी में प्रवासियों का हिस्सा अब 43% तक पहुंच गया है (जनगणना, 2011, भगत एवं अन्य, 2020 में उद्धृत)। समूची आर्थिक गतिविधि पर अचानक विराम लग जाने से अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में काम करने वाली भारत की लगभग आधी शहरी आबादी पर सीधा असर पड़ा है।

भारत के शहर और कस्बे असमानता व गरीबी के महासागर हैं। यहां जेंडर, धर्म, जाति और सामुदायिक पहचानों के आधार पर भारी सामाजिक असमानताएं दिखायी देती हैं (बज़ाज़ एवं अन्य, 2016)। जो लोग शहर के हाशियों पर रहते हैं उन्हें नाकाफ़ी आवास, कम तनख़्वाह, असुरक्षित व खतरनाक काम जैसी चुनौतियों का रोज़ सामना करना पड़ता है। वे अपनी सामुदायिक पहचान, जाति, धर्म, वर्ग और जेंडर के आधार पर प्रायः भेदभाव का सामना करते हैं और उसी शहर के आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन से भी बेदखल रहते हैं जिसमें वे बसे हुए हैं (बत्रा एवं अन्य, 2021)। शहरी गरीबों के सामने *शारीरिक असुरक्षाओं* की आशंका भी हमेशा बनी रहती है क्योंकि वे ऐसी अमानवीय स्थितियों में रहते हैं जहां उन्हें सुरक्षित आवास जैसी बुनियादी सुविधाओं के लिए भी संघर्ष करना पड़ता है (आनंद एवं अन्य, 2014)। अनौपचारिक रोज़गार की वजह से वे निरंतर *आर्थिक असुरक्षाओं* को झेलते हैं। इसके चलते उन्हें कोई सामाजिक सुरक्षा भी नहीं मिलती। साथ ही वे जल एवं वायु प्रदूषण की वजह से पैदा होने वाली *पर्यावरणीय असुरक्षाओं* की वजह से भी संकट में रहते हैं (जैन एवं अन्य, 2015)। उन्हें धर्म, जाति, जेंडर एवं समुदाय की पहचान से पैदा होने वाली गहरी असमानताओं और सामाजिक असुरक्षाओं का भी सामना करना पड़ता है (बत्रा एवं अन्य, 2021)।

ये सारे संकट तो पहले से मौजूद थे ही मगर लॉकडाउन ने तो ज़्यादातर अनौपचारिक मज़दूरों के सर्वाइवल को पलक झपकते खतरे में ढकेल दिया था। लिहाज़ा, अप्रैल और मई 2020 में करोड़ों लोग शहरों से पलायन करके पैदल अपने गांवों की ओर निकल पड़े।[2] जिन्होंने शहरों में रुकने का फैसला लिया उनके पास काम और आमदनी नहीं थी और लिहाज़ा उन्हें अपनी थोड़ी-बहुत बचत व जमापूंजी भी भोजन, आवास और दवाइयों पर खर्च करनी पड़ी। महामारी ने न केवल उनकी आर्थिक और शारीरिक असुरक्षाओं को सामने ला दिया बल्कि उन्हें कई गुना बढ़ा भी दिया। महामारी के दौरान शहर के सबसे हाशियाई लोगों ने जो कुछ झेला और संघर्ष किया, उसी को प्रस्तुत शोध में पेश किया गया है।

लॉकडाउन लागू होने के बाद देश भर के स्कूल और उच्च शिक्षा संस्थान भी बंद कर दिये गये। अनुमानों से पता चलता है कि महामारी के फलस्वरूप लगाये गये लॉकडाउन से स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों के बत्तीस करोड़ से ज़्यादा विद्यार्थियों पर असर पड़ा है (युनेस्को, 2020)। महामारी से पहले भी न केवल भारत बल्कि पूरी दुनिया "लर्निंग संकट (अधिगम संकट) से जूझ रही थी.... प्राथमिक और माध्यमिक स्कूली उम्र के 25.8 करोड़ बच्चे और युवा स्कूल नहीं जा रहे थे और शिक्षा की गुणवत्ता इतनी खराब थी कि स्कूल जाने वाले भी ज़्यादा कुछ नहीं सीख पा रहे थे" (विश्व बैंक, 2020ए, पृ. 5)।

भारत में खराब लर्निंग स्तर बीते दशकों के दौरान अलग-अलग किस्म के सरकारी और निजी स्कूलों से पैदा हुई एक बहुपरती शिक्षा व्यवस्था का परिणाम है। इसमें सरकारी स्कूलों के साथ-साथ ऐसे सस्ते निजी स्कूल भी हैं जो अच्छी शिक्षा प्रदान नहीं करते जबकि दूसरी तरफ उच्च वर्ग के लोगों के लिए चल रहे अंतर्राष्ट्रीय रूप रंग अख्तियार करते मंहगे प्राइवेट स्कूल भी हैं। इन समस्याओं को दूर करने के लिए स्कूली शिक्षा में व्यवस्थागत सुधार की कई कोशिशें की गयी हैं मगर उनसे न तो सभी जगह अच्छी शिक्षा का लक्ष्य हासिल हो पाया है और न लर्निंग संकट को दूर करने में सफलता मिल पायी है। हाल ही में बहुत सारे स्कूलों को आर्थिक रूप से अलाभकारी एवं अल्पलाभकारी बताते हुए उनका दूसरे स्कूलों में विलय कर दिया गया है जबकि हज़ारों स्कूलों को बंद कर दिया गया है (बत्रा, 2020ए)।

महामारी के कारण ये भी ज़ाहिर हो गया है कि किसी भी तरह के नियमों से आज़ाद, बेलगाम निजी स्कूलों को चालू रखना कितना मुश्किल है। फलस्वरूप, महामारी के दौरान ऐसे हज़ारों स्कूल बंद हो चुके हैं क्योंकि आमदनी खत्म हो जाने की वजह से लोगों ने इन स्कूलों से अपने बच्चों को निकाल लिया था। इस अवधि में ऑनलाइन शिक्षा का विकल्प अपनाये जाने की वजह से हाशियाई परिवारों के भी बहुत सारे बच्चे लर्निंग की प्रक्रिया से बाहर खिसक गये। उनके पास ऑनलाइन शिक्षा जारी रखने के लिए डिजिटल साधन और नेटवर्क उपलब्ध नहीं था।

[2] बहुत सारे प्रवासी मज़दूरों ने पैदल सैकड़ों किलोमीटर का सफर तय किया था (जनसाहस, 2020बी)।

प्रस्तुत शोध में हमने इस भारी-भरकम बदलाव की वजह से विद्यार्थियों, अध्यापकों और अभिभावकों के सामने पैदा हुई स्थितियों को दर्ज करने की कोशिश की है।

पिछले छः दशकों के दौरान भारत मुख्य रूप से सरकारी उच्च शिक्षा व्यवस्था के स्थान पर निजी संस्थानों की भारी उपस्थिति वाली उच्च शिक्षा व्यवस्था में तब्दील हो चुका है। विकसित देशों में उच्च शिक्षा का प्रसार हमेशा सरकारी संस्थाओं के ज़रिये ही किया गया है मगर भारत में इसके लिए मुख्य रूप से निजी क्षेत्र की मध्यस्थता का रास्ता चुना गया (सरकार, 2020)। निजी उच्च शिक्षा संस्थानों के अनियंत्रित फैलाव ने शिक्षा के क्षेत्र में बड़े पैमाने पर व्यवसायीकरण को जन्म दिया है। इसी वजह से शिक्षा का आर्थिक बोझ सरकार से नागरिकों के कंधे पर आ गया है और उच्च शिक्षा तक पहुंच में और ज़्यादा असमानता पैदा हुई है।

उच्च शिक्षा संस्थानों में बेदखली का संकट सिर्फ पहुंच का संकट नहीं है। इन संस्थानों में पहुंचने पर विद्यार्थियों को और भी कई प्रकार की बेदखलियों का सामना करना पड़ता है (देशपांडे एवं ज़कारिया, 2013)। उच्च शिक्षा की मौजूदा संरचना ऐसी है कि उसमें पहले से संपन्न तबके को और ज़्यादा लाभ की स्थिति मिलती है। यह तबका अधिकांशतः उच्च जाति या उच्च वर्ग का शहरी अभिजात्य तबका होता है। इस असमानता से सामाजिक ऊंच-नीच और भी पुख्ता हो जाती है। जब उच्च शिक्षा संस्थानों ने ऑनलाइन शिक्षा का विकल्प अपनाया तो बहुत सारे अध्यापकों और विद्यार्थियों को पहुंच के मामले में बेहिसाब असमानता का सामना करना पड़ा। इस शोध में व्यवस्थागत असमानता के उनके अनुभवों को समझने की चेष्टा की गयी है।

स्कूली व उच्च शिक्षा की संरचना और व्यवस्था में भारतीय संविधान के समानता व सामाजिक न्याय के लक्ष्यों से दूरी इतनी कभी नहीं थी जितनी कोविड-19 पर सरकारी प्रतिक्रिया के मामले में दिखायी देती है। व्यापक आर्थिक व सामाजिक विभेदीकरण, और तकनीक व ऑनलाइन संसाधनों तक बेहद असमान पहुंच के बावजूद सरकार ऑनलाइन टीचिंग को ही बढ़ावा देने के लिए हर कोशिश करने के लिए आमादा है। महामारी और उसके बाद भौतिक कक्षाओं के स्थान पर ऑनलाइन कक्षाओं की ओर संक्रमण से बेदखली और गैर-बराबरी के नये रूप सामने आए हैं तथा स्कूली और उच्च शिक्षा के क्षेत्र में सामाजिक असमानता सघन हो गयी है।

इस शोध के निष्कर्ष तीन हिस्सों में पेश किये गये हैं। ये तीनों हिस्से शोध के अलग-अलग आयामों पर केंद्रित हैं। तीनों हिस्सों का संक्षिप्त ब्यौरा इस प्रकार है :

(क) पहले भाग में इस बात की पड़ताल की गयी है कि स्कूलों के बंद होने से दिल्ली की विविधतापूर्ण स्कूली शिक्षा व्यवस्था पर क्या असर पड़े हैं। अध्यापकों, बच्चों और अभिभावक के नेरेटिव्स से पता चलता है कि किस तरह शहर के सरकारी और निजी स्कूलों में अलग-अलग सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि से आने वाले लोगों पर किस तरह के असर पड़े हैं। उनसे बात करने पर पता चलता है कि स्कूलों के बंद होने से टीचिंग-लर्निंग में भारी अस्तव्यस्तता पैदा हुई है और उनके सामने कितनी नई मुश्किलें पैदा हुई हैं। इस बात का भी जायज़ा लिया गया कि इस शैक्षिक संकट से निपटने के लिए सरकारी और गैर-सरकारी प्रतिक्रिया किस तरह की रही है।

(ख) दूसरे भाग में ये समझने की कोशिश की गयी है कि महामारी की वजह से जो तकनीक आधारित लर्निंग प्लेटफॉर्म्स सामने आए हैं, वे टीचिंग को किस तरह प्रभावित कर रहे हैं और इससे बेंगलुरू के उच्च शिक्षा संस्थानों में विभिन्न सामाजिक आर्थिक समूहों के विद्यार्थियों की लर्निंग पर क्या असर पड़े हैं। यहां इस बात पर जोर दिया गया है कि इस बदलाव से विभिन्न सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमियों के विद्यार्थियों के सामने किस तरह की शिक्षाशास्त्रीय कठिनाइयां पैदा हुई हैं और इन समस्याओं से निपटने के लिए संस्था के भीतर एवं संस्था के बाहर से किस तरह के बंदोबस्त किये गये हैं।

(ग) तीसरे भाग में ये देखा गया है कि इस संकट के समय त्रिची शहर के अनौपचारिक मज़दूरों की आजीविका पर क्या असर पड़े हैं और उन्होंने हालात से निपटने के लिए क्या कोशिशें की हैं। इस भाग में ये भी देखा गया कि उन्हें इस संकट के समय सरकारी और गैर-सरकारी स्रोतों से किस तरह की सहायता मिली या सहायता क्यों नहीं मिली। हमने इस बात का भी अध्ययन किया कि इस आपात स्थिति में भारी शहरी असमानता - जो टिकाऊ शहरों के विकास की दृष्टि से आज भी एक बड़ी चुनौती बनी हुई है - से जूझ रहे सबसे हाशियाई और संकटग्रस्त लोगों पर क्या असर पड़े हैं।

दिल्ली : स्कूली शिक्षा

दिल्ली की स्कूली व्यवस्था में भारी विविधताएं हैं और यह संभवतः सबसे ज़्यादा गैर-बराबरी वाला शिक्षा तंत्र है। देश के कुछ बेहतरीन शिक्षा संस्थान दिल्ली में ही हैं मगर इसे विडंबना ही कहा जाएगा कि देश की राजधानी में भी सबसे गरीब तबकों के लोगों के लिए स्कूलों की उपलब्धता बहुत नाकाफ़ी है (बिसोई, 2018)।

दिल्ली में प्राथमिक शिक्षा स्थानीय निकायों के ज़िम्मे आती है। दिल्ली नगर निगम (एमसीडी), और नई दिल्ली नगर पालिका परिषद (एनडीएमसी)[3] दो मुख्य निकाय हैं जो दिल्ली में प्राइमरी स्कूली शिक्षा को देखते हैं। अपर प्राइमरी, सेकेंडरी और सीनियर सेकेंडरी शिक्षा का ज़िम्मा मोटे तौर पर राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र (एनसीटी) दिल्ली सरकार के शिक्षा निदेशालय के मातहत आता है। यह निदेशालय कई प्रकार के कम्पोज़िट स्कूल चलाता है जिनमें सर्वोदय विद्यालय भी शामिल हैं। दिल्ली में केंद्रीय विद्यालय, नवोदय विद्यालय, दिल्ली कैंटोनमेंट बोर्ड के स्कूल और रक्षा मंत्रालय के स्कूल भी हैं जो सीधे केंद्र सरकार द्वारा चलाये जा रहे हैं।

निजी क्षेत्र में आने वाले स्कूलों को मान्यता प्राप्त (रेकग्नाइज़्ड) स्कूल और मान्यता रहित (अनरेकग्नाइज़्ड) स्कूलों में बांटा जा सकता है। निजी मान्यता प्राप्त स्कूलों को भी एड़ेड़ और अनएड़ेड़ स्कूलों में बांटा जा सकता है। यानी, ऐसे स्कूल जिनको सरकारी सहायता मिलती है और ऐसे स्कूल जिनको सरकार की तरफ से सहायता नहीं मिलती है। निजी अनएडेड स्कूलों को सरकार से कोई आर्थिक सहायता नहीं मिलती मगर वे भी सरकार द्वारा प्रमाणन के बाद ही चलते हैं। बहुत सारे निजी स्कूल मान्यताप्राप्त हैं मगर कई अभी भी मान्यतारहित यानी अनरेकग्नाज्ड़ हैं लिहाज़ा सरकारी आकड़ों में उनको वैसी जगह नहीं मिल पाती। मान्यताप्राप्त स्कूलों[4] को सरकारी निगरानी में काम करना पड़ता है जबकि मान्यतारहित स्कूलों के ऊपर प्रायः कोई नियम नहीं होता और वे इस निगरानी से बाहर होते हैं। ऐसे कई मान्यतारहित स्कूल इसलिए फल-फूल रहे हैं क्योंकि आम धारणा है कि सरकारी स्कूलों में पढ़ाई-लिखाई का स्तर अच्छा नहीं होता। इन निजी स्कूलों की लागत इतनी ज़्यादा होती है कि समाज के गरीब तबकों के बच्चे वहां वैसे भी नहीं जाते (जुनेजा, 2010)।

अध्ययन का उद्देश्य और शोध प्रक्रिया

स्कूलों के बंद हो जाने से अध्यापकों, बच्चों और उनके अभिभावकों के सामने बहुत सारी मुश्किलें पैदा हुईं मगर शैक्षिक प्रक्रिया के ऑनलाइन हो जाने से तो निश्चित रूप से नई चुनौतियां पैदा हुई हैं। इस शोध का उद्देश्य यह पता लगाना था कि महामारी के दौरान बच्चों, उनके अभिभावक और स्कूल अध्यापकों के अनुभव क्या रहे हैं और उन्हें किस तरह की परेशानियों का सामना करना पड़ा। खासतौर से हम ये जानना चाहते थे कि महामारी और डिजिटल लर्निंग से टीचिंग-लर्निंग प्रक्रिया और मौजूदा शैक्षिक बंदोबस्त पर और समाज के विभिन्न तबकों के लोगों पर क्या असर पड़े हैं। हमने इस संकट से निपटने के लिए किये गये सरकारी व गैर-सरकारी प्रयासों और उनके स्वरूप को समझने की भी कोशिश की है।

इस शोध के लिए दिल्ली में विभिन्न प्रकार के स्कूलों में पढ़ने वाले चुनिंदा विद्यार्थियों, अभिभावकों और अध्यापकों से बात की गयी। अध्ययन के लिए जो स्कूल चुने गये उनमें केंद्र सरकार, राज्य सरकार और स्थानीय निकायों द्वारा चलाये जा रहे स्कूलों के साथ-साथ अर्द्ध-सरकारी[5] स्कूल भी शामिल थे। दिल्ली में निजी स्कूलों की बड़ी संख्या को देखते हुए हमने जिन स्कूलों को चुना है उनमें भारी संसाधनों वाले अभिजात्य निजी स्कूल,[6] अन्य निजी स्कूल,[7] सस्ते प्राइवेट स्कूल और सहायता प्राप्त प्राइवेट स्कूल भी शामिल हैं। इस अध्ययन के लिए अलग-अलग कक्षाओं के विद्यार्थियों को चुना गया।

[3] ये ध्यान में रखना ज़रूरी है कि नगर-निगम के स्कूल स्वतंत्र रूप से निर्वाचित निकायों के अंतर्गत आते हैं। वे दिल्ली सरकार का हिस्सा नहीं होते।

[4] मान्यता प्राप्त स्कूलों को समय-समय पर अपनी गतिविधियों की रिपोर्ट शिक्षा विभाग के अधिकारियों के पास भेजनी होती है। इसके लिए शिक्षकों की नियुक्ति और सुविधाओं की उपलब्धता के लिए तय नियमों का पालन किया जाता है। इन स्कूलों की मान्यता इस पर निर्भर करती है कि वे इन नियमों का पालन कितनी गंभीरता से करते हैं। विभाग के अधिकारी समय-समय पर स्कूलों का निरीक्षण और निगरानी भी करते हैं और यदि ऐसा पाया जाता है कि वे तय नियमों का उल्लंघन कर रहे हैं या उनका पालन नहीं कर रहे हैं तो उनकी मान्यता वापस भी ली जा सकती है (जुनेजा, 2010, पृ. 7-8)।

[5] ये स्कूल न तो पूरी तरह प्राइवेट हैं और न ही सरकार द्वारा स्थापित या सरकारी सहायता प्राप्त हैं। वे निजी स्कूलों के लिए निर्धारित सरकारी नियमों से भी आज़ाद प्रतीत होते हैं। दूसरी तरफ, ये भी कहा जाता है कि उन्हें सरकारी अनुदान और सुविधाएं मिलती हैं और ये सुविधाएं उन्हें शिक्षा विभाग के माध्यम से नहीं बल्कि अन्य प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष माध्यमों से प्राप्त होती हैं क्योंकि वे प्रतिष्ठित सरकारी सेवाओं से संबद्ध माने जाते हैं (जुनेजा, 2010, पृ. 8)।

[6] मंहगे प्राइवेट स्कूल सरकारी सहायता से रहित मान्यता प्राप्त स्कूल हैं जिनमें मुख्य रूप से उच्च सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि के बच्चे पढ़ने आते हैं। इनकी फीस ज़्यादा होती है और फ्री सीटों का प्रावधान बहुत कम होता है।

[7] ये प्राइवेट स्कूल ऐसे सरकारी सहायता रहित स्कूल हैं जो पूरी तरह या आंशिक रूप से बच्चों की फीस से चलते हैं और उनका संचालन किसी निजी संस्था के हाथ में होता है। इन स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चे विभिन्न सामाजिक-आर्थिक वर्गों से आते हैं।

इनमें प्राइमरी (कक्षा 1-5), मिडिल (कक्षा 6-9) और सीनियर सेकेंडरी (कक्षा 10-12) कक्षाओं के विद्यार्थी भी शामिल थे। अध्ययन के लिए कुल 78 व्यक्तियों से बात की गयी जिनमें 35 टीचर्स, 23 अभिभावक और 20 सरकारी व निजी स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चे थे। टेबल 1 में अध्ययन के लिए चुने गये उत्तरदाताओं का श्रेणीवार ब्यौरा दिया गया है।

उत्तरदाता					**स्कूल का प्रकार**				
	कुल	जेंडर		सरकारी			निजी		
				जेंडर			जेंडर		
		लड़के/पुरुष	लड़कियां/ महिलाएं	कुल	लड़के/पुरुष	लड़कियां/ महिलाएं	कुल	लड़के/पुरुष	लड़कियां/ महिलाएं
अध्यापक	35	5	30	21	4	17	14	1	13
अभिभावक	23	3	20	7 + 3*	2	8	12+1*	1	12
विद्यार्थी	20	6	14	9	2	7	11	4	7
कुल	78	14	64	40	8	32	38	6	32

टेबल 1 : उत्तरदाताओं का श्रेणीवार वितरण

*नोट : *चार अभिभावकों के बच्चे सरकारी और प्राइवेट, दोनों प्रकार के स्कूलों में पढ़ते थे।*

सेमी-स्ट्रक्चर्ड साक्षात्कारों के आधार पर हुई विस्तृत और सघन बातचीत से हमने नेरेटिव इकट्ठा किये हैं। शोध की शुरुआती अवस्था में और लॉकडाउन की वजह से आवाजाही पर लगी बंदिशों को देखते हुए सहभागियों को व्यक्तिगत जान-पहचान और नेटवर्कों के आधार पर ही चुना गया। बाद में डेटा संग्रह की स्नोबॉलिंग पद्धति अपनायी गयी जिसमें शुरुआती सहभागियों से अपनी जान-पहचान के दूसरे अध्यापकों या अभिभावकों या विद्यार्थियों से बात करवाने के लिए कहा गया। शोध के दायरे को विस्तार देने और नमूने के चयन में असंतुलन से बचने के लिए ऐसा करना जरूरी था।

महामारी के दौरान लॉकडाउन और आवाजाही पर लगी बंदिशों के चलते सारे इंटरव्यू विडियो कॉन्फ्रेंसिंग और फोन कॉल के ज़रिये ही संभव हो पाये। ये इंटरव्यू सहभागियों की सुविधा व प्राथमिकता के अनुसार, अंग्रेजी व हिंदी या दोनों की मिलीजुली भाषा में लिये गये। प्रत्येक बातचीत लगभग 45 मिनट चली मगर कुछ वार्ताएं डेढ़ घंटे तक जारी रहीं। ये इंटरव्यू जुलाई से नवंबर 2020 के बीच पांच महीने के दौरान लिये गये थे। सेमी-स्ट्रक्चर्ड साक्षात्कारों में ऐसी थीम्स पर ज़्यादा ध्यान दिया गया जिनमें चीज़ों को विस्तार से खंगालने की ज़रूरत थी। शोध की नैतिकता का पालन किया गया और लिहाज़ा सभी उत्तरदाताओं की गोपनीयता और पहचान को उजागर न करने के सिद्धांत का पालन किया गया। ज़्यादातर सहभागियों ने बातचीत को रिकॉर्ड करने की सहमति दी। जिन उत्तरदाताओं ने ऐसा करने पर सहमति नहीं दी, उन वार्ताओं के दौरान बातचीत को दर्ज करने के लिए फ़ील्ड डायरी पद्धति का सहारा लिया गया।

गहन वार्ताओं के ज़रिये इकट्ठा किये गये व्यक्तिगत नेरेटिव्स के अलावा गैर-सरकारी संगठनों के साथ कई पैनल चर्चाएं [8] भी आयोजित की गयीं ताकि ये समझा जा सके कि स्थिति के बारे में उनका आकलन क्या है, जमीनी धरातल पर उनके अनुभव क्या हैं और स्कूलों व समुदाय तक पहुंचने के लिए क्या प्रयास किये गये हैं। इन संस्थानों में डिजिटल सपोर्ट प्लेटफॉर्म्स और शिक्षा के क्षेत्र में सक्रिय नागर समाज संगठन और शिक्षा के क्षेत्र में सक्रिय ऐसे संस्थान भी शामिल हैं जिन्होंने स्कूलों के बंद होने के दौरान व्यवस्थित शैक्षिक हस्तक्षेप किये हैं। डिजिटल लर्निंग की पहुंच और जमीनी हकीकत को समझने के लिए विस्तृत साहित्य का भी अध्ययन किया गया। इनमें फ़ील्ड से आने वाली रिपोर्ट्स, आकलन और

[8] पैनल डिस्कशंस ऑनलाइन चलाये गये विषय केंद्रित फोकस ग्रुप डिस्कशंस थे। इनमें पैनलिस्टों से कहा गया कि वे अपने काम के बारे में संक्षिप्त प्रस्तुति रखें। इसके बाद मॉडरेटर द्वारा उठाये जाने वाले निश्चित प्रश्नों पर चर्चा की जाती थी। टीईएसएफ-इंडिया शोध टीम ने गैर-सरकारी पात्रों से डेटा इकट्ठा करने के लिए इसे एक अभिनव शोध टूल के रूप में इस्तेमाल किया। प्रत्येक पैनल चर्चा दो घंटे ज़्यादा अवधि की होती थी। सहभागियों के बारे में विवरण के लिए परिशिष्ट देखें।

हस्तक्षेपों की खबरें भी शामिल हैं। अलग-अलग स्रोतों से इकट्ठा किये गये प्राइमरी और सेकेंडरी डेटा से बहुत सारे आयामों को समझने में मदद मिली है।

व्यक्तिगत नेरेटिव्स इकट्ठा करने के लिए सहभागियों का चयन व शिनाख्त एक चुनौती थी। इसके लिए सहभागियों से बार-बार संपर्क किया गया और फॉलोअप फोन कॉल की गयीं। प्रत्येक सहभागी की उपलब्धता के आधार पर साक्षात्कारों के लिए साप्ताहिक कार्यक्रम तय किये गये। चूंकि ये साक्षात्कार पांच महीनों के दौरान लिये गये इसलिए ऑनलाइन टीचिंग के दिशानिर्देशों में बदलाव, कोविड-19 टास्क फोर्स में अध्यापकों की भूमिका, तनख़्वाह में कटौती और अध्यापकों की छंटनी जैसे नये-नये सवाल भी सामने आते गये। अध्ययन के लिए ये सभी बदलाव महत्वपूर्ण थे इसलिए उनको भी साक्षात्कारों में शामिल किया गया।

नतीजे

जब महामारी ने शुरुआती दस्तक दी तब तक दिल्ली के स्कूल अकादमिक सत्र के आखिरी दौर में पहुंच चुके थे और नये सत्र की तैयारी कर रहे थे जोकि आमतौर पर अप्रैल के महीने में शुरू होता है। जब देशव्यापी लॉकडाउन की घोषणा की गयी तो सभी कक्षाएं अचानक बंद कर दी गयीं। स्कूलों को इस बदलाव के लिए तैयारी का कोई समय नहीं मिला। चुनांचे, सभी स्कूलों को तत्काल प्रभाव से अनिश्चित काल के लिए बंद कर दिया गया ताकि वायरस को फैलने से रोका जा सके। न तो अध्यापकों को और न ही अभिभावक को इस बारे में कोई स्पष्ट जानकारी मिली कि स्कूल कब तक बंद रहेंगे या बच्चों की पढ़ाई का वैकल्पिक बंदोबस्त क्या होगा। कुछ समय बाद सबसे पहले तो स्कूलों के प्रधानाचार्यों ने अपने टीचर्स को निर्देश दिया कि वे अलग-अलग क्लासेज़ के लिए व्हॉट्सएप ग्रुप बनाएं और उनमें पढ़ाई से संबंधित लर्निंग मटीरियल भेजा करें। इसके कुछ समय बाद स्कूलों को ऑनलाइन लर्निंग प्लेटफॉर्म तैयार करने का निर्देश दिया गया और कहा गया कि अब भविष्य की शिक्षा का यही मॉडल होगा (एनसीईआरटी, 2020; एमएचआरडी, 2020)।

अध्ययन के नतीजों पर तीन मुख्य शीर्षकों के तहत चर्चा की गयी है : शैक्षिक प्रावधानों एवं प्रक्रिया पर लॉकडाउन का फौरी असर; डिजिटल लर्निंग की चुनौतियां; और स्कूलों के बंद होने का व्यवस्थागत प्रभाव।[9]

शैक्षिक प्रावधानों एवं प्रक्रिया पर लॉकडाउन का फौरी असर

लॉकडाउन ने शिक्षा व्यवस्था से जुड़े सभी संबंधित पक्षों को गहरे तौर पर प्रभावित किया जिनमें अध्यापक, बच्चे और अभिभावक सभी शामिल हैं। मार्च में स्कूलों को अनिश्चित काल के लिए बंद कर दिये जाने के बाद मई 2020 तक सरकारी स्कूलों के अध्यापकों को सरकार की तरफ से इस बारे में कोई सूचना नहीं दी गयी कि अब अध्यापन के लिए कोई वैकल्पिक बंदोबस्त होगा या नहीं और यदि होगा तो वह कैसा होगा। स्कूल अधिकारियों व अध्यापकों ने लंबे समय तक इस भ्रम और दुविधा का सामना किया और तब भारत सरकार ने अधिकृत रूप से ये निर्देश दिया कि जब तक स्कूल नहीं खुलते तब तक ऑनलाइन प्लेटफॉर्म्स पर ही शिक्षा दी जाएगी। ये फैसला लेते हुए इस बात पर ध्यान नहीं दिया गया कि देश भर के नौजवानों और बच्चों में से बहुत बड़ा अनुपात उनका है जिनके पास इंटरनेट तक पहुंच नहीं है। व्यक्तिगत कक्षाओं से अचानक ऑनलाइन कक्षाओं की ओर इस संक्रमण से नई चुनौतियां पैदा हुईं और दूसरी तरफ मौजूदा आर्थिक व सामाजिक गैर-बराबरी भी बहुत बढ़ गयी।

समाज के सबसे संवेदनशील तबकों के बच्चे इस बदलाव के लिए बिलकुल तैयार नहीं थे। डिजिटल प्लेटफॉर्म्स या संसाधनों का इस्तेमाल करने के लिए उनके पास साधन ही नहीं थे। ऐसे बहुत सारे बच्चे व्हॉट्सएप ग्रुप्स में शामिल नहीं हो पाये और लिहाज़ा वे स्कूल बंद होने के बाद चार-पांच महीने तक शिक्षा व्यवस्था से बाहर छूट गये। जब शिक्षा ऑनलाइन प्लेटफॉर्म्स पर दी जाने लगी तो कक्षाएं अटेंड कर पाने वाले बच्चों की संख्या में जबर्दस्त गिरावट आयी। ओडिशा, बिहार, झारखंड, छत्तीसगढ़ और उत्तर प्रदेश में मई-जून 2020 के बीच किये गये एक अध्ययन में 80% अभिभावकों ने बताया कि लॉकडाउन के दौरान शिक्षा नहीं दी जा रही थी। बिहार में ऐसा कहने वालों की संख्या 100% तक पायी गयी। इसके

[9] ध्यान दें कि पूरे दस्तावेज में सहभागियों के ऐसे उद्धरणों को डबल इनवर्टेड कॉमा में रख गया है जो पाठ के बीच में आ रहे हैं।

पीछे सबसे बड़ा कारण ये बताया गया कि उनके पास डिजिटल उपकरण और इंटरनेट की सुविधा नहीं है (ऑक्सफेम, 2020)।

गर्मी की छुट्टियों के बाद जून 2020 के तीसरे हफ़्ते में सरकारी स्कूलों में ज़बर्दस्त अफ़रातफ़री पैदा हो गयी थी। प्रधानाचार्यों से अध्यापकों को निर्देश मिला कि उन्हें फौरन अपने स्कूल आना होगा चाहे वे इस बीच दिल्ली के बाहर अपने कस्बे या गांव में क्यों न चले गये हों। अध्यापकों से उम्मीद की गयी कि वे एक ऐसे दौर में यात्रा करके अपने कार्यस्थल पहुंचें जिस समय कोविड-19 की पॉज़िटिविटी रेट बहुत ऊंची थी।

सरकारी स्कूल की एक अध्यापिका ने बताया, *"मेरी एक सहेली 6 माह की गर्भवती थी। स्कूल अधिकारियों ने उसे भी उसके गृह नगर से बुला लिया। मेरा एक साथी आगरा में केन्टोनमेंट ज़ोन में रह रहा था और लिहाज़ा वह यात्रा नहीं कर सकता था। चारों तरफ हथियारबंद बलों के जवान तैनात थे और बाहर निकलने पर सख्त पाबंदियां लगी थीं। वह अपने गृह नगर से नहीं निकल पाया क्योंकि उसे यात्रा परमिट नहीं मिल पाया था। अब प्रिंसिपल उसे तंग कर रहा है। उसको तनख़्वाह भी नहीं दी जा रही है। शुरू में उसको पढ़ाने का ज़िम्मा दिया गया था मगर 1 जुलाई 2020 से उसे किसी कक्षा की ज़िम्मेदारी नहीं दी गयी है। प्रिंसिपल उसे धमकी दे रहा है कि उसकी नौकरी चली जाएगी।"*

एक सरकारी स्कूल के अध्यापक ने बताया कि *"सब-डिविजनल मजिस्ट्रेट की तरफ से आर्डर जारी किया गया था और जून 2020 के महीने में अधापकों को हुक्म दिया गया कि वे तत्काल गूगल फार्म में भरकर भेजें कि उनकी उपस्थिति आवश्यक है और वे तत्काल ड्यूटी पर लौटें। जो नहीं लौटना चाहेंगे, उनको सस्पेंड किया जा सकता है या उनकी नौकरी जा सकती है।"*

बच्चों के परिवारों की आर्थिक स्थिति का इस बात पर सीधा असर पड़ा कि उनके पास साधन उपलब्ध होंगे या नहीं और वे ऑनलाइन क्लास कर सकेंगे या नहीं। सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों के सामने उपकरणों और इंटरनेट की गंभीर समस्याएं थीं। प्राइवेट स्कूलों के बच्चे फिर भी ऑनलाइन क्लास अटेंड करने के लिए तुलनात्मक रूप से बेहतर स्थिति में थे। मगर, प्राइवेट स्कूलों में पढ़ने वाले आर्थिक रूप से पिछड़े तबके के बच्चे (ईडब्ल्यूएस) और सस्ते निजी स्कूलों में जाने वाले बच्चे ऑनलाइन शिक्षा प्रक्रिया से प्रायः बाहर ही छूट गए थे (इंडियन एक्सप्रेस, 2021)। जब स्कूल ऑनलाइन शिक्षा देने लगे तो सामाजिक और आर्थिक रूप से हाशियाई तबके के ज़्यादातर बच्चे औपचारिक शिक्षा के दायरे से बाहर चले गये।

एक सरकारी स्कूल टीचर ने बताया, *"दिल्ली सरकार द्वारा चलाये जा रहे स्कूलों में शुरू में अध्यापक 40% बच्चों तक नहीं पहुंच सके। पिछले सात महीनों के दौरान ऑनलाइन क्लासेज़ लेने के अनुभव के आधार पर अब इस संख्या में कुछ सुधार आया है। परंतु, यदि हम ऐसे बच्चों तक पहुंच जाते हैं तो भी पता चलता है कि बहुत सारे बच्चे अब तक गांव में ही हैं और वे ऑनलाइन क्लासेज़ में शामिल नहीं हो सकते। मगर, अध्यापक उनकी हाजिरी को तब तक नहीं गिनते जब तक वे व्हॉट्सएप ग्रुप में शामिल नहीं होते। हाजिरी के लिए इन ग्रुप्स में शामिल होना अनिवार्य है।"*

एक सरकारी स्कूल में प्राथमिक कक्षाओं को पढ़ाने वाली अध्यापिका ने बताया, *"मैं पांचवीं कक्षा को पढ़ाती हूं। इसमें ड्रॉपआउट की दर काफी ऊंची है। अपने गांवों में लौटने वाले बहुत सारे प्रवासी अभिभावक का कहना है कि अब उनके लिए शहर में कुछ नहीं बचा क्योंकि यहां कोई काम नहीं है। इसलिए अब वे वापस नहीं आएंगे।"*

मुंबई के सरकारी स्कूलों में किये गये एक अध्ययन में पाया गया कि प्रवासी परिवारों के कक्षा एक से कक्षा आठ तक के लगभग 28% बच्चे अपने अभिभावक के साथ अपने गांवों को लौट चुके हैं। नवीं और दसवीं कक्षा के तीस लाख से ज़्यादा बच्चे शहर छोड़ चुके थे। अनुमान लगाया जाता है कि इनमें से लगभग 30% अब वापस आने वाले नहीं हैं (पीयूसीएल, 2020)।

बड़े पैमाने पर आजीविका छिनने और भीषण आर्थिक संकट में फंस जाने का एक नतीजा ये हुआ है कि गरीब परिवारों के बहुत सारे बच्चे बाल मज़दूरी में फंस गये हैं।

सरकारी स्कूल में पढ़ाने वाले एक अध्यापक ने हमें बताया, *"मुझे हाईस्कूल के बच्चों के फोन आते हैं। उनमें से एक ने बताया कि वह अब फैक्टरी में काम करने लगा है। एक बच्चे ने बताया कि वह एलईडी लाइट्स के कारखाने में काम करता है। एक और बच्चा परचून की दुकान पर डिलीवरी ब्वॉय की नौकरी कर रहा है। एक बच्चे को सड़क किनारे बने ढाबे में काम मिल गया है। ये सारे बच्चे अब कक्षा में नहीं आ पाते और आखिरकार स्कूल व्यवस्था से ड्रॉपआउट हो*

जाऐंगे यानी पढ़ाई छोड़ देंगे। कोविड संकट ने बहुत सारे बच्चों को अपने परिवारों का गुज़ारा चलाने के लिए दिहाड़ी मज़दूरी के लिए मजबूर कर दिया है इसलिए केवल 15 से 20% बच्चे ही वर्चुअल क्लासेज़ अटेंड कर रहे हैं।"

ऑनलाइन क्लासेज़ के दौरान भाषा भी बच्चों के लिए एक बड़ी चुनौती बन गयी है। एनसीईआरटी लर्निंग एनहान्समेंट गाइडलाइंस (2020) के मुताबिक स्कूलों में व्हॉट्सएप, गूगल क्लासरूम, गूगल-मीट और जी-सूट प्रमुख ऑनलाइन प्लेटफॉर्म्स रहे हैं। इनमें से किसी में भी क्षेत्रीय भाषाओं के इस्तेमाल की सुविधा आसानी से उपलब्ध नहीं है। समाज के हाशियाई तबकों के बच्चे सबसे ज़्यादा प्रभावित हुए हैं क्योंकि ऑनलाइन कक्षाओं में कई भाषाओं के इस्तेमाल की संभावना बहुत सीमित हो जाती है। उदाहरण के लिए, ओडिशा में आदिवासी बच्चों को संताली, हो, कुई और कोल्हा आदि आदिवासी भाषाओं में ही पढ़ाया जाता है। ऑनलाइन शिक्षा में बच्चों के लिए इन भाषाओं में ऑनलाइन क्लासेज़ करना बहुत मुश्किल हो गया है जिसकी वजह से बहुत सारे बच्चे पढ़ाई छोड़ चुके हैं (घोष, 2020)। इससे भाषा और सत्ता के बीच क्या संबंध है, यह अहम सवाल खड़ा हो जाता है। साथ ही इस आशय का ज्ञानशास्त्रीय सवाल भी प्रासंगिक हो जाता है कि इस बदलाव ने बच्चों के संप्रेषण और उनके ज्ञान की विपुल मात्रा को मुख्यधारा की शिक्षा से बाहर ढकेल दिया है।

प्राइवेट स्कूलों के अध्यापकों ने बताया कि स्कूल अधिकारी ईडब्ल्यूएस बच्चों की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि और परेशानियों को देखते हुए उन्हें फटकार तो नहीं लगाते मगर जब ऐसे बच्चे क्लास अटेंड नहीं कर पाते तो उनसे संपर्क करने और उनको क्लासेज़ में लाने के लिए भी कोई कोशिश नहीं करते। एक सर्वेक्षण से पता चला कि लॉकडाउन की वजह से प्रभावित होने वाले 25 करोड़ बच्चों में से 80% बच्चे ईडब्ल्यूएस श्रेणी के हैं और ये बच्चे संसाधनों की कमी की वजह से क्लासेज़ अटेंड करने में लगातार मुश्किलों से जूझते रहे हैं (इंडियन एक्सप्रेस, 2021)।

मगर, कुछ प्राइवेट स्कूलों ने इस बात पर ध्यान दिया है कि ईडब्ल्यूएस श्रेणी के बच्चे भी स्कूल बंद हो जाने के बावजूद शैक्षिक प्रक्रिया से बाहर न छूटें। चाहे बच्चे शहर में हों या लॉकडाउन के बाद परिवार के साथ अपने गांव लौट गये हों, इन स्कूलों ने पूरा प्रयास किया कि उन बच्चों की पढ़ाई लगातार जारी रहे। एक प्राइवेट स्कूल टीचर ने बताया *"शुरुआत में हम ज़ूम पर कक्षाएं चलाते थे मगर ईडब्ल्यूएस विद्यार्थियों के लिए हमने गूगल क्लासरूम का इस्तेमाल शुरू कर दिया क्योंकि इसके लिए कम बैंडविड्थ वाले इंटरनेट कनेक्शन से काम चल जाता है। स्कूल ने इस बात का भी ख्याल रखा कि ईडब्ल्यूएस श्रेणी के बच्चों के पास क्लास अटेंड करने के लिए कम से कम एक उपकरण जरूर हो। इसके अलावा, सभी बच्चे दिल्ली में भी नहीं थे। एक बच्चा राजस्थान में था, एक मुंबई चला गया, एक केरल चला गया था। जो बच्चे ऑनलाइन क्लास में नहीं आ पा रहे थे, उनसे स्कूल की तरफ से प्राथमिकता के आधार पर संपर्क करने का स्पष्ट निर्देश दिया गया। क्लास टीचर होने के नाते मेरी ज़िम्मेदारी थी कि मैं इन बच्चों के अभिभावक से बात करूं। अगर बच्चे कनेक्टिविटी की वजह से क्लासेज़ अटेंड नहीं कर पाते हैं तो मेरी ज़िम्मेदारी थी कि क्लास में जो काम किया गया है वह उन तक पहुंचाया जाए।"*

जैसे ही स्कूली शिक्षा को ऑनलाइन प्लेटफ़ॉर्म्स पर शुरू किया गया, क्लास अटेंड करने वाले बच्चों की तादाद में जबर्दस्त गिरावट आ गयी।

डिजिटल शिक्षा की चुनौतियां

ऑनलाइन एजुकेशनल प्लेटफॉर्म्स व संसाधनों, इंटरनेट सेवाओं और क्लास करने के लिए समय और जगह की उपलब्धता के लिहाज़ से भारी विविधताएं दिखायी देती हैं। ऑनलाइन क्लासेज़ अटेंड करने के लिए लैपटॉप या फोन, इंटरनेट कनेक्टिविटी और इंटरनेट डेटा पैकेज की ज़रूरत होती है मगर ज़्यादातर बच्चों के पास इनमें से किसी न किसी चीज़ की कमी थी। इस मामले में एक गहरी असमानता उस समय दिखायी दी जब एक तरफ तो बड़े प्राइवेट स्कूलों के बच्चों ने फौरन निजी फोन और लैपटॉप जुटा लिये जबकि रोज़गार और कमाई गंवा चुके परिवारों के बच्चों को ये साधन किसी तरह नहीं मिल पाये और लिहाज़ा वे ऑनलाइन क्लासेज़ से बिल्कुल बाहर छूटते चले गये।

चित्र 2 : ग्रामीण इलाकों में ऑनलाइन पहुंच की समस्याएं

वर्चुअल क्लासरूम्स से पढ़ने में रुकावटें

बहुत सारे परिवारों की नाजुक आर्थिक स्थिति के चलते उनके बच्चे व्हॉट्सएप ग्रुप पर आने वाली वर्कशीट्स तक नहीं देख पाते थे क्योंकि उनके पास स्मार्ट फोन नहीं थे। बड़े प्राइवेट स्कूलों के बच्चों ने बड़ी आसानी से संसाधनों को इस्तेमाल करना सीख लिया जिससे उन्हें अपनी पढ़ाई जारी रखने में बहुत मदद मिली है। दूसरी तरफ सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले ज़्यादातर बच्चे हर मायने में पीछे रह गये हैं। वे ऑनलाइन क्लासेज़ में प्रायः नहीं जुड़ पाते और क्लास में न आ पाने वाले बच्चों के लिए भेजी जाने वाली सामग्री भी डाउनलोड नहीं कर पाते।

अध्यापकों ने भी जबर्दस्त चुनौतियों का सामना किया है। चूंकि स्कूलों ने उन पर दबाव डाला कि वे तकनीकी सुधिाओं से लैस हों इसलिए उन्हें भी नये उपकरणों का बंदोबस्त करना पड़ा। उनमें जबर्दस्त हताशा और लाचारी पैदा हुई है क्योंकि उन्हें भी खुद को वर्चुअल लर्निंग के अनुरूप ढालने के लिए संघर्ष करना पड़ा है।

एक सरकारी स्कूल टीचर ने बताया, *"अध्यापकों पर दबाव डाला जा रहा है कि वे जरूरी गैजेट खरीदें। मेरे पास क्लास लेने के लिए लैपटॉप है। मेरी स्थिति तुलनात्मक रूप से फिर भी बेहतर है मगर हमारे नब्बे प्रतिशत अध्यापक पढ़ाने के लिए अपने फोन का ही इस्तेमाल करते हैं और फोन पर लाइव क्लास लेना तो बहुत मुश्किल होता है। अकसर ऐसा होता है कि जब लाइव क्लासेज़ के दौरान स्क्रीन शेयर किया जाता है तो या तो वह सारे बच्चों को एक साथ दिखायी नहीं देता या क्लास डिस्कनेक्ट हो जाती है। ऐसे में अध्यापकों को बार-बार लॉगिन करना पड़ता है जिससे क्लास की रफ तार पूरी तरह टूट जाती है। हमारी एक स्टाफ मीटिंग में प्रिंसिपल ने अध्यापकों को निर्देश दिया कि वे लैपटॉप या टेबलेट खरीद लें ताकि क्लासेज़ में कोई बाधा न आए। उन्होंने इसकी परवाह नहीं की कि हमारे अध्यापक लैपटॉप या टेबलेट खरीदने की हालत में हैं भी या नहीं।"*

घर-घर में आर्थिक संकट और आजीविका खत्म हो जाने की वजह से बच्चों की शिक्षा पर भारी असर पड़ा है। कई अभिभावकों ने भी बताया कि उन्हें कितनी परेशानियों से जूझना पड़ रहा है और वे अपने बच्चों को डिजिटल पहुंच मुहैया नहीं करा पा रहे हैं।

एक सरकारी स्कूल में पढ़ने वाले बच्चे की मां ने बताया, *"हमें बहुत मुश्किल पेश आयी। जब से लॉकडाउन लगा है मेरे पति के पास नौकरी नहीं है। मैं ग्रहिणी हूं। कोविड-19 के डर की वजह से हम गोरखपुर के भीतरी देहात में अपने गांव भी नहीं जा पाये। शहर में सर्वाइवल आसान नहीं है। हमें कोई राशन तक नहीं मिला। हमारे पास राशन कार्ड भी है*

मगर राशन पाने के लिए न जाने कौन-कौन से कागज मांगे जा रहे थे। महामारी में हम कागजों के लिए कहां-कहां धक्के खाते। जिनके पास राशन कार्ड नहीं है या जिन्हें कोई राशन नहीं मिला, उन्हें पास के सरकारी स्कूल में पका हुआ खाना मिल रहा था। अपने बच्चों का पेट भरने के लिए कुछ दिन तक मुझे भी वहीं से खाना लेना पड़ा। इतनी बुरी हालत है। ऐसे में मैं अपने बच्चों की ऑनलाइन पढ़ाई भला कैसे जारी रखूं? जब तक मेरे पति दुबारा कमाने नहीं लगते, तब तक मेरे लिए ये असंभव है।"

कई अभिभावकों का कहना था कि ऑनलाइन लर्निंग के मुकाबले तो 'रेगुलर स्कूलिंग' ही सस्ती पड़ती है। ऑनलाइन पढ़ाने के लिए उन्हें अपने बजट से बाहर जाकर खर्चा करना पड़ता है। बहुत सारे लोगों के लिए बार-बार इंटरनेट रीचार्ज का खर्चा भी भारी पड़ने लगा है। अगर मोबाइल फोन में रीचार्ज करा लिया जाए तो भी इंटरनेट कनेक्टिविटी सब जगह और हर समय एक जैसी नहीं होती जिससे तंग आकर आखिरकार बच्चे क्लास से निकल जाते हैं। उनमें हताशा पैदा होती है और उनका उत्साह टूट जाता है। जो अभिभावक बेहतर बैंडविड्थ के साथ इंटरनेट कनेक्शन मुहैया करा सकते हैं उन्हें भी क्लासेज़ से कनेक्ट करने में मुश्किल पेश आयी है क्योंकि कभी बिजली भाग जाती है तो कभी बैकअप साधन नहीं होते जिसकी वजह से उन्हें कभी वाई-फाई तो कभी मोबाइल इंटरनेट डेटा पर जाना पड़ता है और इससे बार-बार वे कक्षा से बाहर जाते रहते हैं।

जिन दिनों स्कूल बंद थे, उस दौरान प्राइवेट स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों के अभिभावकों पर स्कूल फीस जमा करने का दबाव लगातार पड़ता रहा। यह उनके लिए एक नया तनाव था। जिन लोगों की नौकरी व काम-धंधे नहीं रहे और भोजन व आवास का खर्चा भी भारी पड़ रहा है, उनके लिए स्कूल की फीस चुकाना खासतौर से एक बड़ी मुसीबत थी। अपने बच्चों को तुलनात्मक रूप से महंगे स्कूलों में भेजने वाले कई अभिभावकों ने कहा कि जिस दौरान स्कूल बंद थे, उस पूरी अवधि के लिए पूरी फीस वसूले जाने का कोई मतलब नहीं है। ट्यूशन फीस से अध्यापकों की तनख़्वाह का भुगतान होता है इसलिए उसकी वसूली समझ में आती है मगर स्कूल वाले तो लाइब्रेरी, विज्ञान की प्रयोगशाला, कंप्यूटर लैब और बिजली वगैरा के मद में भी लगातार पैसा वसूल करते रहे जबकि इनमें से किसी सुविधा का बच्चे इस्तेमाल नहीं कर रहे थे। ये मामला अदालत में भी गया मगर मां-बाप को कोई राहत नहीं मिली।

सस्ते प्राइवेट स्कूल आमतौर पर बच्चों से आने वाली फीस पर ही आश्रित रहते हैं इसलिए वे लगातार फोन कर करके और व्हॉट्सएप पर मैसेज भेज-भेजकर मां-बाप को फीस अदा करने के लिए परेशान करते हैं। जिन बच्चों के अभिभावक समय पर फीस अदा नहीं कर पाये या नौकरी या धंधा बंद हो जाने की वजह से बिलकुल फीस नहीं दे पाये, उनको ऑनलाइन क्लासेज़ में दूसरे बच्चों के सामने खुलेआम डांटा जाता है।

नौकरी छिन जाने के बावजूद कुछ अभिभावक अपने बच्चों को पढ़ाने के लिए प्राइवेट ट्यूशन जैसे पूरक साधनों का खर्चा उठाने में मुश्किलों का सामना कर रहे हैं। कई बच्चे ऐड़-टैक कंपनियों के कोर्स भी करते हैं और उनकी फीस अदा करने में भी मां-बाप को मुश्किल हो रही है। इसके फलस्वरूप मां-बाप में असंतोष बढ़ता जा रहा है क्योंकि उन पर वे सभी ऐड-टैक संसाधन खरीदने के लिए दबाव डाला जा रहा है और यह दबाव बनाने में स्कूल भी अप्रत्यक्ष रूप से शामिल हैं। सर्वेक्षणों से पता चलता है कि निजी स्कूलों से बहुत सारे बच्चे निकल चुक हैं (जैन एवं अन्य, 2020; सीएसएफ, 2020बी) क्योंकि उनके अभिभावक के पास अब कोई चारा नहीं बचा था। इस पर रिपोर्ट के अगले हिस्से में विस्तार से चर्चा की गयी है।

समाज के हाशियाई तबकों के बच्चे सबसे ज़्यादा प्रभावित हुए हैं
और लर्निंग की प्रक्रिया से बाहर छूट गये हैं।

स्कूलों पर ऑनलाइन पहुंच को बढ़ाने का दबाव

स्कूल प्रशासन के माध्यम से सरकार अध्यापकों पर इसके लिए लगातार दबाव डाल रही है कि वे ऑनलाइन क्लासेज़ को कुशलता से चलाएं। इसके जवाब में अध्यापक अभिभावकों पर दबाव डालते हैं कि वे अपने बच्चों को ऑनलाइन क्लासेज़ के लिए अच्छे उपकरण खरीद कर दें। अध्यापकों ने बताया कि सरकारी अधिकारी सिर्फ इस बात की चिंता करते हैं कि

ऑनलाइन क्लासेज़ में बच्चों की संख्या कितनी है ताकि वे डिजिटल लर्निंग की सफलता का दावा कर सकें। ये अधिकारी और स्कूल प्रमुख डिजिटल लर्निंग प्लेटफॉर्म्स के माध्यम से दिये जा रहे ज्ञान और पाठ्यचर्या के बारे में कोई चिंता नहीं करते। न ही वे इस बात पर ध्यान देते हैं कि जो कुछ पढ़ाया जा रहा है बच्चे उसे समझ पा रहे हैं या नहीं। उनका फोकस मुख्य रूप से पहुंच और सहभागिता के आंकड़ों पर रहता है।

एक सरकारी स्कूल अध्यापक ने हमें बताया, *"हमें हिदायत दी जाती है कि हम रोज़ अभिभावकों को फोन करके उन पर फोन खरीदने के लिए दबाव डालें। हमें मां-बाप को ये कहने के लिए कहा जाता है कि अगर आपकी नौकरी चली गयी है या आपके पास पैसा नहीं है तो इसमें स्कूल कुछ नहीं कर सकता। आप चाहे जो भी करें, आपको अपने बच्चे के लिए फोन खरीदना ही होगा ताकि वह क्लास में शामिल हो सके।"*

नीचे दिया गया अंश एक सरकारी स्कूल अध्यापिका का है जिन पर ऑनलाइन क्लासेज़ में बच्चों की हाजिरी बढ़ाने के लिए बहुत भारी दबाव डाला जा रहा था।

जुलाई 2020 में मैं लगभग 62 बच्चों की कक्षा को पढ़ा रही थी मगर ऑनलाइन अटेंडेंस सिर्फ 27 बच्चों की आ रही थी। मेरे प्रिंसिपल ने पूछा कि हाजिरी इतनी कम क्यों है। मैंने उनको साफ कहा कि मैंने हर बच्चे से बात की है और ये पाया है कि सभी के पास स्मार्ट फोन नहीं है। जिनके पास स्मार्ट फोन है वे क्लास में आ रहे हैं। जो स्कूल नहीं आते उनके पास या तो स्मार्ट फोन नहीं है या वे अपने फोन में रीचार्ज नहीं डलवा पा रहे हैं। कई घरों में फोन भाई के पास रहता है या वहां इंटरनेट कनेक्टिविटी नहीं है। कुछ के पास जियो फोन थे, कुछ अपने गांव चले गये थे या इतने तनाव में थे कि ऑनलाइन क्लासेज़ अटेंड नहीं कर सकते थे।

प्रिंसिपल ने मुझे कहा कि ये संख्या बहुत कम है क्योंकि हमें व्हॉट्सएप पर क्लास में आने वाले बच्चों की संख्या सरकार को भेजनी होती है। हमें पूरा ब्यौरा देना होता है कि कितने बच्चे ऑनलाइन क्लास में आते हैं और कितने नहीं आते। हम पर दबाव है कि हम ज़्यादा से ज़्यादा बच्चों की हाजिरी दिखाएं। हम यह मानकर नहीं चल सकते कि जिन बच्चों ने अपने व्हॉट्सएप नंबर दिये हैं वे ऑनलाइन क्लास में भी आ रहे होंगे। हम पर दबाव इतना ज़्यादा है कि इससे तंग आकर कुछ अध्यापकों ने कक्षा 10 और 12 के विद्यार्थियों को ये कहकर धमकाना शुरू कर दिया था कि यदि वे क्लास में नहीं आएंगे तो उन्हें बोर्ड के इम्तहान के लिए रजिस्ट्रेशन नहीं करने दिया जाएगा। कक्षा दो जैसी छोटी कक्षाओं के बच्चों पर भी दबाव डाला गया कि वे अपना काम समय पर जमा कराएं वर्ना उनको ऐबसेंट मान लिया जाएगा और उन्हें अगली कक्षा में नहीं भेजा जाएगा। पूरी शिक्षा मशीनरी किसी भी तरीके से ऑनलाइन शिक्षा की भारी सफलता को साबित करने में लगी हुई है। हमसे बस यही पूछा जाता है कि हमारे विद्यार्थी क्लास में आते हैं या नहीं और विडियो देखते हैं या नहीं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि बच्चे ने वह विडियो एक मिनट के लिए देखा या शुरू से आखिर तक देखा। हमें बच्चे से बस ये सुनना है कि उसने विडियो देख लिया है। सारा का सारा ध्यान हाजिरी पर और ये जानने पर होता है कि बच्चे ने भेजी गयी शैक्षिक सामग्री देख ली है। लर्निंग और कॉम्प्रीहेंशन पर कोई ध्यान नहीं देना चाहता।

नौकरी छूट जाने के डर से या अनुशासनात्मक मीमो जारी होने की आशंका में अध्यापक इन दबावों के सामने घुटने टेकते जा रहे हैं। ऐसा लगता है कि उन्होंने ये साबित करने के लिए हर तरह के बोझ को स्वीकार कर लिया है कि ऑनलाइन लर्निंग कामयाब रही है। इसके लिए उनका सारा जोर ऑनलाइन क्लासेज़ में ज़्यादा से ज़्यादा हाज़िरी और व्हॉट्सएप संदेशों पर बच्चों की एक्नॉलेजमेंट हासिल करने पर रहता है। अध्यापकों का ये दब्बूपन, किसी भी चीज़ पर प्रतिक्रिया न देना और आज्ञापालन का रवैया डिजिटल लर्निंग की भारी कामयाबी के बारे में सरकार द्वारा किये जा रहे झूठे दावों को और हवा देता है।

एक सरकारी स्कूल के अध्यापक ने कहा, *"प्रिंसिपल का भारी दबाव है कि अटेंडेंस ग्राफ को बढ़ाया जाए और ऑनलाइन पढ़ाई को कामयाब साबित किया जाए। इस अटेंडेंस ग्राफ को ऊपर ले जाने के चक्कर में अब बहुत सारे टीचर बच्चों और मां-बाप पर तरह-तरह से दबाव डालने लगे हैं। एक टीचर ने स्टाफ मीटिंग में प्रिंसिपल को बताया था कि अगर कोई बच्चा दस दिन तक क्लास से गैरहाज़िर रहता है तो वह उसके मां-बाप को संदेश देती हैं कि उनके बच्चे को व्हाट्सएप ग्रुप से निकाल दिया जाएगा और उसे कोई सामग्री नहीं मिलेगी। एक और अध्यापिका ने बताया कि वह मां-बाप पर दबाव डालने के लिए उनसे कहती हैं कि अगर उनका बच्चा क्लास में नहीं आएगा तो उसे स्कूल से निकाल दिया जाएगा। स्टाफ मीटिंग्स का एजेंडा ही ये होता है कि मां-बाप पर दबाव बढ़ाने के नये-नये तरीके ढूंढे जाएं ताकि बच्चे ऑनलाइन क्लासेज़ से किसी भी सूरत में गैरहाज़िर न रहें।"*

इससे बच्चों और मां-बाप के लिए नई मुश्किलें पैदा हुई हैं। खासतौर से उनके लिए, जोकि समाज के सबसे कमज़ोर तबकों से आते हैं। कई मां-बाप स्मार्ट फोन खरीदने के लिए अपने खाने-पीने में कटौती करने लगे हैं, कई लोगों ने कर्ज लेकर स्मार्ट फोन खरीदे हैं और इस तरह वे नये कर्ज के जाल में फंस रहे हैं। उन पर डाले जा रहे बेशर्मी भरे दबाव को बच्चे भी खूब समझते हैं।

एक सरकारी स्कूल में पढ़ने वाले चौथी कक्षा के बच्चे ने बताया, *"मैम कहती हैं कि जो अपना होम वर्क करके नहीं भेजेंगे, उन्हें अटेंडेंस नहीं मिलेगी और अगर अटेंडेंस नहीं होगी तो उन्हें पास नहीं किया जाएगा।"*

निजी स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों और ऑनलाइन क्लासेज़ में हिस्सा ले पा रहे बच्चों को भी उनके अध्यापक अकसर ये चेतावनी देते हैं कि अगर वे नियमित रूप से क्लास में नहीं आएंगे तो इससे उनके *"असेसमेंट पर असर पड़ेगा; उनके मां-बाप को खबर कर दी जाएगी या उन्हें क्लास के दौरान लगातार कैमरा ऑन रखना पड़ेगा।"* बच्चे की स्वायत्तता आमतौर पर ऑफलाइन क्लास रूम तक ही सीमित रहती है। ऑनलाइन लर्निंग में तो अध्यापक की निरंकुश छवि और बच्चे की लाचारी और भी ज़्यादा दिखायी देने लगी है। अध्यापक खुद दबाव में रहते हैं जिसके चलते वे अपनी सत्ता को और ज़्यादा दिखाते हैं और नये-नये अनुशासनात्मक नियम थोप रहे हैं जिससे बच्चे अपने अध्यापकों और सीखने की प्रक्रिया से दूर जाने लगते हैं।

टीचर्स पर लगातार इस बात के लिए दबाव डाला जा रहा है कि वे ऑनलाइन क्लासेज़ की सफलता और उपयोगिता सुनिश्चित करें। इसकी वजह से वे सार्थक ज्ञान प्रदान करने के बजाय केवल पहुंच और सहभागिता के आंकड़ों को बढ़ाने में ही लगे रह जाते हैं।

डिजिटल साधनों का केंद्रीकरण और समरूपीकरण

चौतरफा आर्थिक व सामाजिक गैर-बराबरी और तकनीक तक असमान पहुंच के बावजूद केंद्र और राज्य सरकारें ऑनलाइन लर्निंग को हर तरह से बढ़ावा और प्राथमिकता देने पर आमादा हैं। भारत सरकार की तरफ से *दीक्षा* और *स्वयं प्रभा* जैसे वेब बेस्ड प्लेटफॉर्म्स पर केंद्रीकृत डिजिटल संसाधनों और *ई-विद्या ऐप्स* आदि को जमकर बढ़ावा दिया जा रहा है। दिल्ली सरकार का शिक्षा निदेशालय विभिन्न कॉरपोरेट एवं नागर समाज संगठनों द्वारा तैयार की गयी डिजिटल टीचिंग सामग्री और यू-ट्यूब लिंक्स का खूब इस्तेमाल कर रही है। ऑनलाइन लर्निंग को बढ़ावा देने के लिए जिस तरह के केंद्रीकृत तरीके अपनाये जा रहे हैं, उससे पाठ्यचर्यात्मक विषयवस्तु और शिक्षाशास्त्रीय पद्धति के मामले में दिखायी पड़ने वाली रही-सही विविधता भी खत्म होती जा रही हैं। इसका नतीजा ये है कि अब अध्यापक भी अपनी कक्षाओं में विविधता को संबोधित करने और बच्चों की अलग-अलग ज़रूरतों पर ध्यान देने की स्थिति में नहीं बचे हैं। अध्यापकों को एक ऐसी तकनीकी-प्रबंधकीय भूमिका निभाने के लिए मजबूर किया जा रहा है जिसमें वे आउटसोर्स्ड यानी बाहरी निकायों द्वारा तैयार की गयी डिजिटल टीचिंग-लर्निंग सामग्री का प्रसार करने के लिए बाध्य हैं। अध्यापक की भूमिका अब सिर्फ इस बात का रिकॉर्ड रखने तक सीमित होती जा रही है कि कितने बच्चों ने भेजे गये विडियो और वर्कशीट्स को देखा है और कितने उसे नहीं देख पाए हैं।

एक सरकारी स्कूल अध्यापक ने बताया, *"एक अध्यापक को मालूम होता है कि उनके विद्यार्थी क्या समझते हैं और क्या नहीं। वे किस तरह के ज्ञान पर किस तरह की प्रक्रिया देंगे। मगर जब स्कूल कार्य का इस तरह सामूहिक उत्पादन होने लगता है तो बच्चों के अलग-अलग लर्निंग स्तर पर ध्यान देना असंभव हो जाता है। इससे अध्यापक और विद्यार्थी का संबंध भी टूट जाता है।"*

एक सरकारी स्कूल के एक और अध्यापक ने बताया कि *"टीचर्स शिक्षा निदेशालय की तरफ से आने वाले विडियो लिंक्स और वर्कशीट्स ही भेजते हैं। इस व्यवस्था में अध्यापक बिलकुल बेमानी हो चुके हैं। हमें सिर्फ कोविड-19 की ज़िम्मेदारियां निभानी होती हैं। हम पढ़ाना चाहते हैं लेकिन हमारे पास वह कहने के लिए भी आवाज नहीं बची है जिसके लिए हम नौकरी कर रहे हैं।"*

कई अध्यापकों ने हमें बताया कि उन्हें बच्चों को जो सामग्री भेजनी पड़ती है वह अकसर उनके कॉग्निटिव स्तर के अनुरूप नहीं होती। ज़्यादातर सामग्री स्कूली पाठ्यक्रमों का ही कटा-छंटा रूप होती है और बहुत सारे बच्चों को लगभग समझ में नहीं आती। अध्यापकों का मानना था कि बच्चों को पाठ्यपुस्तक पढ़ना और लिखना सिखाना ज़्यादा आसान है – इन स्लाइड्स को भेजने से ज़्यादा फायदा नहीं होता।

समाज के सबसे कमज़ोर तबकों के विद्यार्थी, फोन या इंटरनेट कनेक्टिविटी से वंचित दूरदराज गावों में रहने वाले बच्चे या इन साधनों को खरीदने में अक्षम बच्चे प्रायः इन ई-लर्निंग संसाधनों का इस्तेमाल ही नहीं कर पाते। जिस तरह स्कूलों को ऑनलाइन क्लासेज़ चलाने के मजबूर किया जा रहा है उसके चलते ऐसे करोड़ों बच्चे डिजिटल पहुंच की सीमाओं की वजह से लर्निंग प्रक्रिया में पिछड़ते चले जा रहे हैं। इस जबर्दस्ती ने मौजूदा शैक्षिक असमानताओं को और गहरा कर दिया है, पहुंच में असमानता व हाशियाई तबकों के लिए सीखने के अवसरों में कमी जैसे सवालों को फिर से जिंदा कर डाला है।

यह स्थिति बड़े प्राइवेट स्कूलों और दूसरे संसाधन संपन्न स्कूलों के मुकाबले अलग है। इन स्कूलों में तकनीकी बंदोबस्त मौजूद है इसलिए कई प्राइवेट स्कूलों में केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के दिशानिर्देशों के अनुसार बढ़िया ई-कॉन्टेंट तैयार करने के वास्ते उपयुक्त प्रक्रियाएं और तरीके भी विकसित कर लिये हैं। मगर, सस्ते प्राइवेट स्कूलों के पास ऐसी कोई सुविधा या बंदोबस्त नहीं है इसलिए या तो वे अपने बच्चों को डिजिटल सामग्री इस्तेमाल करने के लिए नहीं कहते या बंद होने लगे हैं। प्राइवेट सकूलों के अध्यापक तैयार की जा रही ई-लर्निंग सामग्री से काफी हद तक संतुष्ट दिखायी दिये। मगर ये अध्यापक भी इस बात को लेकर चिंतित थे कि बच्चों को जिन ऐप्स और विडियो चैनल्स का इस्तेमाल करने को कहा जा रहा है, यदि बच्चे केवल उन्हीं के सहारे रहेंगे तो उनकी सीखने की क्षमताओं में गिरावट आने लगेगी।

इस महामारी ने टीचर्स को टेक्नो-मैनेजरों की भूमिका निभाने के लिए मजबूर कर दिया है
जो बाहरी लोगों द्वारा तैयार करके भेजी गयी टीचिंग-लर्निंग सामग्री
का प्रसार भर करते दिखायी दे रहे हैं।

पाठ्यचर्या में मनचाहे बदलाव

केंद्र सरकार ने स्कूलों के लंबे समय तक बंद रहने का फायदा उठाकर न केवल लर्निंग की प्रक्रिया का और विषयवस्तु का केंद्रीकरण कर लिया है बल्कि स्कूली पाठ्यचर्या और पाठ्यपुस्तकों में भी बहुत सारे बदलाव किये हैं।[10]

एक सरकारी स्कूल की उच्च माध्यमिक कक्षा में पढ़ने वाले एक विद्यार्थी ने बताया, *"इस साल उन्होंने टेक्स्टबुक बदल दी हैं। अब समस्या ये है कि नई किताबें कहां से खरीदें? लॉकडाउन की वजह से बाजार में तो कोई किताब नहीं मिल रही। टीचर कहती हैं कि आपकी किताब में बदलाव किया गया है, चैप्टर्स के अंदर कई पैराग्राफ हटा दिये गये हैं। जगह-जगह से हिस्से हटाये या जोड़ दिये गये हैं। अब हम क्या करें?"*

तनाव और बेचैनी के दौर में बच्चों का बोझ कम करने के नाम पर पाठ्यचर्या में कटौती की आड़ लेकर सीबीएससी ने समाज विज्ञान की किताबों से ज़्यादातर आलोचनात्मक सामग्री हटा दी है। उदाहरण के लिए, पाठ्यचर्या से हटाये गये अध्ययायों में सेक्युलरिज्म, नागरिकता, जेंडर व जाति, संघवाद, लोकतंत्र व विविधता, राष्ट्रवाद, पड़ोसी देशों के साथ भारत के संबंध और भारत में स्थानीय निकायों के विकास जैसे महत्वपूर्ण और चिंतनपरक शीर्षक शामिल हैं (डेकन क्रॉनिकल, 2020)। महाराष्ट्र सरकार ने भी ये कहते हुए इसी तरह का कदम उठाया है कि 'किसानों की आत्महत्या जैसे विषय को पढ़ाना अनिवार्य नहीं है' (पीयूसीएल, 2020)।

बाद में, सीबीएससी ने ये कहते हुए स्पष्टीकरण जारी किया था कि पाठ्यक्रम में कटौती का मतलब ये है कि 'इम्तहान में इन अध्यायों से प्रश्न नहीं आएंगे मगर अध्यापकों को प्रोत्साहित किया जाएगा कि वे इन अध्यायों को पढ़ाते रहें' (मोहंती,

[10] पाठ्यचर्या संशोधन प्रक्रिया राष्ट्रीय स्तर की प्रक्रिया होती है। मगर, पाठ्यचर्यात्मक बदलाव किसी भी सत्र के मध्य में नहीं किये जाते हैं।

2020)। कुछ अध्यापकों ने बताया कि ऑनलाइन टीचिंग की इतनी समस्याओं को देखते हुए ऐसा बिलकुल नहीं लगता कि हमारे अध्यापक और विद्यार्थी उन अध्यायों और अवधारणाओं पर समय लगाएंगे जो इम्तहान में आने वाली ही नहीं हैं (मोहंती, 2020)। कई स्कूल अध्यापकों और प्रधानाचार्यों ने पाठ्यक्रम में इस कटौती का स्वागत किया है।

केंद्र और राज्य सरकारें ऑनलाइन लर्निंग को किसी भी तरह बढ़ावा देने और पाठ्चर्यात्मक एवं शिक्षाशास्त्रीय पद्धतियों का केंद्रीकरण करने पर आमादा हैं। स्कूली पाठ्यचर्या और पाठ्यपुस्तकों में बड़े पैमाने पर और मनमाने ढंग से बदलाव किये जा रहे हैं।

ऑनलाइन क्लासेज़ की शिक्षाशास्त्रीय समस्याएं

अध्यापकों ने कुछ विषयों को ऑनलाइन पढ़ाने में पेश आने वाली खास समस्याओं का भी ज़िक्र किया। मिडिल और हायर सेकेंडरी क्लासेज़ को पढ़ाने वाले टीचर्स ने बताया कि उन्हें गणित को ऑनलाइन पढ़ाने में खासतौर से कठिनाई पेश आयी है। विज्ञान पढ़ाने में भी उनको भारी दिक्कत हुई है क्योंकि विज्ञान के विषय प्रैक्टिकल पर बहुत निर्भर रहते हैं और प्रैक्टिकल केवल प्रयोगशाला में ही हो सकते हैं।

एक सस्ते प्राइवेट स्कूल में उच्च माध्यमिक कक्षाओं को पढ़ाने वाली एक अध्यापिका ने बताया कि *"मेरे लिए तो पढ़ाना बहुत मुश्किल हो गया है क्योंकि मैं गणित पढ़ाती हूं। गणित में कदम-दर-कदम अवधारणाओं को समझाना बहुत महत्वपूर्ण होता है और ऑनलाइन शिक्षा में एक समस्या बन गयी है। समस्या समाधान वाले प्रश्नों में लिखकर सवाल हल करना होता है मगर ऑनलाइन क्लासेज़ में ये बिलकुल बंद ही हो गया है। बहुधा तकनीकी रुकावटों की वजह से और कभी सिलेबस पूरा करने के दबाव या स्क्रीन टाइम कम होने की वजह से हम बच्चों के डाउट्स और सवालों को संबोधित ही नहीं कर पाते। बच्चे इस तरीके से विषय पर पकड़ नहीं बना पा रहे हैं।"*

एक प्राइवेट स्कूल की उच्चतर माध्यमिक कक्षा के एक विद्यार्थी ने बताया, *"हमें सांइस के प्रैक्टिकल नहीं कराये जा रहे हैं। जो भी विडियो भेजे जाते हैं, हम उनके आधार पर अपनी प्रैक्टिकल फाइल जमा करा देते हैं। हमें करके सीखने का कोई अनुभव नहीं मिल रहा है।"*

ऑनलाइन टीचिंग के लिए उपकरणों के इस्तेमाल और ऑनलाइन टीचिंग पद्धतियों के प्रति अनभिज्ञता भी अध्यापकों को बहुत परेशान कर रही है। सरकारी स्कूलों के अध्यापकों ने बताया कि मोबाइल फोन के ज़रिये पाठ्यचर्यात्मक सामग्री भेजने और उनके इस्तेमाल में बहुत परेशानियां होती हैं।

विभिन्न प्रकार की विकलांगता से पीड़ित बच्चों को खासतौर से बहुत ज़्यादा समस्याएं झेलनी पड़ रही हैं। इनमें से कई बच्चों की सीखने की गति अलग है, उनकी याददाश्त दूसरे बच्चों के मुकाबले भिन्न है इसलिए उन पर बहुत गहरा असर पड़ रहा है। डिजिटल प्लेटफॉर्म्स के ज़रिये अपनायी जा रही नयी शिक्षाशात्रीय पद्धति की ओर आए इस अचानक बदलाव से अध्यापकों पर बोझ कई गुना बढ़ गया है। वे लगातार इस जद्दोजहद में रहते हैं कि विकलांग बच्चे किस तरह शिक्षा के इस नये ढर्रे के साथ कदम से कदम मिलाकर चल पाएं।

विकलांग बच्चों की शिक्षाशास्त्रीय चिंताओं पर जोर देते हुए एक सरकारी स्कूल शिक्षक ने बताया, *"ऑनलाइन तरीका विकलांग बच्चों के लिए सबसे ज़्यादा मुश्किल होता है। मेरी कक्षा में दो बच्चे हैं जो सुन और बोल नहीं सकते। मैं ऑनलाइन कक्षा में उनके लिए कुछ नहीं कर पाती। चार-पांच महीने से वे सीखने की प्रक्रिया से बिलकुल बाहर हैं। अगर मैं उन्हें एक्शंस के साथ विडियो भेजती हूं तो भी वे सिर्फ देख सकते हैं, सुन नहीं पाते। मैं उनसे फोन पर बात करना चाहती हूं मगर वे अपने डाउट्स नहीं बता सकते। इन बच्चों के साथ किसी तरह का फॉलोअप नहीं होता। उनके मां-बाप से भी हमें कोई खास मदद नहीं मिलती क्योंकि उन्हें भी अपने काम पर जाना होता है।"*

विभिन्न प्रकार की विकलांगता से पीड़ित बच्चों को पढ़ाई जारी रखने में ज़बर्दस्त चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।

तमाम सरकारी और निजी स्कूलों के बच्चों को ऐसा लगता है कि ऑनलाइन क्लासेज़ के दौरान जो चीज़ें पढ़ाई जाती हैं वे सिलेबस के मुकाबले काफी हल्की होती हैं। समय की सीमा और ऑनलाइन पद्धति की सीमाओं की वजह से उन्हें छोटे-छोटे टुकड़ों में सामग्री मिलती है और यह सामग्री भी या तो इंटरनेट से उठायी गयी होती है या सीधे पाठ्यपुस्तकों में से उठाकर भेज दी जाती है।

चित्र 3 : व्हॉट्सएप के सहारे पढ़ रहा है एक बच्चा, दिल्ली

एक सरकारी स्कूल में पढ़ने वाले सीनियर सकेंडरी क्लासेज़ के एक विद्यार्थी ने बताया, *"टीचर्स तो शॉर्टकट ढूंढ लेती हैं। उनको मालूम है कि ऑनलाइन में सब कुछ तो समझाया नहीं जा सकता। सो वह संक्षेप में एक्स्प्लेन करती हैं और फिर वीडियो या नोट्स भेजकर सारी ज़िम्मेदारी हमारे ऊपर छोड़ देती हैं। टीचर्स जो नोट्स भेजती हैं वो रेडीमेड होते हैं। उनके पास बहुत सारी गाइड्स हैं। वे उनमें से फोटो खींचकर हमारे व्हॉट्सएप ग्रुप में डालती रहती हैं।"*

एक सरकारी स्कूल में पढ़ने वाले एक अन्य सीनियर सेकेंडरी विद्यार्थी ने बताया कि *"हम लॉगिन करके अटेंडेंस के लिए अपना अपना रोल नंबर टीचर्स को भेज देते हैं। फिर हम इधर-उधर के काम में लग जाते हैं। क्लास के दौरान ही बच्चे या तो व्हॉट्सएप पर दोस्तों के साथ चैटिंग करने लगते हैं या इंस्टाग्राम पर चले जाते हैं। समझने में हमें ऑफलाइन क्लासेज़ में ही इतनी मुश्किल होती थी, अब ऑनलाइन से भला कैसे बात बनेगी? अब तो हालत और खराब हो गयी है।"*

साधनसंपन्न प्राइवेट स्कूलों में कोशिश की जा रही है कि बच्चे *क्विज़, क्वीज़लेट, काहूट, आन्सर गार्डेन* और *पैडलेट* जैसे तरह-तरह के ऐप्स की मदद से बच्चों को साथ लेकर चलने और उनको मदद देने की कोशिश की जा रही है। बच्चों की दिलचस्पी पैदा करने में शुरुआत में इनसे काफी मदद मिली मगर, इन ऐप्स के लगातार इस्तेमाल से बच्चों में एक ऊब पैदा हो गयी है और ऑनलाइन क्लासेज़ में उनकी दिलचस्पी कम हुई है। बहुत सारे बच्चों को ऑनलाइन क्लासेज़ के दौरान चीज़ों को समझने और अवधारणाओं को आत्मसात करने में अच्छी-खासी समस्याओं का सामना करना पड़ा है।

एक मंहगे प्राइवेट स्कूल की सीनियर सेकेंडरी कक्षा में पढ़ने वाले एक विद्यार्थी ने बताया, *"हम लोग ऑनलाइन गेम्स खेलते हैं। क्लासेज़ के दौरान काहूट सबसे लोकप्रिय क्विज़ गेम है। जब भी कोई अवधारणा पूरी होती है तो टीचर एक काहूट तैयार करके हमें भेज देती हैं। ये हमें जोड़े रखने का एक अनौपचारिक तरीका है और इसमें मजा भी आता है। अब काफी समय हो गया है। हम बार-बार यही गेम खेलकर ऊबने लगे हैं। अब ये गेम भी क्लास की निरसता को तोड़ नहीं पाता।"*

विद्यार्थियों और अध्यापकों का एक-दूसरे के साथ संबंध, सहपाठियों के साथ मिल-जुलकर सीखना और लगातार संवाद व बहस-मुबाहिसा लर्निंग की प्रक्रिया में बुनियादी चीज़ें होती हैं। ये सिलसिला अब पूरी तरह टूट चुका है। विद्यार्थियों को जो अवधारणाएं और मुद्दे पढ़ाये जाते हैं वे उनके बारे में स्पष्टता हासिल करने के लिए कुछ नहीं कर पाते। ऑफलाइन क्लासरूम अकसर बच्चों के व्यक्गित ज्ञान को परखने, उनकी दिलचस्पियों को परखने, उनके घर-समाज के अनुभवों पर बात करने का एक खुला साधन होता था। अब ये सब कुछ पूरी तरह बंद हो चुका है। टीचिंग-लर्निंग प्रक्रिया पूरी तरह अव्यक्तिगत और शुष्क बन चुकी है, यह विद्यार्थी और अध्यापक दोनों के उत्साह और जिज्ञासा को मार रही है।

एक प्राइवेट स्कूल में पढ़ने वाले बच्चे के पिता/माता ने बताया, *"वे लोग पूरी क्लास के सारे सेक्शंस के बच्चों को मिलाकर बहुत बड़ा ग्रुप बना देते हैं। मेरे बच्चे के ग्रुप में बच्चों की तादाद सौ से ऊपर चली गयी थी और उनको पढ़ाने के लिए सिर्फ एक अध्यापिका होती थी। ऐसी स्थिति में और ऑनलाइन अध्यापन के दौरान तरह-तरह की चीज़ों पर ध्यान रखने की मजबूरी के चलते टीचर बच्चों पर अलग-अलग ध्यान नहीं दे पाती। सेक्शनों को मिलाकर पढ़ाने के सवाल पर स्कूल कोई पारदर्शी तरीका भी नहीं अपनाते। ऐसा लगता है कि खर्चा बचाने के लिए वे अध्यापकों को नौकरी से निकालना चाहते हैं। इसीलिए ऐसा किया जा रहा है।"*

ऑनलाइन क्लासेज़ के लिए सेक्शंस को आपस में मिलाने का चलन बहुत सारे स्कूलों में दिखायी दिया। इसकी वजह से बच्चों की लर्निंग स्वाभाविक रूप से प्रभावित होती है क्योंकि इसमें बच्चों को या तो सेल्फ लर्निंग के ज़रिये या निजी ट्यूशनों के ज़रिये कमियों की भरपाई करनी पड़ती है।

स्कूलों के बंद होने का व्यवस्थागत प्रभाव

महामारी और स्कूलों के बंद होने से कुछ ऐसे व्यवस्थागत प्रभाव भी पड़े हैं जिनसे शिक्षा की उपलब्धता में बड़ी संरचनात्मक कमियां और कठिनाइयां पैदा होंगी। इन कमियों को दूर करने में स्कूलों के खुलने के बाद भी बहुत समय लगने वाला है। पहली बात तो यही है कि बहुत सारे सस्ते निजी स्कूल बंद हो चुके हैं क्योंकि उनके लिए अपना खर्च उठाना भी संभव नहीं रह गया था। इसकी वजह से सरकारी स्कूलों में दाखिले बढ़ गये हैं। इसे सरकारी स्कूल व्यवस्था को पुनर्जीवित करने का एक अवसर भी माना जा सकता है। दूसरी बात, कॉन्ट्रैक्ट पर काम करने वाले बहुत सारे अध्यापकों को महामारी के दौरान नौकरी से हटा दिया गया था जिससे अध्यापकों की कमी की समस्या और भी ज़्यादा गंभीर हो गयी है। तीसरी बात, प्राइमरी स्कूलों के ज़्यादातर अध्यापकों को कोविड-19 संबंधी ड्यूटीज़ में तैनात कर दिया गया जिससे उनके सामने बीमारी और मृत्यु की आशंका बहुत ज़्यादा बढ़ गयी है। प्रस्तुत भाग में इन तीनों पहलुओं पर चर्चा की गयी है।

सस्ते स्कूलों का बंद होना

बहुत सारे बच्चे सस्ते प्राइवेट स्कूलों में पढ़ते हैं या पढ़ते थे। ऐसे बहुत सारे बच्चों को उनके परिवारों ने स्कूल से निकालकर सरकारी स्कूलों में दाखिल करा दिया है। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि महामारी के दौरान बहुत सारे लोगों की कमाई और रोज़गार खत्म हो गये थे। वे इन प्राइवेट स्कूलों की मामूली फीस अदा करने की स्थिति में भी नहीं थे इसलिए बहुत सारे मां-बाप के पास बच्चों को इन स्कूलों से निकाल लेने के सिवा कोई चारा नहीं बचा था। इनमें ज़्यादातर बच्चे ऐसे थे जो प्रवासी परिवारों और अनौपचारिक मज़दूरों के थे। ऐसे लाखों परिवारों को तो रोज़गार छिन जाने पर शहर छोड़कर भी भागना पड़ा।

एक सरकारी स्कूल अध्यापक ने हमें बताया, *"अभी तक कक्षा चार और पांच में दाखिला लेने वाले 37 विद्यार्थियों में से कम से कम 30 बच्चे सस्ते निजी स्कूलों से नाम कटाकर आए हैं। वैसे तो हर साल ही ऐसा होता है मगर महामारी ने यह संख्या काफी बढ़ा दी है।"*

लॉकडाउन के दौरान अपनी नौकरी गंवा चुके और मिडिल स्कूल में पढ़ने वाले एक बच्चे के पिता ने बताया कि *"मेरे पास नौकरी नहीं है। जब स्कूल बंद हुए तो मेरी नौकरी भी जाती रही। अब आठ महीने हो चुके हैं। मैं एक इंटरनैशनल स्कूल में सफाई कर्मचारी था। अब हालत ये है कि मैं अपने परिवार का पेट पालने के लिए भी कर्जा लेकर काम चला रहा हूं। कर्ज बढ़ता जा रहा है और समझ में नहीं आ रहा है कि मैं चुकाऊंगा कैसे। इसीलिए मैंने अपनी बेटी को भी प्राइवेट स्कूल से निकालकर घर के पास सरकारी स्कूल में दाखिला दिला दिया है क्योंकि मैं उसकी फीस नहीं चुका सकता था।"*

एक सस्ते निजी स्कूल की पहली कक्षा में पढ़ने वाले एक बच्चे की मां ने बताया कि उसको भी स्कूल वालों ने काफी परेशान किया है क्योंकि वह परिवार की बिगड़ी हुई आर्थिक स्थिति के कारण फीस नहीं चुका पा रही थी। **विडियो 1** में उसके अनुभव को देखा जा सकता है।

जब लोग इन सस्ते प्राइवेट स्कूलों की फीस नहीं चुका पाये तो ऐसे बहुत सारे स्कूल दिवालियेपन की कगार पर पहुंचकर बंद हो गये। टीईएसएफ टीम के साथ हुई एक पैनल चर्चा में सेंट्रल स्क्वेयर फाउंडेशन (सीएसएफ) की एक प्रतिनिधि ने इसी चिंता को व्यक्त करते हुए कहा, *"'किफायती निजी स्कूल क्षेत्र' महामारी से प्रभावित होने वाले सबसे बड़े क्षेत्रों में से एक रहा है। प्रत्येक दो में से एक बच्चा प्रायः इन्हीं सस्ते प्राइवेट स्कूलों में जाता है और ऐसे ज़्यादातर स्कूलों पर सीधे असर पड़े हैं। ये स्कूल इसलिए संकट से जूझ रहे हैं क्योंकि उनमें पढ़ने वाले बच्चों के मां-बाप अकसर इन स्कूलों की फीस भी अदा नहीं कर पा रहे थे। अब ये स्कूल अपनी आय के दम पर कायम नहीं रह सकते थे। लिहाज़ा न केवल ये स्कूल बंद हो चुके हैं बल्कि निकट भविष्य में ऐसे बहुत सारे स्कूल बंद हो जाएंगे जोकि एक बहुत दुखद स्थिति है।"*

लॉकडाउन के बाद भयानक तादाद में लोगों के पलायन से निजी स्कूलों के दाखिलों में गिरावट स्वाभाविक थी। संभवतः बहुत सारे ऐसे अभिभावक अपने बच्चों को अब पुराने स्कूल में दाखिल भी नहीं करा पाएंगे। अगर आर्थिक संकट और गहन हुआ तो मां-बाप निजी स्कूलों के मुकाबले सरकारी स्कूलों को प्राथमिकता देंगे। इस बदलाव को देखते हुए सीमित साधनों वाले स्कूल बड़ी तादाद में बंद हो सकते हैं (सीएसएफ, 2020बी)। महामारी और लॉकडाउन से लगे आर्थिक झटके के बावजूद गुरुग्राम में बहुत सारे प्राइवेट स्कूलों ने फीस में किसी भी तरह की रियायत देने से साफ इनकार कर दिया। इसी वजह से लगभग 43,000 बच्चों ने निजी स्कूल छोड़कर हरियाणा के सरकारी स्कूलों में दाखिला ले लिया है (यादव, 2020)।

बड़े पैमाने पर आमदनी और आजीविका खत्म हो जाने की वजह से सस्ते प्राइवेट स्कूल बड़ी संख्या में बंद हुए हैं। इसके कारण बहुत सारे बच्चे सरकारी स्कूलों में लौटने लगे हैं।

बड़ी संख्या में सस्ते प्राइवेट स्कूलों के बंद होने पर स्कूली शिक्षा के निजीकरण की हिमायती संस्था सेंट्रल स्क्वेर फाउंडेशन (सीएसएफ) का सुझाव है कि इन स्कूलों को नियमन के दायरे में लेकर उन्हें कंपनी अधिनियम के तहत पंजीकृत किया जाए और उन्हें "कॉरपोरेट गवर्नेंस स्ट्रक्चर" के तहत लाया जाए। सस्ते निजी स्कूलों के लिए राजकीय सहायता की वकालत करते हुए सीएसएफ का स्पष्ट मत है कि उन्हें "सूक्ष्म, लघु अथवा मझौले उद्यमों" की श्रेणी में पंजीकृत किया जाए ताकि वे सरकार से ऋण लेने के लिए आवेदन कर सकें (2020बी)। निजी स्कूलों के पक्ष में इस एडवोकेसी को राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी, 2020) में भी संस्थागत समर्थन मिल रहा है (भारत सरकार, 2020 बी)।

अध्यापकों की छंटनी और तनख़्वाह में कटौती

महामारी का एक बड़ा नुकसान ये हुआ है कि जो अध्यापक ठेके पर यानी कॉन्ट्रैक्ट पर पढ़ा रहे थे उनमें से बहुत सारे अध्यापकों की नौकरी चली गयी है। मार्च 2020 में लॉकडाउन की घोषणा होने के बाद बहुत सारे कॉन्ट्रैक्ट टीचर्स को मनमाने ढंग से निकाल दिया गया था।

एक सरकारी स्कूल में पढ़ाने वाले एक गेस्ट टीचर ने बताया, *“एक दिन मैं सुबह उठा और अचानक आठ बजे स्कूल से मैसेज आया कि मुझे नौकरी से मुक्त कर दिया गया है। एक पल में मुझे बाहर कर दिया गया। आमतौर पर किसी को नौकरी से हटाने के पहले कम से कम दस दिन का एडवांस नोटिस दिया जाता है। और इधर मैं तो अभी नींद से उठा ही था कि प्रिंसिपल की तरफ से मुझे एक लाइन का ये मैसेज मिलता है कि अब स्कूल से मुझे हटा दिया गया है, मैं नौकरी से मुक्त होने का पत्र लेने के लिए जल्दी से जल्दी स्कूल पहुंचूं।”*

ऑल इंडिया गेस्ट टीचर्स एसोसिएशन के अध्यक्ष शोएब राणा ने बताया कि पहले बहुत सारे गेस्ट टीचर्स को मिशन बुनियाद के लिए समर कैंप और दूसरी रिमेडियल योजनाओं के तहत छुट्टियों में भी काम पर बुला लिया जाता था। चूंकि अब स्कूल बंद कर दिये गये थे इसलिए इन अध्यापकों को गर्मी की छुट्टियों के दौरान होने वाली गतिविधियों व कक्षाओं के लिए भी नहीं बुलाया जा सका (इफ्तिख़ार, 2020)।

कुछ सरकारी स्कूलों के गेस्ट टीचर्स को और सर्वशिक्षा अभियान (एसएसए) के तहत काम कर रहे अध्यापकों को कुछ महीने बाद वापस स्कूलों में बुलाया गया। मगर, स्थानीय सरकारी स्कूलों में काम करने वाले कॉन्ट्रैक्चुअल टीचर्स अभी भी नौकरी से बाहर हैं। इन लोगों में गहरी हताशा भरती जा रही है। ज़्यादातर अध्यापकों ने बताया कि उन्होंने अपनी कॉन्ट्रैक्चुअल टीचर्स वेलफेयर एसोसिएशन के माध्यम से नौकरी वापस पाने की हर मुमकिन कोशिश की है मगर अभी तक तो कोई कामयाबी हाथ नहीं लगी है।

एक कॉन्ट्रेक्चुअल टीचर ने बड़ी बेचैनी के साथ बताया, *“हम सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स पर लगातार लिख रहे हैं। मानव संसाधन विकास मंत्रालय के ट्विटर प्लेटफॉर्म पर भी हम लगातार लिख रहे हैं मगर अब तो बात नहीं बनी।”*

एक और स्थानीय सरकारी स्कूल में काम करने वाले एक कॉन्ट्रैक्चुअल टीचर ने बताया, *“दिल्ली के स्थानीय सरकारी स्कूलों में 4,000 हज़ार से ज़्यादा कॉन्ट्रैक्चुअल टीचर हैं मगर उनके नाम अध्यापकों की सूची में कभी दर्ज नहीं होते। उनका पद हमेशा रिक्त ही दिखाया जाता है। जब उनका कॉन्ट्रैक्ट खत्म होता है तो उन्हें चुपचाप बाहर का दरवाजा दिखा दिया जाता है। यही कारण है कि जब शहर पर महामारी का हमला हुआ तो शिक्षा व्यवस्था से सबसे पहले कॉन्ट्रैक्चुअल टीचर्स को ही निकाला गया।”*

कॉन्ट्रेक्ट पर काम कर रहे बहुत सारे टीचर्स को महामारी के दौरान नौकरी से निकाल दिया गया।

जिन कॉन्ट्रैक्चुअल टीचर्स के पास गांव में अपना घर और जमीन है, वे गांव लौटकर दुबारा खेतीबाड़ी में लग गये हैं। बहुत सारे ऐसे हैं जिनके पास ऐसा कोई बंदोबस्त नहीं है। वे शहर में जैसे-तैसे बसर कर रहे हैं। इसमें कोई शक नहीं कि उन पर कर्जे का बोझ बढ़ता जा रहा है। मगर इन लोगों ने अभी उम्मीद का दामन भी नहीं छोड़ा है।

एक अध्यापक ने बताया, *“कॉन्ट्रैक्चुअल टीचर्स के बिना ये सिस्टम चल ही नहीं सकता। ज़्यादातर स्कूलों में आधे से ज़्यादा टीचर्स कॉन्ट्रैक्चुअल टीचर्स ही हैं। लिहाज़ा ये तो पक्का है कि हमें दोबारा कॉन्ट्रैक्ट पर रख लिया जाएगा मगर हो सकता है इसमें बहुत समय लग जाए।”* अनुमानों से पता चलता है कि दिल्ली सरकार के स्कूलों में कॉन्ट्रैक्चुअल टीचर्स की तादाद लगभग 34% है।

दूसरी तरफ, सरकारी स्कूलों में पढ़ाने वाले परमानेंट यानी स्थायी टीचर्स भी अपनी लड़ाई लड़ रहे हैं। इन अध्यापकों ने बताया कि उन्हें जो तरख्वाह मिलती है उसमें कई तरह की कटौतियां कर ली जाती हैं। ख़ासतौर से नगर निगम के नॉर्थ ज़ोन में चलने वाले स्कूलों के सामने संसाधनों का संकट महामारी के पहले ही शुरू हो चुका था क्योंकि इस ज़ोन में राजस्व संग्रह की स्थिति संतोषजनक नहीं थी। लॉकडाउन के दौरान स्थिति बिगड़ती चली गयी क्योंकि आर्थिक गतिविधियां ठप हो चुकी थीं। नॉर्थ ज़ोन के स्कूलों में आने वाले टीचिंग और नॉन टीचिंग स्टाफ को लॉकडाउन की घोषणा के बाद तनख़्वाह मिलनी बंद हो गयी थी। महामारी के पहले भी उन्हें दो-दो महीने की देरी से तनख़्वाह मिल रही थी। महामारी से समस्या गंभीर हो गयी और भुगतान में कई कई महीने का विलंब होने लगा। ये संकट उन अध्यापकों के लिए बहुत गंभीर है जो अपने परिवार में एकमात्र कमाऊ सदस्य हैं। ये तब है जबकि उन्हें महामारी के बावजूद प्रशासकीय कामों के लिए, स्कूल में दाखिले के लिए, किताबों और वर्कशीट्स के वितरण के लिए हफ्ते में चार दिन स्कूल बुलाया जा रहा था।

ऊपर से कोविड-19 से जुड़े काम भी उन्हीं को सौंप दिये गये। जैसे, राशन वितरण, मेडिकल कैंप में हिस्सेदारी, डिस्पेंसरी और टीकाकरण अभियान में हिस्सेदारी वगैरा।

नॉर्थ ज़ोन के एक अध्यापक ने बताया, *"टीचर्स एसोसिएशन ने अदालत में सरकार के खिलाफ मुकदमा दायर किया है क्योंकि सरकार हमारी तनख़्वाह का भुगतान नहीं कर रही है। अध्यापकों को खुश करने और अदालत की फटकार को टालने के लिए सुनवाई से ठीक पहले हमे एक महीने की तनख़्वाह का भुगतान कर दिया जाता है।"*

ये अध्यापक अपने अधिकारों के लिए जगह-जगह अपनी लड़ाई लड़ रहे हैं। सरकारी अधिकारी बार-बार आश्वासन देकर उन्हें टरका देते हैं। मनमाने ढंग से नौकरी से हटा देने से लेकर तनख़्वाह में कटौती और विलंब तक कुल मिलाकर अध्यापक सरकार की उपेक्षा के शिकार हैं। स्कूल अध्यापकों की ये लड़ाई अथक जारी है हालांकि उनमें से कई अब देश के विभिन्न भागों में कोविड-19 संबंधी ज़िम्मेदारियों का निर्वाह करते हुए (तोमर 2021) और चुनावों में ड्यूटी निभाते हुए वायरस से संक्रमित होकर मर चुके हैं (दि लॉजिकल इंडियन, 2021)। महामारी अभी खत्म नहीं हुई है और इस बीच स्कूल अध्यापकों ने जो कुछ झेला है और झेल रहे हैं वह व्यवस्था की गहरी विफलता और सरकार की उपेक्षा का लक्षण भर है।

अध्यापक और कोविड-19 कार्यबल

समय-समय पर अध्यापकों को सरकारी अधिसूचनाओं के तहत कोविड-19 संबंधी ड्यूटीज़ के लिए तैनात कर दिया जाता है। उन्हें 'कोविड सेनानी' का नाम देकर कोविड-19 संबंधी सूचनाएं इकट्ठा करने, लोगों के शरीर का तापमान और हृदयगति चेक करने, सार्वजनिक स्थानों पर लोगों के ऑक्सीजन का स्तर जांचने और सार्वजनिक स्थानों पर मास्क न पहनने वालों से जुर्माना वसूल करने जैसे कामों में झोंक दिया जाता है। एक इलाके में अध्यापकों को निर्देश दिया गया था कि वे हर रोज़ चिकित्सा अधिकारियों के पास 50 से 100 डेटा पॉइंट जमा कराये। ये एक बड़ी चुनौती थी क्योंकि लोग उन्हें जरूरी चीज़ों की जांच नहीं करने देते थे और जरूरी जानकारियां देने से कतराते थे।

चित्र 4 : दिल्ली में एक अध्यापिका लोगों का तापमान और ऑक्सीजन स्तर जांच रही है

एयरपोर्ट पर ऐसे लोगों के पासपोर्ट ज़ब्त करने का ज़िम्मा भी अध्यापकों को सौंपा गया जो आवश्यक कोविड टेस्ट के बिना शहर में दाखिल हो रहे थे। चालान कलेक्शन ड्यूटी के तहत उन्हें मास्क न पहनने पर प्रतिदिन 15-20 लोगों के चालान काटने का टारगेट दिया गया था। अलग-अलग चीज़ों के लिए मनमाने ढंग से टारगेट तय किये गये थे। इलाकों के निर्धारण का भी कोई तय नियम नहीं था। जिन स्कूलों को क्वॉरंटीन सेंटरों में तब्दील कर दिया गया था, वहां भोजन वितरण का ज़िम्मा भी अध्यापकों को ही सौंपा गया था।

नीचे दिये गये उद्धरण से पता चलता है कि अध्यापकों ने 'कोविड सेनानी' के रूप में किस तरह की व्यवस्थागत हिंसा का सामना किया है और कर रहे हैं।

मैं पिछले 6 महीने से कोविड-19 की ड्यूटी पर जा रहा हूं। मुझे सप्ताहांत में भी जाना होता है। मैंने कंटेनमेंट ज़ोन तैयार किये हैं और उनको डीकंटेन किया है। मैं प्रयोगशाला जांच कार्यों में भी शामिल रहा। मैने नोडल ऑफिसर की ज़िम्मेदारी भी निभायी है। मैंने होम आइसोलेशन की औपचारिकताओं को भी पूरा किया है हालांकि ये काम टीचर्स का नहीं है बल्कि एएनएम (ऑग्जिलरी नर्स मिडवाइफ) का होता है। अगर टीचर्स नहीं आते हैं या काम नहीं करते या टारगेट पूरा नहीं कर पाते तो उन्हें कारण बताओ नोटिस की धमकी दी जाती है। तमाम तरह की कोविड-19 ड्यूटीज़ निभाते हुए मुझे 6 महीने से ज़्यादा समय हो चुका है। मैं कोविड-19 ड्यूटीज़ के खिलाफ नहीं हूं क्योंकि ये तो मेरे लिए सीखने का एक जबर्दस्त अवसर साबित हुआ है। हमने अध्यापक के तौर पर तमाम तरह के लोगों को संभाला है।

मगर टीचर्स के प्रति जो भारी अपमान और असंवेदनशीलता का व्यवहार दिखायी देता है, उससे मैं बहुत दुखी हूं। हमारी सुरक्षा की कोई परवाह नहीं करता। डिस्पेंसरियों में ज़रूरी साधन तक नहीं आते। हमें कोई चिकित्सा बीमा नहीं मिलता। अध्यापकों को प्रभारी चिकित्सा अधिकारी और सरकारी अधिकारियों की दया पर छोड़ दिया जाता है। मेरी पढ़ाने की ज़िम्मेदारी तो बिलकुल हाशिये पर चली गयी है। कोविड-19 ड्यूटीज़ के दौरान ही यूनिट टेस्ट हुए हैं और अब मिड टर्म टेस्ट होने वाले हैं मगर अपने विद्यार्थियों को पढ़ाने का मेरे पास समय नहीं है। मैं बस प्रश्न तैयार करती हूं, पेपर जांचती हूं और रिजल्ट तैयार कर देती हूं। बच्चों के मैसेज आते हैं तो मैं उनका जवाब दे देती हूं। इसके अलावा कुछ नहीं हो पाता। शुरू में मुझे बुरा लगता था मगर अब मैं भावनात्मक रूप से बहुत रूखी हो चुकी हूं। मैं दोनों काम नहीं कर सकती। अब मैंने इस बात को मान लिया है।

जनवरी 2021 में टीकाकरण शुरू होने के बाद अध्यापकों को टीकाकरण एवं स्वास्थ्य केंद्रों में तैनात किया जाने लगा था। दूसरी लहर के बीच में उत्तर-पूर्वी दिल्ली के सब-डिविजनल मजिस्ट्रेट (एसडीएम) की तरफ से ऑडर जारी किया गया था कि कोरोना वायरस से मरे लोगों के शवों पर नज़र रखने के लिए भी शिक्षकों को तैनात किया जाए।

ज़्यादातर प्राइमरी स्कूल टीचर्स को कोविड-19 संबंधी कामों के लिए तैनात कर दिया गया जिससे उनके सामने संक्रमण का खतरा पैदा हुआ और कई की मृत्यु भी हुई।

यदि अध्यापक किसी अनपेक्षित काम को करने में विफल होते हैं तो चिकित्सा अधिकारियों सहित उन्हें तमाम दूसरे सरकारी अधिकारियों की फटकार भी झेलनी पड़ती है। अगर उन्हें कोविड-19 से जुड़ी ड्यूटी दी जाती है तो उन्हें छुट्टी पर जाने की छूट नहीं होती है। मेडिकल ऑफिसर्स ने जोर देकर कहा है कि अध्यापकों को छुट्टी लेने का अधिकार तभी मिलेगा जब वे काविड-19 पॉज़िटिव होने का प्रमाणपत्र दिखाएंगे।

ये स्पष्ट नहीं है कि जब ज़्यादातर कॉन्ट्रैक्चुअल टीचर्स को नौकरी से निकाल दिया गया है और हज़ारों शेष टीचर्स को कोविड-19 और चुनाव संबंधी गतिविधियों में तैनात कर दिया गया है तो फिर उनके स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों की पढ़ाई कैसी चल रही है।

निष्कर्ष और मुख्य सीख

अनुसंधान के नतीजों से पता चलता है कि महामारी और स्कूलों के बंद होने से निजी और सरकारी स्कूलों पर अलग-अलग तरह के असर पड़े है। सबसे बुरा असर हाशियाई तबकों के बच्चों की शिक्षा पर पड़ा है जो लर्निंग की पूरी प्रक्रिया से बाहर ढकेल दिये गये हैं। सरकारों के लिए ये महामारी शिक्षा के डिजिटलीकरण के नवउदारवादी एजेंडा[11] की ओर बढ़ने का एक बेहतरीन मौका साबित हुई है हालांकि देश भर में इंटरनेट और तकनीकी साधनों तक पहुंच में भारी असमानताएं मौजूद हैं। डिजिटल लर्निंग को संस्थागत रूप और वैधता देने के लिए इसे महामारी के दौरान जारी की गयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 में भी शामिल कर लिया गया है हलांकि इस पर भारतीय संसद में भी कोई खास चर्चा नहीं हो पायी थी।

[11] शिक्षा का डिजिटलीकरण करना कुछ समय से एजेंडा पर रहा है और अब राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 के ज़रिये इसे वैधता दी जाने लगी है।

शिक्षा के डिजिटलीकरण की प्रक्रियाओं ने पाठ्यचर्या व शिक्षाशास्त्र के मामले में स्कूल अध्यापकों की एजेंसी/स्वायत्तता को बिलकुल खत्म कर दिया है। विद्यार्थियों और अध्यापकों का मानसिक स्वास्थ्य एक महत्वपूर्ण विषय बन गया है जिसको सरकार लगातार नज़रअंदाज कर रही है। फलस्वरूप, बच्चों व अध्यापकों में जबर्दस्त भावनात्मक तनाव पैदा हो रहा है। इन सारे पहलुओं पर प्रस्तुत भाग में बात की गयी है।

अध्यापकों की स्वायत्ता का खात्मा

पिछले कुछ सालों के दौरान नवउदारवादी सुधारों ने पाठ्यचर्या और शिक्षाशास्त्रीय चयन जैसे मामलों में भी स्कूल अध्यापकों की स्वायत्तता बहुत कुंद कर दी है। अध्यापकों की पेशेवर क्षमताओं व आकलन, संवेदनशीलता, प्रशिक्षण और शिक्षा को लगातार नज़रअंदाज किया गया है। यह व्यवस्था अध्यापकों को इस लायक भी नहीं मानती कि वे अपनी नौकरी को निभा सकें। फीडबैक की ऐसी कोई व्यवस्था भी नहीं है जिसके ज़रिये अध्यापक अपने पेशेवर व्यवहार व चिंताओं पर अपनी बात रख सकें। महामारी ने इस समस्या को और विकराल बना दिया है। माता-पिता, स्कूल अधिकारियों और सरकारी अधिकारियों आदि द्वारा ऑनलाइन प्लेटफॉर्म्स पर लगातार की जा रही निगरानी से बच्चों और अध्यापकों के संबंधों में बची-खुची स्वतंत्रता और सहजता भी खत्म हो गयी है।

एक प्राइवेट स्कूल में पढ़ाने वाली एक अध्यापिका ने बताया, *"क्लासेज़ रिकॉर्ड करके बच्चों को भेज दी जाती है। बच्चों से ज़्यादा उनके मां-बाप देखते हैं और हमारी एक-एक कमी को ढूंढते हैं। फिर वे स्कूल अधिकारियों से हमारी शिकायत करते हैं। हमने क्या पढ़ाया है, इस पर ध्यान देने के बजाय मैं रिकॉर्डिंग के दौरान पीछे से आ रहे शोर के बारे में ज़्यादा सावधान रहती हूं। अगर मैं कुछ बोलते हुए अटक जाती हूं या मेरी आवाज लड़खड़ाती है तो मुझे फिर से रिकार्डिंग करनी होती है। घर बैठकर ये करना कोई आसान काम नहीं है जबकि स्कूल से कोई तकनीकी मदद भी नहीं मिलती। मां-बाप हर चीज़ पर पैनी नज़र रखते हैं क्योंकि वे फीस देते हैं। उनको शायद याद नहीं कि टीचर्स कोई प्रोग्राम्ड रोबोट नहीं होते। टीचिंग का मामला अब रूप रंग और परफॉरमेंस तक सीमित होकर रह गया है। ऐसा लगता है कि अब ज्ञान का महत्व नहीं है।"*

ऑनलाइन क्लासेज़ के दौरान निजी स्कूलों के अध्यापकों पर लगातार नज़र रखी जाती है। मां-बाप अकसर उनकी पढ़ाने की क्षमता पर टीका-टिप्पणियां करते हैं, स्क्रीन में दिखायी दे रही घर की बैकग्राउंड पर बातें करते हैं, अध्यापकों के अंग्रेजी उच्चारण पर राय देने लगते हैं और यहां तक कि उनकी पोषाक पर भी कॉमेंट करने से पीछे नहीं रहते। अध्यापकों ने दुख के साथ बताया कि मां-बाप के लिए आजकल ये बात ज़्यादा महत्वपूर्ण हो गयी है कि कोई टीचर्स कैसी दिखायी देता/देती है। मां-बाप का सारा ध्यान इस पर रहता है कि टीचर ने क्या पहना है, उनका संप्रेषण व अभिव्यक्ति कौशल कैसा है और उनका उच्चारण व लहज़ा कैसा है। उन्हें इस बात की ज़्यादा परवाह नहीं होती कि टीचर बच्चों को जो ज्ञान दे रहा/रही है, वह सही है या नहीं।

इसका नतीजा यह हुआ कि अब टीचर्स स्वतःस्फूर्त ढंग से नहीं पढ़ाते जैसे पहले स्कूल में पढ़ाया करते थे। अभिभावकों की टोही नज़र लगातार उनका पीछा करती है। टीचर्स को लगता है जो लोग अपने बच्चों को बड़े प्राइवेट स्कूलों में भेजते हैं वे संपन्न, प्रभावशाली पृष्ठभूमि के होते हैं और उनमें एक तरह का मालिक वाला भाव होता है जिसके दम पर वे स्कूल पर भी दबाव डालते हैं कि वे इस या उस टीचर के खिलाफ कार्रवाई करें।

सरकारी स्कूलों के टीचर्स ने डिजिटल स्कूलिंग के टेक्नो मैनेजर की भूमिका संभवतः आत्मसात कर ली है। सख्त नौकरशाही आदेशों को देखते हुए अब ये टीचर्स सोचने और नई बात कहने में सुरक्षित महसूस नहीं करते। उन्हें शिक्षाशास्त्रीय पद्धति जैसे मामलों में भी सरकारी हुक्म की तामील करने के लिए मजबूर किया जाता है। अगर वे किसी भी हुक्म का विरोध करते हैं तो उन्हें कारण बताओ नोटिस थमा दिया जाता है या नौकरी से मुक्त कर दिया जाता है।

एक प्राइवेट स्कूल की टीचर ने बताया, *"नियम बहुत ही मनमाने ढंग से तय किये जाने लगे हैं। हर स्कूल प्रशासन ऑनलाइन टीचिंग-लर्निंग को अपने ढंग से देखता है। वे टीचर्स की परेशानियों पर ध्यान नहीं देते। उनको आंख मूंदकर नियमों के अनुसार काम करने के लिए मजबूर किया जाता है।"* ऑनलाइन टीचिंग ने तमाम सरकारी व प्राइवेट स्कूलों के अधिकारियों को टीचर्स पर पूरा नियंत्रण प्रदान कर दिया है। क्लास लिंक न केवल प्रिंसिपल और स्कूल अधिकारियों को भी भेजे जाते हैं बल्कि सरकारी अधिकारियों को भी भेजे जाते हैं ताकि वे भी ऑनलाइन क्लासेज़ के दौरान कभी भी क्लास में आकर टीचर्स पर नज़र रख सकें। टीचर्स को लगता है कि सामान्य ऑफलाइन कक्षाओं में बच्चों और अध्यापकों

के बीच एक रिश्ता बनता था और ये रिश्ता सिर्फ कक्षा के भीतर होने वाली बातचीत तक सीमित नहीं था। लर्निंग की ऑनलाइन संस्कृति और सरकार व स्कूलों द्वारा अपनाये जा रहे निरंकुश तौर-तरीकों ने कक्षा की वह सहजता और अध्यापकों व विद्यार्थियों की एजेंसी को नष्ट कर दिया है।

स्कूलों और राजकीय निकायों द्वारा चौतरफा निगरानी से टीचर्स के मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य पर असर पड़ रहा है।

जेंडर संबंधी चिंताएं

दिल्ली-एनसीआर में किशोर-किशोरियों के बीच किये गये एक सर्वेक्षण में पाया गया कि ऑनलाइन क्लास करने के लिए केवल 22% लड़कियों के पास मोबाइल फोन उपलब्ध थे जबकि मोबाइल फोन वाले लड़कों की संख्या 44% थी (चाइल्ड राइट्स ऐंड यू, 2020)। अध्यापकों ने बताया कि साधनों के मामले में जेंडर फासला बिल्कुल साफ दिखायी देता है। जब साधन सीमित हों तो लड़कियों के मुकाबले लड़कों को ज़्यादा प्राथमिकता दी जाती है। लड़कियों को क्लास करने में इसलिए

मुश्किल पेश आयी क्योंकि वे लगातार घर के कामों में उलझी रहती हैं। उन्हें घर में ये उपकरण तभी मिल पाते हैं जब लड़के ऑनलाइन क्लास अटेंड नहीं करना चाहते हों। टीचर्स को लगातार लड़कियों के कॉल आते थे जिनमें वे बताती हैं कि उन्हें घर के कामों से बचने के लिए स्कूल खुलने का कितनी बेसब्री से इंतजार है। 71% लड़कियों ने बताया कि वे घर के कामों और बुज़ुर्गों व भाई-बहनों की ज़िम्मेदारी संभालती हैं जबकि लड़कों में केवल 38% के ऊपर ऐसी ज़िम्मेदारियां थीं। इसी रिपोर्ट में ये भी बताया गया था कि 56% लड़के पढ़ाई पर ध्यान दे रहे थे और लड़कियों में से केवल 46% ही पढ़ाई पर ध्यान दे पाती थीं (घटक एवं अन्य, 2020)।

महामारी के दौरान बहुत सारी लड़कियों की जबरन शादी भी कर दी गयी हालांकि वे अभी नाबालिग थीं (पीयूसीएल, 2020)। जिन गरीब व कमज़ोर परिवारों में मां-बाप की नौकरी व काम-धंधे छिन चुके थे, उनकी बहुत सारी लड़कियों को घरवालों ने समय से पहले ही स्कूल से निकालकर ब्याह दिया। बहुत सारे परिवारों को महामारी के दौरान शादी का लालच इसलिए भी रहा क्योंकि इस दौरान भीड़भाड़ जुटाने की छूट नहीं थी और लिहाज़ा मां-बाप कर्ज़ा लिये बिना शादी कर सकते थे। सोशल डिस्टेंसिंग के नियमों को देखते हुए मां-बाप को सस्ते में शादी निपटाने और एक सदस्य के खर्चे से छुटकारा पाने का ये अच्छा मौका दिखायी दिया (बोस, 2021)। इससे एक और खतरा भी दूर हो गया - लड़की किसी के साथ भाग न जाए।

एम्पावर द्वारा किये गये शोध *"कोविड इन हर वॉइस"* में पाया गया कि महामारी की वजह से पैदा हुए आर्थिक संकट के चलते हाशियाई समुदायों की लगभग 40% लड़कियों पर शादी के लिए बहुत घना दबाव डाला जा रहा है।

अध्यापिकाओं के साथ बातचीत में पता चला कि उन्हें घर और स्कूल की ज़िम्मेदारियों के बीच संतुलन बनाने में भी भारी तनाव का सामना करना पड़ता है। ऊपर से उन्हें लगातार डिजिटल साधनों के इस्तेमाल के लिए भी जूझना व सीखना पड़ रहा है। युवा अध्यापिकाओं के ऊपर अपने बच्चों को संभालने और खुद अपनी पढ़ाई-लिखाई जारी रखने का भी अतिरिक्त दबाव रहता है।

एक बड़े प्राइवेट स्कूल की अध्यापिका ने बड़े तनाव और बेचैनी के साथ बताया : *"मैं सुबह 4 बजे उठती हूं और नोट्स, विडियोज, पीपीटी और क्वेश्चन पेपर वगैरा तैयार करती हूं। मेरी क्लासेज़ आमतौर पर सुबह 6 बजे शुरू हो जाती हैं। पिछले सात महीने से मेरे घर में कोई डोमेस्टिक हेल्प नहीं है। घर के सारे काम मैं ही करती हूं। मेरी बेटी की भी ऑनलाइन क्लासेज़ होती हैं और ये ज़िम्मेदारी भी मेरे ऊपर ही रहती है क्योंकि वह भी प्राइमरी क्लास में पढ़ती है और उसको बार-बार मदद की ज़रूरत होती है। स्कूल वाले इस बात की बिलकुल परवाह नहीं करते कि इस महामारी और स्कूल बंद होने से अध्यापिकाओं पर कितनी भारी मुसीबत आ गयी है। हमें घर से भी किसी तरह की मदद नहीं मिलती। मैं टीचर कोऑर्डिनेटर हूं। टीचर्स अपनी आपबीती सुनाते-सुनाते मेरे सामने रोने लगती हैं। पर मैं भी लाचार हूं।"*

टीचर्स के नेरेटिव्स से ये भी पता चलता है कि महामारी के दौरान अध्यापिकाओं के साथ होने वाली घरेलू हिंसा में किस तरह का इज़ाफ़ा हुआ है। *निरंतर* के एक रिसोर्स पर्सन ने टीईएसएफ टीम के साथ हुई पैनल चर्चा के दौरान बताया :

ये समझना बहुत जरूरी है कि मैं जिन टीचर्स की बात कर रही हूं वे ऐसे समाजिक परिवेश से आती हैं जहां मोबाइल फोन भी निगरानी और नियंत्रण के मकसद से दिये जाते हैं। महामारी से पहले टीचर्स चार-पांच घंटे के लिए सेंटर[12] में आती थीं। इस दौरान लगातार उनके घर से फोन आते रहते थे। अब सेंटर बंद हो चुके हैं। जब राहत कार्य शुरू हुए तो मदद के लिए उनके कॉल आने लगे। घरवाले लगातार शक करते हैं। जब सेंटर बंद हो चुके हैं तो फिर कॉल क्यों आती हैं और ये महिलाएं फोन पर किससे बात करती हैं, टीचर्स को बार-बार अपने पतियों को इन सवालों का जवाब देना पड़ता है। घरवालों और खासतौर से पतियों को ये विश्वास दिलाना बहुत ही मुश्किल होता है कि उन्हें काम के सिलसिले में फोन आ रहे हैं। एक अध्यापिका ने हमें ऑडियो मैसेज भेजकर बताया कि उसके पति ने उसका फोन छीन लिया है और अब वह उसकी इजाजत से ही फोन देख सकती है। एक अध्यापिका को रात में काम के सिलसिले में कॉल आया मगर उसके पति ने फोन ही स्विच ऑफ कर दिया और इस कॉल के बारे में अपनी पत्नी को अगले दिन बताया। एक महिला ने पत्र लिखकर और उसकी फोटो खींचकर व्हॉट्सएप पर हमें भेजी। उसके बाद उसने वह फोटो डिलीट कर दी क्योंकि उसका पति लगातार उसका फोन चेक करता रहता है। एक महिला ने बाथरूम से ऑडियो मैसेज रिकॉर्ड करके भेजा। जैसे ही सेंटर दुबारा खुले, ये अध्यापिकाएं फौरन आने लगीं ताकि घर के जहरीले माहौल से बाहर निकल सकें। दिन में कम से कम चार-पांच घंटे के लिए उन्हें सेंटर में एक ऐसी जगह मिल जाती थी जहां वे अपने ढंग से रह सकती थीं।

ऑनलाइन लर्निंग का बोझ मुख्य रूप से माओं के ऊपर ही आ गया है। प्रारंभिक कक्षाओं में पढ़ने वाले बच्चों का ज़िम्मा तो पूरी तरह माओं पर ही रहता है। माओं से उम्मीद की जाती है कि ऑनलाइन क्लासेज़ के दौरान वही बच्चों की ज़िम्मेदारी संभालें, जो पढ़ाया गया है उसको समझने में मदद दें और जो भी तकनीकी परेशानियां आती हैं उन्हें संबोधित करें।

एक प्राइवेट स्कूल में पढ़ने वाले बच्चे की मां ने बताया, *"क्लास में तो कम से कम ही पढ़ाया जाता है। अध्याय का ज़्यादातर हिस्सा पढ़ाने की ज़िम्मेदारी मांओं के ऊपर ही आ जाती है। मैं एक मल्टीनैशनल कंपनी में काम करती हूं और अब मैं अपने बच्चे की टीचर भी बन गयी हूं। अगर मैंने भी ये काम नहीं किया तो कोई नहीं करेगा। मुझे अपने काम, अपनी बेटी की पढ़ाई और घर के सारे कामों को अकेले संभालना पड़ता है। इससे मेरे करियर पर भी असर पड़ रहा है क्योंकि दफ्तर वाले मेरे घर में आ रही इस तबाही को समझने वाले नहीं हैं।"*

छात्राएं, अध्यापिकाएं और मांएं - ये सभी स्कूलों के बंद होने से परेशान हैं। बहुत सारी कामकाजी महिलाओं पर अपने बच्चों की पढ़ाई-लिखाई का अतिरिक्त ज़िम्मा आ गया है। खासतौर से इसलिए क्योंकि अब बच्चों की लर्निंग का ज़िम्मा स्कूल के बजाय परिवार के ऊपर आ गया है। मांएं अपनी पेशेवर ज़िम्मेदारियों, घर की ज़िम्मेदारियों और बच्चों की पढ़ाई-लिखाई, सबको संभाल रही हैं। *इससे मांओं पर मानसिक रूप में असर पड़ रहा है, जिसका नतीजा बच्चों के साथ होने वाली मारपीट में दिखाई पड़ने लगा है।*[13]

कई लड़कियों का समय से पहले विवाह कर दिया गया।
अध्यापिकाएं और कामकाजी माएं अपनी पेशेवर और घरेलू ज़िम्मेदारियों के बीच संतुलन बिठाने के लिए जूझ रही हैं।

[12] निरंतर से आयी पैनलिस्ट अपने संगठन के लर्निंग रिसोर्स सेंटर्स (एलआरसी) के बारे में बात कर रही हैं। निरंतर एलआरसी जेंडर और यौनिकता से जुड़े आयामों पर ज्ञान सृजन के केंद्र हैं। यहां प्रशिक्षण व क्षमतावर्द्धन के माध्यम से विभिन्न संबंधित पक्षों को इस प्रक्रिया में शामिल किया जाता है।

[13] इस बात का उल्लेख टीईएसएफ टीम के साथ हुई एक पैनल चर्चा में आगा खान फाउंडेशन से आए एक रिसोर्स पर्सन ने किया था।

मानसिक स्वास्थ्य के प्रति हिकारत का रवैया

स्कूलों का बंद होना, संक्रमण का डर और ऑनलाइन क्लासेज़ से बच्चों और बड़ों सभी के लिए तमाम तरह की मनोवैज्ञानिक चुनौतियां पैदा हुई हैं। स्कूल टीचर्स के सामने जो चुनौतियां हैं वे कोविड-19 ड्यूटीज़ और नई तकनीक की चुनौतियों की वजह से कई गुना बढ़ गयी हैं। नई व अनजानी तकनीक व तरीकों से पढ़ाने के दौरान वे लगातार इस तनाव में रहती हैं कि उन पर नज़र रखी जा रही है और इससे उनका मानसिक संतुलन और नाज़ुक हो गया है। स्कूल और शासन की तरफ से लगातार निगरानी और सख़्त आदेशों की वजह से शिक्षकों की मनोवैज्ञानिक खुशहाली पर गहरा असर पड़ा है।

ऑनलाइन मोड में जाने के कारण ज़्यादातर व्यवस्थागत प्रक्रियाएं और तौर-तरीके एक किस्म के तदर्थवाद या कामचलाऊपन के शिकार हो गये हैं। एक बड़े प्राइवेट स्कूल की अध्यापिका ने बताया :

कई बार मैं सुबह साढ़े सात बजे लैपटॉप के सामने बैठ जाती हूं और शाम 5:30 बजे तक नहीं उठ पाती...। अब भी मुझे स्कूल से मैसेज आया है कि शाम को 5:30 बजे एक मीटिंग है। इस तरह की मीटिंगें कभी भी तय कर दी जाती हैं और मीटिंग का नोटिस भी मीटिंग शुरू होने के ठीक पहले दिया जाता है। ये मीटिंगें अक्सर घंटों चलती हैं मानो सब हर वक्त खाली बैठे हों क्योंकि मीटिंग ऑनलाइन है और सफर करने की ज़रूरत नहीं है। ऑनलाइन नाम की इस तबाही में अब टीचर्स को अपने लिए इतवार का दिन भी नहीं मिलता।

ये अध्यापिकाएं साइबर हमलों के दौरान होने वाली भावनात्मक हिंसा और अपमान से भी बुरी तरह त्रस्त और टूट चुकी हैं। एक सरकारी स्कूल में पढ़ाने वाली अध्यापिका ने अपनी एक सहेली का अनुभव बताया :

मेरी रूममेट चौथी के बच्चों की क्लास ले रही थी। तभी चैट बॉक्स में भद्दी-भद्दी गालियां आने लगीं। चौथी क्लास के बच्चे वैसा नहीं लिख सकते जो उसमें लिखा हुआ था। इसका मतलब है कि मीटिंग का लिंक किसी और के पास भी था। जब मां-बाप से पूछा गया तो सबने जोर देकर कहा कि वे खुद अपने बच्चों के साथ मौजूद थे। हमने गालियों वाले मैसेजेज़ के स्क्रीनशॉट प्रिंसिपल को भी भेजे थे। उन्होंने बस यही कहा कि अभिभावकों से बात करो। बस। मामले की कोई जांच नहीं की गयी। टीचर्स बार-बार ऑनलाइन क्लासेज़ के दौरान इस तरह की परेशान करने वाली स्थितियों से गुज़रते हैं मगर इससे निपटने के लिए कोई कुछ नहीं करता। कुछ कहो तो बस यही जवाब मिलता है कि ऐसे मैसेज आने से क्या हो गया! इतना हल्ला क्यों मचा रही हो?

सरकारी और निजी, सभी स्कूलों के टीचर्स ने बताया कि क्लासेज़ के दौरान ऑनलाइन प्लेटफॉर्म्स पर साइबरबुलींग और ट्रोलिंग भी होती है। इस तरह की घटनाएं आमतौर पर बड़ी क्लासेज़ में ज़्यादा गंभीर रूप ले लेती हैं क्योंकि विद्यार्थी टीचर्स के स्क्रीनशॉट लेकर इंस्टाग्राम न्यूज फीड्स, स्टोरीज, और व्हॉट्सएप जैसे सोशल मीडिया चैनलों पर मीम बनाकर डाल देते हैं। ये एक गंभीर मुद्दा है जिससे अध्यापिकाओं को भारी अपमान झेलना पड़ता है और ज़ाहिर है उनकी मानसिक सेहत पर सीधा असर पड़ता है।

एक अस्त-व्यस्त जीवन, घर का विषैला माहौल, ऑनलाइन क्लासेज़ के प्रति अनिच्छा, संगी-साथियों से मिल पाने में लाचारी और चौबीसों घंटे घर की चरदीवारी में कैद रहना, इन सारी चीज़ों ने महामारी के दौरान बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य को बुरी तरह प्रभावित किया है।

एक प्राइवेट स्कूल में पढ़ने वाले विद्यार्थी ने बताया, *"जब घर दमघोटू महसूस होने लगता है तो स्कूल में अपने दोस्तों और टीचर्स के बीच समय बिताने से बच्चों को राहत मिलती है। अब स्कूल हमसे छिन गया है और हमें घर पर ही बैठे रहने के लिए मजबूर कर दिया गया है मगर ये बहुत अच्छा माहौल नहीं होता। टीचर्स के साथ लंबी-लंबी बातें हमारा जी हलका करती थीं। अब वह सब नहीं रहा।"*

महामारी की वजह से लगाये गये लॉकडाउन के बहुत चिंताजनक नतीजे आ चुके हैं। महाराष्ट्र में बच्चों द्वारा खुदकुशी के आंकड़े बहुत ही तेजी से ऊपर गये हैं। जिससे बच्चों के मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य व संतुलन के बारे में गंभीर चिंताएं पैदा हुई हैं (पीयूसीएल, 2020)। कक्षा 10 और कक्षा 12 के इम्तहानों के विषय में जो अनिश्चितता का माहौल रहा है वह भी बच्चों के तनाव और आत्महत्या की प्रवृत्ति के पीछे एक मुख्य कारण रहा है (पीयूसीएल, 2020)। इन्हीं वजहों को देखते हुए टीचर्स को बच्चों के लिए काउंसलिंग सत्र आयोजित करने की अतिरिक्त ज़िम्मेदारी भी सौंपी गयी थी। मगर खेद की बात है कि बहुत सारे टीचर्स तो खुद ही तनाव से जूझ रहे थे और लिहाज़ा वे अपनी ज़िम्मेदारी के

साथ न्याय नहीं कर पाये। नीचे दिये गये उद्धरण से बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य के बारे में एक सरकारी स्कूल टीचर की सोच का पता चलता है :

आज स्थिति ये है कि पहले तो आप हर वो चीज़ करते हैं जिससे बच्चों का दम घुटने लगे और फिर आप उस घुटन से बचाने के लिए एक व्यवस्था तैयार करते हैं। आप उम्मीद करते हैं कि वो व्यवस्था उन्हें पलक झपकते खुशहाल बना देगी। शिक्षा विभाग ठीक इसी बात का दावा कर रहा है। विभाग बच्चों के लिए काउंसलर तैनात करता है, वेबिनार आयोजित कर रहा है, मानसिक स्वास्थ्य को बहाल करने वाली गतिविधियों के विडियो भेज रहा है। ये सब कुछ महज ढकोसला है। ये सारा तामझाम ऊपर बैठे लोगों को खुश करने और मीडिया में वाहवाही लूटने का तरीका है। एक व्यवस्था के तौर पर हम बच्चों की जान के पीछे पड़े हैं ताकि किसी तरह साबित कर सकें कि वर्चुअल लर्निंग पद्धति कामयाब है। हम बच्चों और उनके परिवारों के सामने पैदा हो रहे अस्तित्व के संकट को देखना ही नहीं चाहते। बोर्ड के इम्तेहान देने जा रहे बच्चे जबर्दस्त मानसिक तनाव में हैं। उनके पास अपने इम्तेहान की फीस चुकाने तक की स्थिति नहीं है। और जब वे हमें अपनी परेशानी बताते हैं तो हम उनको धमकी देते हैं कि अगर उन्होंने तय तारीख से पहले फीस जमा नहीं करायी तो उनको इम्तेहान में बैठने का मौका नहीं मिलेगा और उनका साल बर्बाद हो जाएगा। हम एक पल में अपनी ज़िम्मेदारी से हाथ झाड़ लेते हैं। जूनियर क्लासेज़ को ये धमकी दी जाती है कि अगर वे ऑनलाइन क्लासेज़ अटेंड नहीं करेंगे तो उनको पास नहीं किया जाएगा। हम जिन बच्चों को पढ़ाते हैं उनमें से ज़्यादातर समाज के कमज़ोर तबकों के बच्चे हैं। जब उनकी माली हालत बहुत खराब हो जाती है तो वे स्कॉलरशिप के बारे में पूछने लगते हैं और टीचर उन्हें अकसर फटकार लगा देते हैं। ज़ाहिर है कि हमें इस बात की अब कतई परवाह नहीं रही कि हमारे बच्चे किस मानसिक तनाव से गुज़र रहे हैं। उनके तनाव को कम करने के रास्ते ढूंढना की फिक्र अब किसी को नहीं है।

यानी जो टीचर्स संजीदा और संवेदनशील हैं वे भी बच्चों के सामने पैदा हो रही इस घातक स्थिति का इलाज ढूंढने से लाचार हैं।

नवउदारवादी एजेंडा पर ज़ोर

महामारी और स्कूलों के बंद होने से निरंकुशवादी नवउदारवादी प्रवृत्तियों को जमकर बढ़ावा मिला है। स्कूलों के बंद होने पर एक उल्लेखनीय और फौरी प्रतिक्रिया ऐसी गैर-सरकारी कंपनियों और व्यवसायों की तरफ से आयी जिनके लिए यह ई-लर्निंग और रिमोट लर्निंग को बढ़ावा देने का जबर्दस्त मौका था। इसके चलते मैकेन्ज़ी[14] जैसी कंपनियां सरकारी स्कूलों में टीचर्स को स्क्रिप्टेड लेसन यानी कक्षा में पढ़ाने की लिखित सामग्री मुहैया कराने लगी हैं। दि अमेरिकन इंडिया फाउंडेशन ने टीचर्स और स्टुडेंट्स के व्हॉट्सएप ग्रुप्स के ज़रिये पीयर टू पीयर लर्निंग पर जोर दिया है। वे टीचर्स को साथ लेकर समयसारणी और लेसन प्लान तैयार करते हैं और उन्हें रिमोट लर्निंग के तरीकों से इस्तेमाल का प्रशिक्षण भी देते हैं। आह्वान ट्रस्ट फेसबुक के माध्यम से *'लॉकडाउन की पाठशाला'* नाम का एक ऑनलाइन फोरम भी चला रहा है। आह्वान दिल्ली सरकार के लिए भी काम करता है। आह्वान के लोग अभिभावकों के लिए ऐसी साप्ताहिक गतिविधियां तैयार करते हैं जिनको बच्चों के साथ घर पर कराया जा सकता है। इसके अलावा वे किंडरगार्टेन और नर्सरी क्लासेज़ के लिए संशोधित पाठ्यक्रम भी मुहैया कराते हैं (आह्वान ट्रस्ट, 2020)। प्रथम, पीपुल और आगा खान फाउंडेशन जैसे संस्थान डिजिटल शिक्षा हेतु ई-कॉन्टेंट के सृजन व वितरण के लिए राज्य सरकारों के साथ मिलकर काम कर रहे हैं।

> कई गैर-सरकारी निकायों का प्रभाव इतना ज़्यादा है कि वे शिक्षा का एजेंडा तय करने की क्षमता रखते हैं क्योंकि वे केंद्र और राज्य सरकारों के साथ घनिष्ठ रूप से काम कर रहे हैं।

इस अध्ययन से पता चलता है कि करियर लांचर, एसएडी, और टेक महिंद्रा जैसी संस्थाओं ने सरकारी स्कूलों में काफी दखल बना लिया है। इनमें से कई संगठन पाठ्यचर्या सामग्री और शिक्षाशास्त्रीय पद्धति यानी पढ़ाने के तरीके भी तय

[14] यह राष्ट्रीय शिक्षा नीति एवं व्यवस्था पर अंतराष्ट्रीय एवं कारपोरेट समुदाय के व्यापक प्रभाव का हिस्सा है।

करने लगे हैं। यानी स्कूल टीचर्स को पढ़ाने के अपने ही काम से दूर कर दिया गया है। अब उसकी भूमिका बच्चों के सवालों का जवाब देने तक सीमित रह गयी है। और ये भी अब बहुत कम हो गया है क्योंकि ऑनलाइन प्लेटफॉर्म्स और सभी बच्चों के पास ऑनलाइन क्लासेज़ के साधन न होने की वजह से वे ज़्यादा सवाल पूछ ही नहीं पाते। ऐसा लगता है कि क्या पढ़ाना है और कैसे पढ़ाना है, इस आशय के फैसले अब टेक कंपनियों और सरकारों के साथ मिल कर काम कर रहे गैर-सरकारी संगठनों के हाथों में चले गये हैं। इस गठजोड़ ने अध्यापकों को शैक्षिक व्यवहार की बुनियादी प्रक्रियाओं व फैसलों से बाहर निकाल दिया गया है। अब अध्यापकों को टैक्नो मैनेजर और शासन व तकनीकी कंपनियों की तरफ से आने वाले लर्निंग मेटीरियल को आगे बढ़ाने का साधन भर बना दिया गया है। अध्यापकों की एक ज्ञानशास्त्रीय पहचान और स्तरीय शिक्षा सुनिश्चित करने में उनकी संभावित भूमिका को लगातार कमज़ोर किया जा रहा है जोकि नवउदारवादी सुधारों की विशेषता है और इस बदलाव ने टीचर्स को शिक्षा व्यवस्था के हाशिये पर ढ़केलने का काम किया है।

निष्कर्षतः इस महामारी ने एक बेहद खंडित स्कूल शिक्षा व्यवस्था को बिल्कुल बेपर्दा कर दिया है। ये एक ऐसी घटना है जिसने पहुंच के सवालों को फिर से सामने ला दिया है जबकि राज्य डिजिटल लर्निंग प्लेटफॉर्म्स पर जोर दे रहा है। सुधारों के पहले दशक के दौरान हमने लगभग सार्वभौमिक दाखिलों का लक्ष्य हासिल कर लिया था मगर महामारी ने डिजिटल पहुंच और डिजिटल लर्निंग में असमानता के चलते असंख्य बच्चों को फिर से लर्निंग की प्रक्रिया से बाहर ढकेल दिया है। अब सबसे बड़ी चुनौती ये होगी कि इन बच्चों को स्कूल में दोबारा कैसे लाया जाए और कैसे उन्हें लर्निंग के स्वीकार्य स्तर तक पहुंचाया जाए।

महामारी ने एक बेहद खंडित स्कूली शिक्षा व्यवस्था को बेनकाब कर दिया है। इसने पहुंच के सवालों को एक बार फिर प्रासंगिक बना दिया है क्योंकि डिजिटल लर्निंग प्लेटफ़ॉर्म सिर्फ चंद लोगों को ही उपलब्ध हो पा रहे हैं।

इस अध्ययन से ये भी पता चला है कि महामारी के दौरान जो लर्निंग संकट पैदा हुआ वह वर्ग, जाति, सामुदायिक, लैंगिक और शैक्षिक असमानता का परिणाम है। शिक्षा नीति के ज़रिये हमें इस लर्निंग संकट को 'लर्निंग की क्षति' कहकर टाल देने के बजाय इस पर गंभीरता से विचार करना होगा।

सस्ते प्राइवेट स्कूलों के बड़े पैमाने पर बंद हो जाने से लाखों लोग फिर से अपने बच्चों को सरकारी स्कूलों में भेजने लगे हैं। इसे सरकारी स्कूल व्यवस्था को पुनर्जीवित करने, अच्छा बुनियादी ढांचा तैयार करने और पेशेवर योग्यता प्राप्त शिक्षकों का कैडर तैयार करने के एक सुअवसर के रूप में देखा जाना चाहिए।

इसे सरकारी स्कूल तंत्र को पुनर्जीवित करने, पर्याप्त बुनियादी ढांचा खड़ा करने और पेशेवर योग्यता वाले टीचर्स तैयार करने के सुअवसर के रूप में देखा जाना चाहिए।

आज ज़रूरत इस बात की है कि सरकारी स्कूलों के विलय की नीति पर फौरन विराम लगाया जाए और सस्ते प्राइवेट स्कूलों को मदद देने के बजाय सरकारी स्कूलों में निवेश पर जोर लगाया जाए।

स्कूली शिक्षा

इस शोध में हमने दिल्ली शहर के विभिन्न तबकों के विद्यार्थियों, अध्यापकों और अभिभावकों पर महामारी और डिजिटल लर्निंग से पड़े प्रभावों को समझने की कोशिश की है।

विद्यार्थी

अचानक ऑनलाइन क्लासेज़ शुरू हो जाने से समाज के कमज़ोर तबकों के बहुत सारे बच्चे लर्निंग की प्रक्रिया से बाहर छूट गये हैं क्योंकि उनके पास पर्याप्त संख्या में डिजिटल उपकरण और अच्छा इंटरनेट कनेक्शन प्रायः नहीं होता।

अचानक ऑनलाइन क्लासेज़ शुरू हो जाने से समाज के कमज़ोर तबकों के बहुत सारे बच्चे लर्निंग की प्रक्रिया से बाहर छूट गये हैं क्योंकि उनके पास पर्याप्त संख्या में डिजिटल उपकरण और अच्छा इंटरनेट कनेक्शन प्रायः नहीं होता।

बहुत सारी लड़कियों को ऑनलाइन क्लासेज़ के बजाय घर के कामों में भी व्यस्त रखा गया। महामारी के कारण पैदा हुए आर्थिक संकट की वजह से बहुत सारी लड़कियों की वक्त से पहले ही शादी कर दी गयी है।

अध्यापक

अध्यापकों पर भी ऑनलाइन क्लासेज़ की सफलता सिद्ध करने के लिए लगातार दबाव रहा है। उन्हें मजबूर किया गया है कि वे सार्थक शिक्षा के बजाय केवल क्लासेज़ में हाजिरी और सहभागिता बढ़ाने पर जोर देते रहें।

महामारी ने अध्यापकों की ज्ञानशास्त्रीय पहचान और पेशेवर निर्णय क्षमता को और कमज़ोर कर दिया है। अब उन्हें दूसरी संस्थाओं व लोगों द्वारा तैयार की गयी टीचिंग-लर्निंग सामग्री को बच्चों तक पहुंचाने का साधन भर मान लिया गया है।

सरकारी प्राइमरी स्कूलों के बहुत सारे अध्यापक-अध्यापिकाओं को कोविड-१९ संबंधी ज़िम्मेदारियों में भी झोंक दिया गया जिससे उनके सामने नये खतरे पैदा हुए और बहुत सारे अध्यापकों की मृत्यु भी हुई है। कॉन्ट्रैक्ट पर काम करने वाले बहुत सारे अध्यापकों को महामारी के दौरान नौकरी से निकाल दिया गया।

अध्यापिकाओं को अपनी पेशेवर ज़िम्मेदारियों और घरेलू कामों के बीच संतुलन के साथ-साथ खुद अपने बच्चों की ऑनलाइन शिक्षा की चुनौतियों से भी जूझना पड़ा जिससे वे गहरे तनाव में दिखायी पड़ती हैं।

अभिभावक

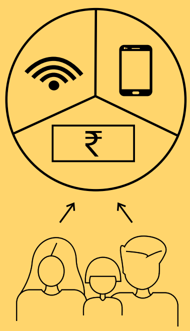

रोज़गार और आमदनी खत्म हो जाने से बहुत सारे अभिभावक बच्चों को ऑनलाइन शिक्षा के लिए मोबाइल फोन और इंटरनेट सुविधा मुहैया नहीं करा पाए।

स्कूल बंद होने के बावजूद अभिभावकों पर प्राइवेट स्कूलों की फीस चुकाने के लिए दबाव डाला गया जिसने उनको गहरे आर्थिक और मानसिक तनाव में ढकेल दिया है।

व्यवस्थागत प्रभाव

बहुत सारे सस्ते प्राइवेट स्कूल आर्थिक संकट का सामना नहीं कर सके और बंद हो गये हैं जिससे सरकारी स्कूलों में दाखिलों में इज़ाफ़ा हुआ है।

गैरसरकारी क्षेत्र, खासतौर से प्राइवेट आईटी कंपनियों के लिए ये महामारी ई-लर्निंग सामग्री व उत्पादों की बिक्री के ज़रिये बेतहाशा मुनाफ़े का मौका साबित हुआ है।

सरकारी स्कूली शिक्षा व्यवस्था का सुदृढ़ीकरण

महामारी ने स्कूली शिक्षा व्यवस्था में मौजूद गहरी दरारों को उजागर कर दिया है। इसने पहुंच के सवाल को एक बार फिर सामने ला दिया है जबकि सरकार डिजिटल लर्निंग प्लेटफॉर्म्स पर जोर दे रही है और नये किस्म की बेदखली पैदा हो रही है।

इस 'लर्निंग क्राइसेस' को सिर्फ 'लर्निंग क्षति' के रूप में ही नहीं देखा जाना चाहिए। हमें इस पर व्यापक दृष्टि से सवाल उठाना चाहिए क्योंकि डिजिटल लर्निंग ने दिखा दिया है कि वर्ग, जाति, जेंडर, भाषा और क्षेत्र के धरातल पर हम भारी असमानताओं से जूझ रहे हैं।

सस्ते निजी स्कूलों के बड़ी तादाद में बंद हो जाने और सरकारी स्कूलों के दाखिलों में भारी इज़ाफ़े को सरकारी स्कूल व्यवस्था को पुनर्जीवित करने के अवसर के रूप में देखा जाना चाहिए।

बेंगलुरू[15]: उच्च शिक्षा

बेंगलुरू में शैक्षिक संस्थानों की एक जबर्दस्त उपस्थिति है जिसके दम पर इसे देश की 'ज्ञान राजधानी' भी कहा जाने लगा है। इसके सार्वजनिक क्षेत्र उद्यम (पीएसयू), जिनमें से ज़्यादातर की स्थापना 1950 और 1960 के दशकों में हुई थी, अर्थव्यवस्था में उल्लेखनीय योगदान देते हैं और उन्होंने उच्च शिक्षा संस्थानों के लिए जरूरी बुनियादी ढांचे की स्थापना और रोज़गार पैदा करने में भी अहम योगदान दिया है। इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ साइंस (आईआईएससी), नैशनल इंस्टिट्यूट ऑफ एडवांस्ड स्टडीज (न्यास), इंस्टिट्यूट ऑफ सोशल ऐंड इकोनॉमिक चेंज (आईएसईसी), इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ मैनेजमेंट (आईआईएम), इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ इन्फॉर्मेशन टेक्नोलॉजी (आईआईआईटी), इंडियन स्पेस रिसर्च ऑर्गेनाइजेशन (इसरो), जवाहर लाल नेहरू इंस्टिट्यूट फॉर एडवांस्ड साइंटिफिक रिसर्च (जेएनसीएएसआर), नैशनल एयरोस्पेस लेबोरेटरीज (एनएएल), टाटा इंस्टिट्यूट फॉर फंडामेंटल रिसर्च (टीआईएफआर), डिफेंस रिसर्च डेवलमेंट ऑर्गेनाइजेशन (डीआरडीओ) जैसे ख्याति प्राप्त शैक्षिक एवं शोध संस्थानों के साथ-साथ यहां पिछले सालों के दौरान बहुत सारे इंजीनियरिंग और मेडिकल कॉलेज भी खुले हैं (सुधीरा एवं अन्य, 2007)। इस प्रकार, ये शहर उच्च शिक्षा में शोध की दृष्टि से भी एक बहुत अहम केंद्र बन गया है। बेंगलुरू के कुछ सरकारी उच्च शिक्षा संस्थानों को भी शोध के क्षेत्र में एक अंतर्राष्ट्रीय ख्याति मिल चुकी है और उन्हें सम्मानजनक रैंकिंग मिलती है। यहां शोध के लिए एक अनुकूल वातावरण तो है ही, देश भर के संस्थानों और दूसरे देशों से भी बड़ी तादाद में विद्यार्थी और अध्यापक यहां आते हैं। यहां के उच्च शिक्षा संस्थानों का बेंगलुरू को 'विज्ञान, इनोवेशन एवं उद्यमशीलता के नगर' के रूप में स्थापित करने में अहम योगदान रहा है (टुकडेव एवं माली, 2021)।

फरवरी 2021 में कर्नाटक सरकार के उच्च शिक्षा विभाग के तहत 54 विश्वविद्यालय, 256 इंजीरियरिंग कॉलेज, 325 पॉलिटेक्नीक कॉलेज और 12 जूनियर टेक्निकल स्कूल (जेटीएस) सूचीबद्ध थे इनमें से सरकारी संस्थानों का हिस्सा तुलनात्मक रूप से छोटा था - 23 विश्वविद्यालय[16], 17 इंजीरियरिंग कॉलेज, 85 पॉलिटेक्नीक कॉलेज।[17] बाकी कॉलेज या तो सरकारी सहायता से चलते हैं या पूरी तरह प्राइवेट संस्थाएं हैं। गौर करने की बात है कि ये आंकड़ पूरे कर्नाटक राज्य के हैं। चूंकि बेंगलुरू राज्य की राजधानी है इसलिए यहां निश्चय ही तुलनात्मक रूप से ज़्यादा संस्थान हैं और राज्य के भीतर व बाहर से तथा दूसरे देशों के विद्यार्थी भी ज़्यादा यहां आते हैं।

मैसूर प्रेसीडेंसी में अंग्रेजी शिक्षा ईसाई मिशनरियों के माध्यम से 1830 के दशक में ही शुरू हो चुकी थी। उनके इस योगदान को तस्वीरों के रूप में आज भी देखा जा सकता है। नायर लिखते हैं कि ये तस्वीरें 'देखने वालों को सुधार के अपने नेरेटिव में भागीदार बना लेने की क्षमता रखती हैं' (नायर, 2019: पृ. 1)। महिलाओं के लिए उच्च शिक्षा इंग्लिश नारीवादी परियोजना का समानांतर उद्यम थी। मैसूर में महिलाओं के लिए खोले गये पहले उच्च शिक्षा संस्थान का नेतृत्व सुश्री मुलर के कुशल हाथों में था जिनके संस्थान में 1912 तक आते-आते लगभग 70 युवतियां पढ़ने लगी थीं (नायर 2019)। 1970 के दशक के बेंगलुरू में उच्च शिक्षा की स्थिति पर जयराम लिखते हैं कि शहरी इलाकों में उच्च शिक्षा 'हैसियत को कायम रखने' के साधन के तौर पर अपनी भूमिका निभाती रही है। आज़ादी के बाद शिक्षा के अवसरों में इज़ाफ़े के बावजूद ऊपरी तबकों की हैसियत और ऊपरी दर्जे के व्यवसायों तक पहुंचने के रास्ते में आने वाली कठिनाइयां अपनी जगह कायम रही हैं और सघन हुई हैं (जयराम, 1977)।

शहरों में उच्च शिक्षा तक असमान पहुंच को देखते हुए हमने अपने शोध में इस बात पर ध्यान केंद्रित किया है कि महामारी की वजह से जो तकनीक आधारित लर्निंग प्लेटफॉर्म्स वजूद में आए हैं, उन्होंने बेंगलुरू में उच्च शिक्षा संस्थानों के अलग-अलग तबकों के विद्यार्थियों की शिक्षा को किस तरह प्रभावित किया है। शहर की उच्च शिक्षा (स्नातक एवं ऊपर) तथा विद्यार्थियों की सामाजिक पृष्ठभूमियों के एक अध्यन में ये पाया गया कि लड़कियों के मुकाबले लड़कों की तादाद यहां भी ज़्यादा है। छात्र-छात्राओं में ये फर्क राज्य के अन्य शहरी इलाकों एवं ग्रामीण इलाकों में भी मौजूद है (देखें चित्र 1)।

[15] इसे बंगलौर भी कहा जाता है।

[16] https://hed.karnataka.gov.in/page/Departments/Universities/Public+Universities+Under+Department+of+Higher+Education/en

[17] https://dtek.karnataka.gov.in/page/Institutions/Engineering+Colleges/en

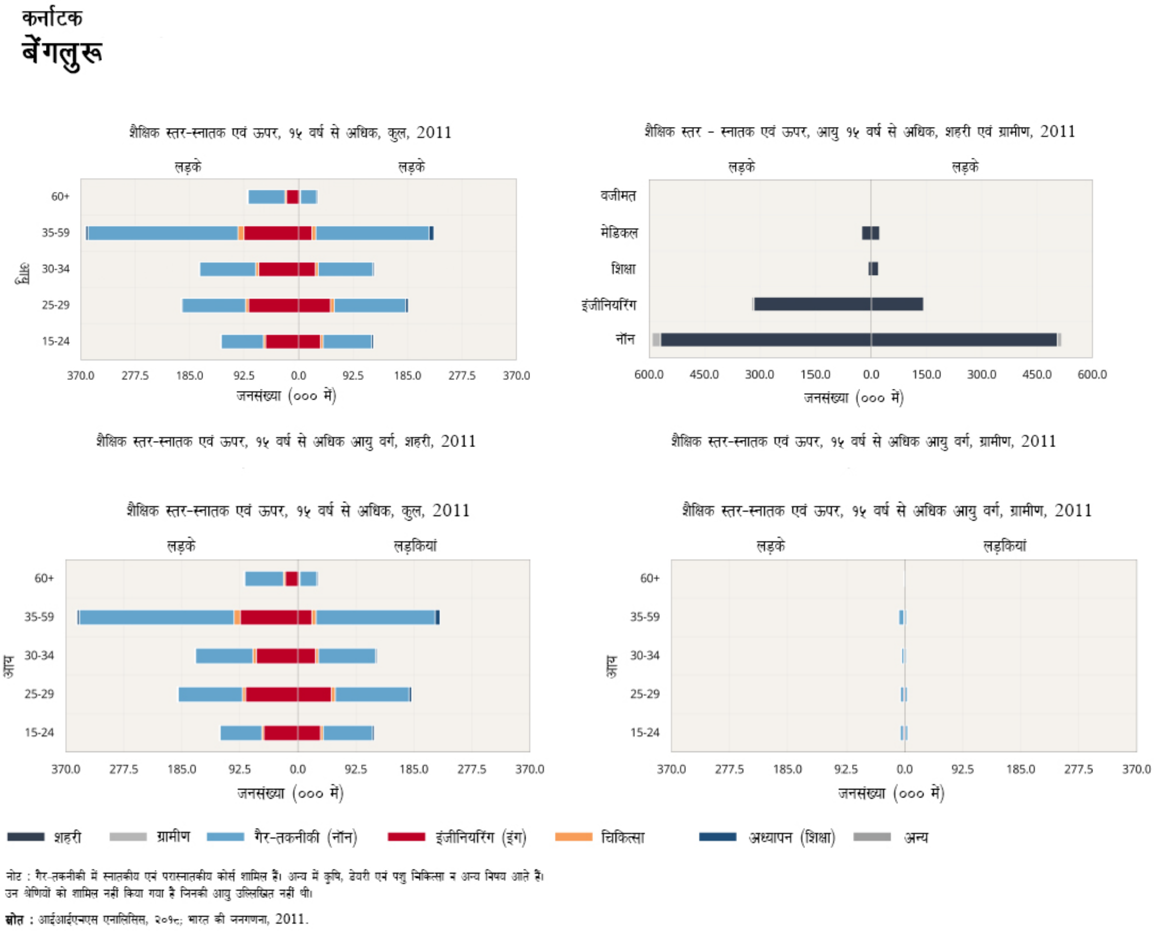

रेखाचित्र 1 – बेंगलुरू का उच्च शिक्षा परिदृश्य

अध्ययन के उद्देश्य और शोध प्रक्रिया

यह शोध तीन व्यापक थीम्स को समझने के उद्देश्य से शुरू किया गया था : (1) उच्च शिक्षा में अलग-अलग सामाजिक समूहों के अनुभवों को समझना; (2) कोविड-19 पर संस्थागत एवं व्यक्तिगत प्रक्रियाओं को समझना; और (3) टिकाऊ भविष्य का आश्वासन देने वाली शिक्षा की ओर बढ़ने के लिए कोविड-19 के अनुभवों से नीति और व्यवहार के धरातल पर मिली सीखों को दर्ज करना।

शोध के लिए आर्किटेक्चर, लॉ, प्राकृतिक विज्ञानों, समाज विज्ञानों, कला, मानविकी और प्रबंधन आदि अलग-अलग विषयों व अनुशासनों के उच्च शिक्षा संस्थानों का चुनाव किया गया। अलग-अलग किस्म के संस्थानों में महामारी से पड़े प्रभावों की व्यापक और समग्र समझ हासिल करने के लिए निजी, सरकारी और सरकारी सहायता प्राप्त, सभी तरह के उच्च शिक्षा संस्थानों का चयन किया गया। इस प्रकार, बेंगलुरू के 12 सरकारी और निजी उच्च शिक्षा संस्थानों के अध्यापकों व विद्यार्थियों से बात की गयी। उत्तरदाता 4 सरकारी उच्च शिक्षा संस्थानों, 7 निजी शिक्षा संस्थानों और 1 संयुक्त सार्वजनिक-निजी स्वामित्व वाले संस्थान से लिए गये थे। अध्यापकों से संपर्क करने के लिए मौजूदा अकादमिक नेटवर्कों का सहारा लिया गया। इस प्रकार जो संपर्क मिले, उन्होंने दूसरे विद्यार्थियों व शोधकर्ताओं से हमें मिलवाया। महामारी के तरह-तरह के प्रभावों और उच्च शिक्षा में भारी विविधता को देखते हुए इस बात के लिए सचेत प्रयास किया गया कि अध्ययन में इलाके, वर्ग और जेंडर आदि के अनुसार विविधता हो।

इन बारह संस्थानों के उत्तरदाताओं के साथ नवंबर 2020 से जनवरी 2021 के बीच 40-60 मिनट तक के साक्षात्कार लिये गये। हमने जिनके साक्षात्कार लिये उनमें अध्यापक, विद्यार्थी, शोधकर्ता, रिसर्च एसोसिएट्स, पीएचडी स्कॉलर और पोस्ट डॉक्टरल फेलो भी शामिल थे। इनमें 11 फैकल्टी सदस्य, 6 विद्यार्थी और 4 रिसर्च स्कॉलर थे। रिपोर्ट में दिल्ली

विश्वविद्यालय के फैकल्टी सदस्यों के भी चंद इंटरव्यू शामिल किये गये हैं।[18] बेंगलुरू के डेटा में दिल्ली के बैचलर ऑफ एलिमेंटरी एजुकेशन नामक शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम की अंडर ग्रेजुएट छात्राओं के साथ हुई एक विषय केंद्रित चर्चा की रिपोर्ट को भी शामिल किया गया है क्योंकि बेंगलुरू में इकट्ठा किये गये डेटा और दिल्ली विश्वविद्यालय की छात्राओं ने जो चिंताएं बतायीं, उनमें काफी समानताएं थीं।[19] इस सामूहिक चर्चा में कुल 25 छात्राओं ने हिस्सा लिया था। मगर, टेबल 2 में इन छात्राओं को शामिल नहीं किया गया है क्योंकि तकनीकी तौर पर वे बेंगलुरू में इकट्ठा किये गये डेटा का हिस्सा नहीं हैं।

सभी इंटरव्यू ज़ूम और गूगल मीट जैसे ऑनलाइन प्लेटफॉर्म्स के ज़रिये अंग्रेजी में लिए गये। फैकल्टी सदस्यों के साक्षात्कारों में ये समझने की कोशिश की गयी कि अलग-अलग पृष्ठभूमि वाले विद्यार्थियों के साथ ऑनलाइन/डिजिटल लर्निंग और फ़ील्ड वर्क आदि में उनके अनुभव और सबक क्या रहे हैं। साक्षात्कारों में इस बात पर ध्यान दिया गया कि उनके सामने किस तरह की शिक्षाशात्रीय चिंताएं आ रही हैं और हाशियाई समुदायों के विद्यार्थियों के सामने किस तरह की परेशानियां हैं। इन मुद्दों पर संस्थागत और गैर-संस्थागत प्रक्रियाओं के बारे में भी पूछा गया। विद्यार्थियों के साक्षात्कारों में ये समझने पर ज़्यादा ज़ोर दिया गया कि पहुंच और लर्निंग अनुभव के मामले में उन्हें किस तरह की परेशानियों का ज़्यादा सामना करना पड़ा। इन साक्षात्कारों को otter.ai सॉफ्टवेयर की मदद से ट्रांस्क्राइब किया गया और फिर शोधकर्ताओं ने उनका एक-एक करके विश्लेषण किया। टेबल 2 में उत्तरदाता विद्यार्थियों, फैकल्टी सदस्यों और शोधकर्ताओं का ब्यौरा देखा जा सकता है।

श्रेणी	**सहभागी**			
	विद्यार्थी	**शोधकर्ता**	**फैकल्टी सदस्य**	**कुल योग**
अनुशासन/विषय				
आर्किटेक्चर	2		2	4
कृषि विज्ञान	1		1	2
प्राकृतिक विज्ञान	1	3	2	6
मानविकी एवं समाज विज्ञान	2	1	4	7
शिक्षक शिक्षा (दिल्ली)			1	1
लॉ			1	1
कुल	6	4	11	**21**
संस्था की किस्म				
प्राइवेट	5	2	5	**12**
सरकारी/सहायता प्राप्त	1	2	6	**9**

टेबल 2 : अलग-अलग अनुशासनों एवं सरकारी संस्थानों (सरकारी सहायता प्राप्त संस्थानों सहित) एवं प्राइवेट संस्थानों में सहभागियों का वितरण

*नोट : सहभागियों में से तीन स्नातक डिग्री के विद्यार्थी थे, तीन मास्टर्स डिग्री के विद्यार्थी थे और तीन पीएचडी कर रहे थे। इसके अलावा एक शोधार्थी विश्वविद्यालय में रिसर्च एसोसिएट के रूप में कार्यरत था/थी मगर किसी डिग्री में उसका दाखिला नहीं था।

[18] ये साक्षात्कार दिल्ली में इकट्ठा किये गये कोविड-19 शोध डेटा से लिये गये थे। यहां दिल्ली विश्वविद्यालय के दो अध्यापकों से भी बात की गयी थी क्योंकि उनके बच्चे स्कूल में पढ़ते थे और अध्ययन में उनसे भी बात की गयी थी। इन साक्षात्कारों में अध्यापकों ने अपने विश्वविद्यालय के विषय में जिन चिंताओं का ज़िक्र किया वे बेंगलुरु में उच्च शिक्षा के मुद्दों से मेल खाती हैं इसलिए उन्हें भी रिपोर्ट में शामिल कर लिया गया था।

[19] टीईएसएफ-इंडिया शोध टीम ने दिल्ली में सेवा-पूर्व शिक्षक शिक्षा छात्राओं के साक्षात्कार लिये। ये छात्राएं अपने कोर्स की शर्तों के अनुसार स्कूलों के बच्चों को पढ़ा रही थीं। उन्होंने कई ऐसे मुद्दे उठाये जो उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भी दिखायी पड़ते हैं इसलिए उन्हें भी इस रिपोर्ट में शामिल कर लिया गया था।

नतीजे

इस भाग में टीचिंग-लर्निंग प्रक्रिया, मौजूदा शैक्षिक बंदोबस्त पर महामारी से पड़े प्रभावों को समझने के लिए विद्यार्थियों और अध्यापकों[20] के विविध अनुभवों को पेश किया गया है।

कोविड-19 और लॉकडाउन से उच्च शिक्षा पर पड़े प्रभाव

साल 2020 की शुरुआत में जब महामारी अपने शुरुआती दौर में थी, उस समय बेंगलुरू के ज़्यादातर उच्च शिक्षा संस्थान अध्यापन सत्र खत्म करके सेमेस्टर के अंत में होने वाले असेस्मेंट की तैयारी कर रहे थे। लॉकडाउन के बाद बाकी स्थानों की तरह बेंगलुरू के उच्च शिक्षा संस्थानों ने भी शैक्षिक प्रक्रिया को ऑनलाइन बना दिया। मगर ऑफलाइन की जगह ऑनलाइन प्रक्रियाओं को अपनाने की ये कोशिश बहुत सहज और सरल साबित नहीं हुई। इससे न केवल नई चुनौतियां पैदा हुई बल्कि मौजूदा सामाजिक एवं आर्थिक कमजोरियां भी और गंभीर हो गयीं। भौतिक से ऑनलाइन कक्षाओं की ओर संक्रमण से शिक्षाशास्त्रीय प्रक्रियाओं और फैकल्टी सदस्यों और विद्यार्थियों के अकादमिक जीवन पर दूरगामी असर पड़े। यहां के उच्च शिक्षा संस्थानों के फैकल्टी सदस्यों व विद्यार्थियों ने भी वैसी ही समस्याओं का सामना किया है जिस तरह की समस्याएं स्कूली शिक्षा के स्तर पर सामने आयी हैं जिस पर हम पिछले भाग में बात कर चुके हैं। फैकल्टी सदस्यों और विद्यार्थियों दोनों का मानना था कि ऑनलाइन क्लासेज़ में सभी की सहभागिता और चर्चाओं में भारी गिरावट आयी है और इससे सीखने की समूची प्रक्रिया प्रभावित हुई है। उन्होंने बताया कि कक्षाओं में और कैंपस में जो स्वतःस्फूर्त और खुली चर्चाएं होती थीं वह बंद हो चुकी हैं। ऑनलाइन लर्निंग से उन अनुशासनों और विषयों पर तो बहुत ही गहरा असर पड़ा है जिनमें फ़ील्ड वर्क, प्रेक्टिकम और प्रयोगशाला कार्यों का महत्व बहुत ज़्यादा होता है। ऑनलाइन मोड में इन चीज़ों को बहाल करने की कोशिशें तो की गयीं मगर ये कोशिशें भी विभिन्न एक्सपेरीमेंट्स और डेमॉन्स्ट्रेशन के आधार पर तैयार की गई ऑडियो-विडियो सामग्री तक ही सीमित थी। प्रयोगशालाओं, पुस्तकालयों के बंद होने और यात्रा तथा आमने-सामने बैठकर संवाद पर लगी पाबंदियों की वजह से फ़ील्ड वर्क भी नहीं हो पाया है जिससे बहुत सारे शोध अचानक ठप हो गये हैं।

कक्षा के दायरे के खत्म होने से सीखने की प्रक्रिया पर पड़े असर

सभी साक्षात्कारों में 'कक्षा अनुभव के खत्म होने' का उल्लेख बार-बार आया। फैकल्टी सदस्यों ने बताया कि पढ़ाने और विद्यार्थियों का ध्यान जोड़े रखने में कितनी मुश्किलें पेश आ रही हैं जबकि विद्यार्थियों ने अवधारणाओं को समझने में आ रही समस्याओं का ज़िक्र किया। उदाहरण के लिए, एक-दो मामले ऐसे भी थे जहां विद्यार्थी एसाइनमेंट्स के लिए अध्यापकों द्वारा दिये गये निर्देशों को नहीं समझ पाये; उन्हें पता नहीं चला कि उन्हें क्या करना है। जिन विद्यार्थियों के पास बैचलर्स प्रोग्राम में अंग्रेजी माध्यम नहीं था उन्हें भी ऑनलाइन क्लासेज़ के दौरान दी गयी सघन रीडिंग्स को पढ़ने में मुश्किलें पेश आयीं और उन्होंने बताया कि अगर भौतिक कक्षा होती तो वे अध्यापकों से उन्हें समझने के लिए मदद मांग सकते थे। उत्तरदाताओं ने बताया कि ऑनलाइन प्लेटफॉर्म्स में 'मानवीय तत्व' नहीं था और यहां वैसे संवाद नहीं हो पाये जो ऑफलाइन कक्षा में हुआ करते थे। फैकल्टी सदस्यों ने बताया कि वे ऑनलाइन क्लासेज़ में विद्यार्थियों पर व्यक्तिगत रूप से ध्यान नहीं दे पाते। ऑफलाइन कक्षाओं में अध्यापक पूरी कक्षा में घूमते रहते थे, हर विद्यार्थी से व्यक्तिगत तौर पर बात करते थे तथा उनकी समझदारी को परखते और आंकते रहते थे।

[20] उत्तरदाताओं की पहचान को गोपनीय रखने के लिए उनके नाम बदल दिये गये हैं।

चित्र 5 : ऑफलाइन कक्षाओं में स्वतःस्फूर्त बातचीत और चर्चाओं का माहौल बना रहता था। कोविड-19 लॉकडाउन के पहले की एक कक्षा का फोटो।

ऑनलाइन क्लासेज़ में इन प्रक्रियाओं की पुनरावृत्ति बहुत मुश्किल साबित हुई है। बहुत सारे विद्यार्थियों को इंटरनेट बैंडविड्थ की परेशानियों के चलते कैमरा बंद रखना पड़ता है। इसकी वजह से अध्यापकों को ये पता भी नहीं चल पाता कि उन्हें बात समझ में आ रही है या नहीं। ज़्यादातर विद्यार्थी चर्चाओं में सक्रिय हिस्सेदारी से कतराते थे और ज़्यादातर ऑनलाइन क्लासेज़ अध्यापक की ओर से एकतरफा लेक्चर बनकर रह जाती थीं। जो विद्यार्थी ऑनलाइन प्लेटफॉर्म्स के साथ अभी मुश्किल से ही सहज हो पाये थे उन्हें भी कक्षा की चर्चाओं में हिस्सेदारी आसान नहीं लगती। अध्यापकों ने बताया कि जैसे-जैसे सेमेस्टर आगे बढ़ा, वैसे-वैसे विद्यार्थी थोड़ा खुलने लगे और कक्षा चर्चाओं में हिस्सेदारी कुछ बढ़ने लगी थी।

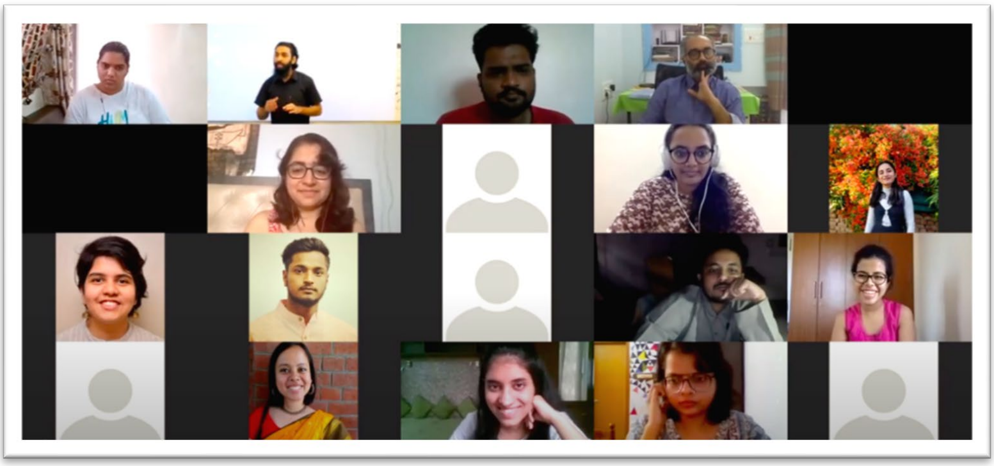

चित्र 6 : ऑनलाइन क्लासरूम का एक स्क्रीनशॉट। कई विद्यार्थियों ने अपने कैमरे बंद किये हुए हैं

ऑफलाइन कक्षा में मैं जितनी चर्चा करती थी या सवाल पूछती थी, उसके मुकाबले में अब मैं कम प्रश्न पूछती हूं और पहले की तरह चर्चा शुरू नहीं करती। (पूनम, एक निजी विश्वविद्यालय में समाज विज्ञान विभाग में स्नातकोत्तर की छात्रा)

क्लास में हम आमतौर पर किसी शीर्षक पर स्वतःस्फूर्त और स्वाभाविक चर्चा में व्यस्त हो जाते हैं....। ऑनलाइन क्लासेज़ में ये स्थिति देर से शुरू हुई। ये एकतरफा प्रक्रिया थी और विद्यार्थियों को लेक्चर रोककर 'आई हैव ए क्वेश्चन'

कहने की आदत डालने में वक्त लगा। (प्रो. गायत्री, एक सरकारी सहायता प्राप्त विश्वविद्यालय में समाज विज्ञान की प्रोफेसर)

किसी शीर्षक को पढ़ाने में इंसानी स्पर्श का अभाव और कक्षा प्रक्रियाओं में हिस्सेदारी न होने से अध्यापकों के उत्साह और प्रेरणा में गिरावट आयी है। जब सीमित इंटरनेट बैंडविड्थ और पीछे से आ रहे शोर की वजह से कैमरा और माइक्रोफोन बंद हों तो फैकल्टी सदस्यों को ये समझ नहीं आता कि विद्यार्थियों को बात समझ में आ रही है या नहीं और वे क्लास में हैं भी या केवल लॉगिन करके जा चुके हैं। विद्यार्थी भी विरले ही कभी अपने सवाल सामने रखते थे जिससे अध्यापकों के उत्साह व प्रेरणा में और भी ज़्यादा गिरावट आयी है।

ऑनलाइन प्लेटफॉर्म्स से अकादमिक गतिविधियों को जारी रखने में मदद मिली है मगर इसमें इंसानी पहलू का अभाव है और लिहाज़ा इसमें क्लासरूम के भीतर होने वाले सामान्य संवाद की कोई गुंजाइश नहीं होती।

ऑनलाइन प्लेटफॉर्म्स को अकादमिक गतिविधियों को जारी रखने के साधन के रूप में पेश किया गया है मगर विद्यार्थी और अध्यापक, दोनों का यही कहना है कि सामान्य कक्षाओं के विपरीत इस माध्यम में सीखने के अनुभव की सघनता नहीं है क्योंकि इसमें बातचीत, संवाद और असहमति की ज़्यादा गुंजाइश नहीं बचती। इससे इन उच्च शिक्षा संस्थानों की टीचिंग-लर्निंग प्रक्रिया पर सीधा असर पड़ा है।

व्यवहार आधारित लर्निंग पर प्रभाव

ऑनलाइन क्लासेज़ में थ्योरी वाले विषयों और कोर्सों की पढ़ाई तो जारी रही मगर जिन कोर्सों में प्रेक्टिकल या हाथ से किये जाने वाली गतिविधियों की ज़रूरत होती है, उनके लिए ऑनलाइन प्लेटफॉर्म्स पर बड़ी दिक्कतें पेश आयीं। उदाहरण के लिए, आर्किटेक्चर कॉलेजों के फैकल्टी सदस्यों और विद्यार्थियों ने बताया कि लॉकडाउन के शुरुआती महीनों में उन्हें अपने डिजाइनों को स्केच करने मॉडल मेकिंग वगैरा के लिए जरूरी स्टेशनरी भी नहीं मिल पा रही थी जिसकी वजह से उनकी क्लासेज़ में व्यवधान आया। इसके अलावा, यातायात संबंधी बंदिशों की वजह से फैकल्टी सदस्य और विद्यार्थी फ़ील्ड विजिट्स के लिए भी नहीं जा पाये जोकि बिल्डिंग प्लान बनाने और मॉडल बनाने के लिए एक अनिवार्य हिस्सा होता है।

इन रुकावटों से निपटने के लिए अध्यापकों और विद्यार्थियों को नये-नये तरीके ढूंढने पड़े। उदाहरण के लिए, बहुत सारे विद्यार्थियों ने मॉडल बनाने के लिए घरेलू चीज़ों का इस्तेमाल किया और लाइनों वाले कागज या पुराने अखबारों पर स्केचिंग करने लगे। कुछ विद्यार्थियों ने नये सॉफ्टवेयर और प्रोग्रामिंग टूल्स को सीखने का भी प्रयास किया जिससे वे डिजिटल स्केच और मॉडल तैयार कर सकें। अध्यापकों ने बताया कि ये एक नया कौशल था। फ़ील्ड विजिट्स के अभाव में फैकल्टी सदस्यों ने कुछ गतिविधियों व तत्वों को करके दिखाने के लिए इंटरनेट पर उपलब्ध ऑडियो-विजुअल साधनों का भी सहारा लिया। उदारहण के लिए, जो फैकल्टी सदस्य कृषि विज्ञान और प्राकृतिक विज्ञान पढ़ाते थे उन्होंने बताया कि वे प्रयोगशाला में किये जाने वाले एक्पेरीमेंट्स और गतिविधियों के लिए भी ऑडियो-विजुअल सामग्री के सहारे पढ़ाने लगे हैं। सभी का मानना था कि ये संसाधन गतिविधियों को करके दिखाने में तो उपयोगी थे मगर यदि उन्हीं अवधारणाओं को खुद करके देखा जाए तो सीखने में ज़्यादा मदद मिलती है।

इंटर्नशिप और फ़ील्ड वर्क जैसी गतिविधियों के लिए जरूरी होता है कि आप कहीं जाकर उस जगह को अच्छी तरह समझें। मगर ऐसी गतिविधियां नहीं करायी जा सकीं। विद्यार्थियों को या तो अपनी विजिट्स मुल्तवी करनी पड़ीं या अपना रिसर्च ऑनलाइन चलाना पड़ा। कुछ संस्थानों ने प्रैक्टिकम और अन्य तरीके भी अपनाये। कुछ फैकल्टी सदस्यों ने यह भी बताया कि ऑनलाइन परिवेश में जमीनी परिस्थितियों को पैदा करने के लिए विद्यार्थियों के बीच रोल प्ले का भी सहारा लिया गया। विभिन्न संस्थानों ने एक्सपोजर विजिट्स का भी दायरा सीमित कर दिया। मिसाल के तौर पर, एक प्राइवेट विश्वविद्यालय में समाज विज्ञान के पहले साल के विद्यार्थियों को प्रोत्साहित किया गया कि वे अपने घर के आसपास मौजूद गरीब और असुरक्षित समुदायों का जायज़ा लें और देखें कि महामारी से उन पर किस तरह के असर पड़े हैं।

यात्रा संबंधी पाबंदियों एवं फिज़िकल डिस्टेंसिंग के नियमों के चलते लाइब्रेरी और लेबोरेटरी बंद कर दी गयी हैं और फ़ील्डवर्क तथा एक्सपोज़र विज़िट रद्द कर दिये गये हैं। इससे व्यवहार आधारित लर्निंग कोर्सेज़ पर गहरे असर पड़े हैं और बहुत सारे शोधकर्ताओं को अपने शोध की दिशा भी बदलनी पड़ी ताकि वे सेकेंडरी डेटा के सहारे काम चला सकें।

शिक्षक शिक्षा के विद्यार्थियों के सामने एक अजीबोगरीब चुनौती पेश आयी। अपने कोर्स की शर्तों के अनुसार फाइनल इयर के विद्यार्थियों को 14 हफ्तों के लिए किसी स्कूल में जाकर पढ़ाना होता है। अब, किसी भी तरह के टीचिंग एक्सपीरिएंस के बिना इन छात्राओं को भी स्कूली बच्चों के लिए ऑनलाइन क्लासेज़ संचालित करनी पड़ी। इन छात्राओं ने बताया कि ऑनलाइन क्लासेज़ में उन्हें उन टीचिंग पद्धतियों का प्रयोग करने में बहुत मुश्किल आयी जो उन्हें सामान्य कक्षाओं के लिए सिखायी गयी थीं। ये विडंबना की बात है कि परंपरागत कक्षाओं में कैसे पढ़ाना है, इसका प्रशिक्षण भी उन्हें ऑनलाइन कक्षाओं में पढ़ाकर अर्जित करना पड़ रहा था।

इस तरह, फैकल्टी सदस्य ऑनलाइन शिक्षा प्रक्रिया के अनुसार अपने थ्योरी के कोर्सों में तो बदलाव कर पाये मगर व्यवहार आधारित लर्निंग वाले कोर्सों के लिए ऐसा नहीं हो पाया।

शोध कार्य पर प्रभाव

कोविड-19 संकट के दौरान जब क्लासेज़ ऑनलाइन संचालित की जाने लगीं तो ऐसा शोध कार्य भी ठप हो गया जिसके लिए प्रयोगशालाओं (प्राकृतिक विज्ञानों में) और फ़ील्ड वर्क (समाज विज्ञानों में) के बिना काम नहीं चल सकता था। इसकी वजह से बहुत सारे शोधार्थियों ने अपने शोध की दिशा ही बदल दी ताकि प्राइमरी डेटा के बजाय सेकेंडरी डेटा से काम चलाया जा सके। इससे शोध की दिशा ही नहीं बल्कि उसका फोकस भी प्रभावित हुआ है। लाइब्रेरी बंद रहीं, डिजिटल लाइब्रेरियों और संसाधनों तक पहुंच अलग-अलग लाइब्रेरियों में लगी डेटा बेस सीमाओं और 'कैंपस ओनली' टर्मिनलों के कारण बाधित हुई। बड़े बड़े डेटा सेट्स पर काम कर रहे शोधार्थियों को भी बहुत समस्याओं का सामना करना पड़ा क्योंकि उनके सीमित क्षमता वाले पर्सनल कंप्यूटर्स में इतनी ज़्यादा प्रोसेसिंग की क्षमता नहीं थी।

जो शोधकर्ता मौसमी किस्म की प्राकृतिक व्यवस्थाओं और प्रक्रियाओं का अध्ययन कर रहे थे उनके लिए ये बहुत बड़ा झटका था क्योंकि अब उन्हें फ़ील्ड में जाने के लिए पूरे एक साल तक इंतजार करना था। जो शोधार्थी क्वॉलिटेटिव फ़ील्ड रिसर्च कर रहे थे उन्हें भी बहुत नुकसान हुआ क्योंकि फ़ील्डवर्क का कोई विकल्प नहीं होता, खासतौर से उन लोगों के लिए जोकि एथनोग्राफिक पद्धति से शोध करना चाहते हैं। एक शोधार्थी ने बताया कि फ़ील्ड में जाना एक सोचे-समझे जोखिम का मामला था। जो शोधार्थी प्राइमरी डेटा के लिए लोगों के साथ बातचीत, साक्षात्कारों और सर्वेक्षणों पर आश्रित थे, उनका शोध भी रातों-रात ठप हो गया और वे अपनी रिपोर्टें समय पर जमा नहीं करा सके। ये एक गंभीर नैतिक प्रश्न बन गया था कि यदि शोधार्थी फ़ील्ड में जाते हैं और कोविड-19 से संक्रमित होते हैं तो वे अपने शोध के तहत संपर्क में आने वाले दूसरे लोगों को भी संक्रमित कर सकते हैं। इस बात को देखते हुए संस्थागत नैतिकता समितियों और सरकारी विभागों से मंजूरी व क्लियरेंस लेना एक टेढ़ी खीर साबित हुआ। कुछ शोधार्थियों ने ऑनलाइन प्रक्रियाओं के अनुसार अपने सर्वेक्षणों और साक्षात्कारों में कुछ बदलाव कर लिये। फिर भी, ऑनलाइन साक्षात्कार लेना बहुत समय लेने वाला काम साबित हुआ जिसकी वजह से शोधार्थियों को सैम्पल साइज में कटौती करनी पड़ी।

मुझे ऑनलाइन साक्षात्कार के लिए ऐसे लोग नहीं मिल पाये जो खुलकर जवाब दे पाते जैसे सामान्य साक्षात्कार में देते हैं। मुझे लोगों से संपर्क करने में भी बहुत मुश्किल हुई क्योंकि कुछ लोगों ने जवाब देना ही बंद कर दिया था। इसका नतीजा ये हुआ कि मैं केवल 33 लोगों के ही साक्षात्कार ले पायी जबकि पहले मैंने 50 लोगों के साक्षात्कार लेने की योजना बनायी थी। (पूनम, एक प्राइवेट युनिवर्सिटी में समाज विज्ञान की स्नातकोत्तर छात्रा)

लंबे समय तक घर में रहने से भी शोध कार्य पर सीधा असर पड़ा क्योंकि बहुत सारे घरों में ऐसा माहौल नहीं होता जहां आप लगन से और लंबे समय तक पढ़ सकें। आइसोलेशन से भी शोध पर सीधा असर पड़ा क्योंकि शोधार्थी अपने

साथियों से बात नहीं कर सकते थे और चुनांचे अपने विचारों को निखार नहीं सकते थे। कई शोधार्थियों ने बताया कि मेलजोल और समुदाय का बोध न होने से उनके काम पर भारी असर पड़ा है।

जब आप कैम्पस में होते हैं तो दूसरे स्कॉलर्स से मिलते हैं। मगर अब एक-दूसरे के साथ, एक-दूसरे के लिए काम आना संभव नहीं रहा। विडियो कॉल्स में वैसा विचारोत्जक माहौल, वैसा याराना और दोस्ती पैदा नहीं होती। (सायंतन, एक सरकारी सहायता प्राप्त विश्वविद्यालय में समाज विज्ञान के पीएचडी छात्र)

फ़ील्ड वर्क और एक्सपेरीमेंट्स में विलंब से दूरगामी असर पड़ते हैं क्योंकि रिसर्च फंडिंग समयसीमा से बंधी होती है। हालांकि संस्थानों ने अपने नियमों में ढील दी है और एक्सटेंशन दे दिया है फिर भी अभी ये कहना मुश्किल है कि इतनी ढील और एक्सटेंशन से काम चल पायेगा या नहीं।

भावनात्मक ख़ुशहाली और मानसिक स्वास्थ्य

कोविड-19 महामारी और फलस्वरूप लगाये गये लॉकडाउन से दुनिया भर के लोगों की खुशहाली और मानसिक स्वास्थ्य पर गंभीर भावनात्मक असर पड़े हैं। बहुत सारे लोग प्रत्यक्ष रूप से स्वास्थ्य समस्याओं की चपेट में आए हैं या सामाजिक-आर्थिक परिणामों की वजह से अप्रत्यक्ष तौर पर प्रभावित हुए हैं। यह बात फैकल्टी सदस्यों और विद्यार्थियों, सभी के लिए सच है। शोध के दौरान की गयी वार्ताओं में खासतौर से विद्यार्थियों ने बार-बार इस बात का ज़िक्र किया कि उन्हें ऐसा लगता है जैसे वे 'कहीं अटक गये हैं।' विद्यार्थियों ने बताया कि लगातार स्क्रीन पर आंखें गड़ाये रहने से उनमें एक ऊब और तनाव पैदा हुआ है क्योंकि अब वे अपने साथियों से बिलकुल कट चुके हैं। मास्टर्स की डिग्री के फर्स्ट इयर के एक विद्यार्थी ने बताया कि उसकी अपने सहपाठियों से अब तक कोई मुलाकात नहीं हुई है और कई क्लासेज़ में मौजूदगी और सामूहिक एसाइनमेंट्स करने के बाद भी उसकी किसी से दोस्ती नहीं हो पायी है।

विद्यार्थी अकसर मुझे बताते हैं कि आप सब लोगों (फैकल्टी सदस्यों) को ऐसा लगता है कि हम घर में सुरक्षित और मजे में हैं मगर दिन भर स्क्रीन को देखते रहना, यार-दोस्तों से न मिल पाना, इस उम्र में सामाजिक जीवन से कट जाना और जब आप मां-बाप से भी खुलकर अपनी बात नहीं कह सकें...। इस सबसे उन पर गहरा असर पड़ रहा है, हम उनकी हताशा को साफ पढ़ सकते हैं। (प्रोफेसर प्रिया, फैकल्टी, स्कूल ऑफ आर्किटेक्चर, प्राइवेट कॉलेज)

घर की चारदीवारी में महदूद रहना, अकसर मां-बाप और कुनवे के लोगों के बीच रहना और अपने संगी-साथियों से बिलकुल न मिल पाने से विद्यार्थियों की भावनात्मक खुशहाली पर सीधा असर पड़ा है। फाइनल सेमेस्टर के विद्यार्थियों ने बताया कि आने वाले समय में नौकरी पाने या अगली डिग्री में दाखिला पाने की अनिश्चतता ने उन्हें बेचैन कर दिया है और वे भावनात्मक तनाव से जूझ रहे हैं। विद्यार्थियों ने यह भी बताया कि ज़्यादातर फैकल्टी सदस्य उनकी स्थिति को समझते हैं और एसाइनमेंट्स जमा कराने में देरी जैसी समस्याओं पर हमदर्दी का रवैया अपनाते हैं।

लंबे समय तक घर पर रहने के आदेशों ने स्क्रीन टाइम बढ़ा दिया है जिससे फ़ैकल्टी और विद्यार्थियों सभी के मानसिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक असर पड़ा है।

फैकल्टी सदस्यों के लिए ऑनलाइन शिक्षा को अपनाने का मतलब था पहले से ज़्यादा समय तक काम करना। उन्होंने बताया कि उन्हें ऑनसाइट क्लासेज़ के मुकाबले ऑनलाइन क्लासेज़ के लिए तैयारी में ज़्यादा समय और मेहनत करनी पड़ती है। लगातार घर से ही काम करने से उनके काम और जीवन का संतुलन भी बुरी तरह प्रभावित हुआ है।

ऑनलाइन टीचिंग तो कभी खत्म ही नहीं होती। न जाने कितने वेबिनार और टॉक चलते रहते हैं। काम से बाद के घंटों में भी काम चलता रहता है जिससे व्यक्तिगत समय और दायरे भी अनिश्चित होते चले जाते हैं। (प्रो. सेबेस्टियन एक प्राइवेट कॉलेज में अंग्रेजी के अध्यापक)

घर से काम करने की बदौलत कुछ लचीलापन तो मिलता है मगर इसकी वजह से काम के घंटे और मेहनत भी बढ़ गयी है जिससे मेरे काम और जीवन का संतुलन अस्त-व्यस्त हो रहा है। (प्रो. निकिता, फैकल्टी, स्कूल ऑफ आर्किटेक्चर, प्राइवेट कॉलेज)।

फैकल्टी सदस्यों ने ये भी बताया कि उनमें 'अच्छी तरह' न पढ़ाने की वजह से एक अपराधबोध पैदा हो रहा है। उन्हें इस बात का भी दुख है कि जिन विद्यार्थियों के पास पर्याप्त डिजिटल सुविधाएं नहीं हैं उनका कितना नुकसान हो रहा होगा।

जो विद्यार्थी अच्छा प्रदर्शन कर रहे थे वे आगे भी अच्छा प्रदर्शन करते रहेंगे और जिनको मुश्किल आ रही है उनकी मुश्किलें बनी हुई हैं। ऐसा शायद इसलिए है क्योंकि उनकी किसी से बात नहीं होती। कॉलेज खुलता तो मैं ऐसे विद्यार्थियों को व्यक्तिगत रूप से मदद देती और उन्हें काम करने में आसानी होती। इससे बहुत फर्क पड़ता है। ऑनलाइन पढ़ाई में ऐसा करना बहुत मुश्किल हो जाता है। मैं ये कर सकती हूं मगर इससे मैं पूरी तरह थक जाती हूं। ऐसे में हमारे भीतर एक अपराधबोध पैदा हो जाता है। टीचर्स में आजकल बहुत अपराधबोध पैदा हो रहा है। ऐसा लगता है हमने भानमती का पिटारा खोल दिया है - जब हालात ऐसे हों तो हम विद्यार्थियों से काम करने के लिए कैसे कहें। किसी के यहां बारिश पड़ रही है, कहीं इंटरनेट नहीं चल रहा, किसी के पास लैपटॉप खरीदने के पैसे नहीं हैं, कहीं घर में कोई बीमार पड़ा है, किसी का पूरा परिवार बीमार पड़ा है। हम बेहिसाब अपराधबोध से जूझ रहे हैं और कहीं न कहीं इसने हमें भी अपनी चपेट में ले लिया है। (प्रो. प्रिया, फैकल्टी, स्कूल ऑफ आर्किटेक्चर, प्राइवेट कॉलेज)

मानसिक स्वास्थ्य के सवाल पर जागरूकता की कमी की वजह से इस तनावपूर्ण स्थिति को संबोधित करना और भी मुश्किल हो गया है। ऊपर से शैक्षिक परिवेश से जुड़े लोगों को लंबे समय तक अलग-थलग रहना पड़ रहा है जिससे आशंकाएं और बढ़ जाती हैं। लिहाज़ा मानसिक स्वास्थ्य की चुनौतियों से निपटने के लिए पेशेवर विशेषज्ञों की मदद से संस्थागत प्रतिक्रिया की रूपरेखा विकसित की जाए। जब तक पर्याप्त संस्थागत प्रतिक्रिया का बंदोबस्त नहीं होगा, तब तक न केवल विद्यार्थी अकादमिक विफलता की आशंका से जूझते रहेंगे बल्कि रोज़मर्रा चुनौतियों से जूझने की उनकी क्षमता भी क्षीण होगी और खुद को नुकसान पहुंचाने की आशंका बढ़ जाएगी। दिल्ली विश्वविद्यालय के लेडी श्री राम कॉलेज में पढ़ने वाली ऐश्वर्या रेड्डी की खुदकुशी इसका एक दर्दनाक उदाहरण है। ऐश्वर्या को इंस्पायर स्कॉलरशिप भी मिल चुकी थी मगर लॉकडाउन के कारण स्कॉलरशिप का पैसा नहीं आ पा रहा था।[21] इससे पता चलता है कि महामारी ने शिक्षा में असमानता व उपेक्षा को कितना बढ़ा दिया है।

सितंबर 2020 में कॉलेज विद्यार्थी प्रतिनिधियों की एक समिति ने ऑनलाइन शिक्षा की वजह से पैदा हो रही समस्याओं को आंकने के लिए एक आंतरिक सर्वेक्षण किया था। इस सर्वेक्षण की प्रतिक्रिया में उपरोक्त छात्रा ने बताया था, *"वे पढ़ा तो रहे हैं मगर मेरे पास लैपटॉप है नहीं और मोबाइल ठीक से काम नहीं करता। इसकी वजह से मैं कोई प्रैक्टिकल पेपर नहीं कर पा रही हूं।"* उसने बताया कि चूंकि वह ऑनलाइन क्लासेज़ अटेंड नहीं कर पा रही थी इसलिए उसका मानसिक स्वास्थ्य प्रभावित हो रहा था। उसने ये भी कहा था *"उसका इंटरनेट कनेक्शन तीन घंटे से ज़्यादा नहीं चलता जबकि उसकी क्लासेज़ दुगने टाइम तक चलती हैं।"* महामारी के दौरान अपनी जान ले लेने वाली वो अकेली छात्रा नहीं थी। और भी बहुत सारे विद्यार्थियों ने आत्मघाती कदम उठाये हैं। इन नौजवानों की असमय मृत्यु के लिए आंशिक रूप से संसाधनों के अभाव को ज़िम्मेदार ठहराया जा सकता है मगर इसके लिए व्यापक शिक्षा व्यवस्था भी ज़िम्मेदार है जो ऑनलाइन शिक्षा के लिए आवश्यक उपकरण व सुविधाएं खरीदने का ज़िम्मा पूरी तरह विद्यार्थियों पर ढकेल देती है मगर उन्हें किसी तरह की आर्थिक या अन्य सहायता मुहैया कराने को तैयार नहीं है। उच्चतम पेशेवर मानकों का पालन करते हुए ऐसे तनावग्रस्त विद्यार्थियों के लिए काउंसलिंग के उचित दिशानिर्देश व प्रावधान तय करना सरकार और उच्च शिक्षा संस्थानों की नैतिक ज़िम्मेदारी बनती है।

मौजूदा असुरक्षाओं में इज़ाफ़ा

कोविड-19 महामारी और लॉकडाउन के बाद ऑनलाइन लर्निंग की ओर संक्रमण से देश की उच्च शिक्षा व्यवस्था में पहले से मौजूद असमानताएं व असुरक्षाएं और बढ़ गयी हैं। हमारे समाज में मौजूद ज़बर्दस्त डिजिटल असमानता के चलते

[21] एलआरएस स्कॉलरशिप स्टुडेंट डाईज़ बाई सुसाइड इन तेलंगाना, हिट बाई कोविड लॉकडाउन ऐंड फाइनेंशियल क्राइसेस।

ऑनलाइन लर्निंग प्रक्रिया भेदभाव का एक और स्रोत बन गयी है। सामाजिक और आर्थिक रूप से कमज़ोर परिवारों तथा ग्रामीण इलाकों में रहने वाले विद्यार्थियों को ऑनलाइन लर्निंग के रास्ते में गंभीर समस्याओं का सामना करना पड़ता है क्योंकि उनके पास बिजली, इंटरनेट कनेक्शन, सस्ते उपकरण और पढ़ने की व्यवधानमुक्त जगह नहीं होती। लंबे समय तक वर्क फ्रॉम होम की स्थिति महिलाओं के लिए ख़ासतौर से चुनौतीपूर्ण साबित हुई है क्योंकि उन्हें घर के काम और परिजनों की देखभाल का ज़िम्मा भी संभालना पड़ता है। कई छात्राओं को अपनी पढ़ाई छोड़नी पड़ी और उन पर शादी के लिए दबाव भी पड़ने लगा। जिन अध्यापिकाओं के बच्चे अभी स्कूल जा रहे हैं, उन्हें भी घर में बच्चों की ऑनलाइन शिक्षा और अपनी ऑनलाइन क्लासेज़ के बीच संतुलन के लिए दिन रात जूझना पड़ा।

विडियो 2 में नैशनल लॉ स्कूल ऑफ इंडिया युनिवर्सिटी (एनएलएसयूआई) की एक अध्यापिका ऑनलाइन लर्निंग की वजह से हो रही शैक्षिक क्षति के बारे में बता रही हैं।

डिजिटल असमानताएं

महामारी और उसके बाद पैदा हुई अस्त-व्यस्तता ने समाज में मौजूद असुरक्षाओं और असमानताओं को सामने ला दिया है। ऑनलाइन लर्निंग की तरफ आने से कंप्यूटरों, स्मार्ट फोन और हाई स्पीड इंटरनेट कनेक्टिविटी जैसे सवाल पढ़ाई के लिए गहरे महत्व के हो गये हैं। देश भर में जबर्दस्त डिजिटल असमानता का नतीजा ये हुआ है कि जिनके पास ये संसाधन नहीं हैं, उनमें से बहुत सारे विद्यार्थी अपनी लर्निंग को जारी नहीं रख पाए हैं। जो लोग जैसे-तैसे मोबाइल फोन के ज़रिये क्लासेज़ अटेंड करते हैं, उन्हें भी लंबे समय तक मोबाइल फोन के छोटे स्क्रीन को देखते रहने में बहुत मुश्किलें पैदा हो जाती हैं। जो विद्यार्थी बहुत धीमे मोबाइल इंटरनेट कनेक्शन के ज़रिये क्लासेज़ कर रहे हैं उन्हें बार-बार कनेक्शन टूटने की वजह से परेशानी होती है जिसकी वजह से क्लास में उनका जुड़ाव बन ही नहीं पाता। क्लास छूट जाने के डर से बहुत सारे विद्यार्थियों में और ज़्यादा तनाव व बेचैनी पैदा हुई है जिससे उनके मानसिक स्वास्थ्य पर सीधा नकारात्मक असर पड़ रहा है। संस्थान के बाहर रहते हुए क्लास अटेंड करने के लिए तेज और स्थिर इंटरनेट कनेक्शन, बैंडविड्थ और उपकरणों की उपलब्धता बहुत हद तक उनकी सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि से तय होती है। सरकारी विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों से हुई बातचीत के दौरान डिजिटल बुनियादी ढांचे की उपलब्धता का सवाल लगातार सामने आया जबकि प्राइवेट संस्थाओं में पढ़ने वाले हाशियाई तबकों के कुछ विद्यार्थियों ने भी महामारी के दौरान डिजिटल असमानता का ज़िक्र किया।

> *ऑनलाइन टीचिंग से हमारी क्लास में एक असंतुलन पैदा हुआ (...) सभी के पास तेज इंटरनेट या लैपटॉप या टैब (टैबलेट कंप्यूटर) जैसी सुविधाएं नहीं थीं।* (रवि, अंडरग्रेजुएट छात्र, स्कूल ऑफ आर्किटेक्चर, प्राइवेट कॉलेज)

> *एक-दो दिन के लिए क्लास छूटना हमेशा के लिए कट जाने के मुकाबले अलग होता है। कनेक्शन बार-बार टूटने की वजह से मैं बहुत तंग आ गयी थी। मैं बाद में दोबारा भी देख सकती थी मगर बाद में देखने का कोई मतलब नहीं होता।* (पूनम, एक निजी विश्वविद्यालय में समाज विज्ञान की स्नातकोत्तर छात्रा)

उपलब्धता का सवाल आर्थिक क्षमता के सवाल से भी गहरे तौर पर जुड़ा होता है। स्कूलों, उच्च शिक्षा संस्थानों और कार्यस्थलों के बंद होने से समूचे परिवार घर पर रहकर अपनी शिक्षा या काम को जारी रखने के लिए विवश थे। निजी उपकरणों के अभाव में और क्लास व काम के समय में फर्क न होने से परिवारों को इस दुविधा से भी गुज़रना पड़ा कि जो उपकरण उपलब्ध हैं उनका काम के लिए इस्तेमाल किया जाए या पढ़ाई के लिए।

आर्थिक क्षमता के साथ-साथ इलाकाई असमानताओं से भी डिजिटल बुनियादी ढांचे तक पहुंच पर सीधा असर पड़ता है। सरकारी और निजी, दोनों प्रकार के विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों के सामने ये समस्या दिखायी दी मगर इलाकाई असमानता का संकट युनिवर्सिटी ऑफ एग्रीकल्चरल साइंसेज तथा बेंगलुरू युनिवर्सिटी जैसे सरकारी विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों के सामने बहुत ज़्यादा गंभीर था। ऐसे विश्वविद्यालयों में कर्नाटक के दूर-दूर के ग्रामीण इलाकों के नौजवान भी पढ़ने आते हैं। ऐसे बहुत सारे दुर्गम ग्रामीण इलाकों के बहुत सारे विद्यार्थियों को क्लास अटेंड करने के लिए दूर-दूर तक चलकर बेहतर कनेक्टिविटी वाले स्थानों पर जाना पड़ा। इसके लिए उन्हें पैदल ही जाना पड़ता था क्योंकि बहुधा परिवहन साधन भी उपलब्ध नहीं थे।

> *हमारी 40 फीसदी सीटें किसान पृष्ठभूमि के विद्यार्थियों के लिए आरक्षित होती हैं (...) उनके माता पिता या तो किसान हैं या खेत मज़दूर हैं (...) जब हमने ऑनलाइन क्लासें शुरू की तों हमें अपने बहुत सारे विद्यार्थियों की तरफ*

से ये शिकायत मिली कि वे ये क्लास अटेंड नहीं कर सकते क्योंकि उनके पास घर में कंप्यूटर नहीं हैं। (प्रो. मंजुनाथ, एक सरकारी विश्वविद्यालय में कृषि विज्ञान के प्रोफेसर)।

मेरी एक छात्रा एक आदिवासी जिले में रहती है। वह हर रोज़ पैदल या साइकिल पर तीन किलोमीटर दूर वहां तक जाती है जहां कनेक्टिविटी अच्छी है। तब वह ऑनलाइन क्लास कर पाती है। (प्रोफेसर कमला, एक निजी विश्वविद्यालय में समाज विज्ञान की प्रोफेसर)

जम्मू कश्मीर तथा पूर्वोत्तर जैसे टकरावग्रस्त इलाकों के विद्यार्थियों को ऑनलाइन क्लासेज़ अटेंड करने में कई रुकावटों का सामना करना पड़ा। ये समस्या सबसे कठिन जम्मू और कश्मीर के मामले में दिखायी दी जहां भारत सरकार ने 5 अगस्त 2019 से उसको केंद्रशासित प्रदेश का दर्जा देने के बाद से हाई स्पीड इंटरनेट को बंद कर दिया था। इस इलाके के विद्यार्थियों के पास केवल 2G इंटरनेट ही उपलब्ध था जिसकी वजह से उनके लिए ऑनलाइन क्लास अटेंड कर पाना और दूसरी लर्निंग गतिविधियों में हिस्सा लेना लगभग असंभव हो गया था। लगातार इंटरनेट बंद रहने से न केवल पूरे इलाके के विद्यार्थियों की लर्निंग पर बहुत बुरा असर पड़ा बल्कि इसने देश के अन्य भागों के मुकाबले यहां के विद्यार्थियों, शोधार्थियों और फैकल्टी सदस्यों को भी ज़्यादा नुकसान की स्थिति में ढकेल दिया।

जाति, वर्ग, समुदाय और क्षेत्रीय भिन्नताओं के अनुसार गहरी डिजिटल असमानता का नतीजा ये हुआ है कि हाशियाई समुदायों के विद्यार्थी और ग्रामीण एवं दुर्गम इलाकों में रहने वाले विद्यार्थी ऑनलाइन क्लासेज़ अटेंड नहीं कर पाए हैं।

ऊपर दिये गये निष्कर्षों की *ओपी जिंदल ग्लोबल युनिवर्सिटी* द्वारा तैयार की गयी एक रिपोर्ट (2020) से भी पुष्टि होती है। इस रिपोर्ट में बताया गया है कि विभिन्न संस्थाओं में इस बात को लेकर गंभीर चिंता का माहौल था कि उनके पास पर्याप्त हार्डवेयर एवं सॉफ्टवेयर साधन, कनेक्टिविटी, निरंतर बिजली आपूर्ति और अन्य सुविधाएं नहीं हैं जो ऑनलाइन लर्निंग के लिए जरूरी होती हैं। शिक्षा संस्थानों के बंद होने से बहुत सारे विद्यार्थियों को अपने घर लौटना पड़ा जिससे उन्हें लाइब्रेरी और इंटरनेट सुविधाओं से कटना पड़ा। दूसरी तरफ, आर्थिक सीमाओं की वजह से अध्यापक और विद्यार्थी बिजली और इंटरनेट कनेक्शन जैसी सुविधाओं में भी निवेश नहीं कर पाये जिससे ऑनलाइन क्लासेज़ में सहभागिता और निरंतरता के लिए भारी चुनौती पैदा हुई है।

विद्यार्थियों को कनेक्टिविटी की परेशानी के कारण क्लासेज़ का नुकसान न उठाना पड़े, ये सुनिश्चित करने के लिए कई संस्थाओं ने ऑनलाइन क्लासेज़ को रिकार्ड किया और व्हॉट्सएप के ज़रिये विद्यार्थियों को भेजा। मगर कंप्यूटरों, टैबलेट और स्मार्ट फोन के अभाव जैसी समस्याओं को हल करने के लिए इन संस्थाओं के पास भी कोई समाधान नहीं था। ये साधन जुटाने का बोझ प्रायः विद्यार्थियों के ऊपर ही रहा। कई विद्यार्थी ऐसे समुदायों और इलाकों के थे जहां गहरी गैर-बराबरी और असुरक्षाएं मौजूद हैं। डिजिटल लर्निंग प्लेटफॉर्म्स तक पहुंच की कमी ने इन असमानताओं को काफी बढ़ा दिया और अकादमिक प्रगति व लर्निंग को नकारात्मक रूप से प्रभावित किया। संसाधनों की कमी और कुछ विषम स्थितियों में संस्थागत उपेक्षा की वजह से गरीब तबके के कई विद्यार्थियों को खुदकुशी का रास्ता भी चुनना पड़ा।

कोविड-19 महामारी के जेंडर संबंधी प्रभाव

भारतीय समाज में काम का बंटवारा प्रायः जेंडर पहचान के अनुसार होता है और लिहाज़ा महिलाओं से उम्मीद की जाती है कि घर के काम वही संभालें। लिहाज़ा, महामारी और उसके कारण घर की चारदीवारी में बंद रहने की मजबूरी के चलते महिलाओं पर सामान्य से कहीं ज़्यादा कामों का बोझ आ पड़ा था। जब ‘क्लासरूम’ और घर के दायरों का फर्क खत्म हो गया तो महिलाओं से उम्मीद की जाने लगी कि वे घर का काम भी करें जिससे एकाग्र होकर पढ़ना एक चुनौती बन गया था। क्लासेज़ करने के लिए अलग कमरा न होने से बहुत सारी लड़कियों को अपनी पढ़ाई पर ध्यान केंद्रित करने में बहुत ज़्यादा परेशानी हुई। ये परेशानी उन लड़कियों के लिए गंभीर थी जो एक सख़्त माहौल में थीं और कई ज़िम्मेदारियों से घिरी हुई थीं।

मेरे पास पढ़ने का अलग कमरा नहीं था। मम्मी-पापा बार-बार कमरे में आते थे। पढ़ने के लिए फोकस चाहिए होता है। वे बार-बार कहते कि गायों को चारा डाल दो, पानी पिला दो। मैं मना भी नहीं कर सकता क्योंकि मैं घर में मौजूद हूं। (श्याम, एक निजी विश्वविद्यालय में समाज विज्ञान के स्नातकोत्तर छात्र)

देखभाल की ज़िम्मेदारी परंपरागत रूप से महिलाओं पर होती है इसलिए अध्यापिकाओं और छात्राओं को इस मद में भी बहुत सारा काम करना पड़ता है। खासतौर से लॉकडाउन के शुरुआती दिनों में, जब देखभाल कर्मी कहीं उपलब्ध नहीं थे। छात्राओं पर अकसर शादी का दबाव भी बढ़ गया था जिससे वे तनावग्रस्त हुईं और पढ़ाई-लिखाई तथा समयसीमाओं का पालन करने में उन्हें भारी परेशानी हुई।

जब आप घर पर होते हैं तो बहुत सारी चीज़ों में उलझ ही जाते हैं। घर में कोई भी ज़रूरत/संकट हो, आपको हाथ बढ़ाना ही पड़ता है। मुझे एसाइनमेंट भेजने हैं मगर घरवालों को लगता है उनकी ज़रूरतों को पूरा करना कहीं ज़्यादा जरूरी है। (पूनम, एक निजी विश्वविद्यालय में समाज विज्ञान की स्नातकोत्तर छात्रा)

मेरी एक छात्रा पर लगातार ये दबाव था कि वह शादी कर ले। एक हद के बाद उसके लिए इस दबाव से जूझना इतना मुश्किल हो गया कि वो अपनी नानी के घर जाकर रहने लगी। (प्रोफेसर कमला, एक निजी विश्वविद्यालय में समाज विज्ञान की प्रोफेसर)

इन विद्यार्थियों के अलावा छोटे बच्चों और बुजुर्गों के साथ रह रही युवा अध्यापिकाओं को भी ऑनलाइन टीचिंग और देखभाल की ज़िम्मेदारियों के बीच खूब झूलना पड़ा। एक फैकल्टी सदस्या ने बताया कि ऑनलाइन टीचिंग के दौरान उनके दिमाग में लगातार इसी बात का डर बना रहता था कि कहीं उनकी कम उम्र बेटी अचानक कैमरे के सामने न आ जाए। बार-बार मना करने के बाद भी उनकी बेटी सावधानी छोड़ देती थी और ऐसे में पढ़ाने के साथ-साथ उसे संभालना मुश्किल हो जाता था। एक और अध्यापिका जिसने अभी एक बच्चे को जन्म दिया था, उन्होंने बताया कि उन्हें अपनी कई ज़िम्मेदारियों के बीच तालमेल बिठाने के लिए बहुत परेशानी का सामना करना पड़ रहा है।

डिजिटल उपकरण व सुविधाएं जुटाने का आर्थिक बोझ विद्यार्थियों और फ़ैकल्टी के ऊपर आ पड़ा है।

जिस वक्त लॉकडाउन का ऐलान हुआ, उसी समय मेरी डिलीवरी हुई थी। मेरे घर में कोई डोमेस्टिक हेल्प नहीं थी और पहले से एक बच्चा है। मेरे पति काम करते थे। हम दोनों की डेडलाइन होती थी। तब तो शारीरिक और मानसिक रूप से हम त्रस्त हो गये थे। (प्रो. आशा, सरकारी सहायता प्राप्त विश्वविद्यालय में समाज विज्ञान की प्रोफेसर)।

जिन अध्यापिकाओं के बच्चे भी स्कूल की ऑनलाइन क्लासेज़ अटेंड कर रहे थे उन्होंने बताया कि उन्हें अपनी क्लास के साथ-साथ अपने बच्चों की क्लास के बारे में भी ध्यान देना पड़ता था। उन्होंने बताया कि बच्चों की देखभाल का ज़िम्मा एकतरफा तौर पर महिलाओं के ऊपर आ गया था। कामकाजी मांओं से प्रायः ये उम्मीद की जाने लगी थी कि वे ऑनलाइन क्लास कर रहे अपने बच्चों, खासतौर से छोटे बच्चों के साथ जरूर बैठा करें।

(...) मेरे घर में एक लैपटॉप, एक आईपैड और तीन कमरे भी हों तो भी... अगर सुबह नौ बजे सबकी क्लास होनी है और घर में चार लोग हैं तो आपको चार अलग-अलग कमरे चाहिए। यदि मैं टीचर हूं और अभिषेक (बेटा, नाम बदला हुआ) की टीचर बहुत जोर-जोर से बोल रही है तो मैं उसी कमरे में बैठकर पढ़ा नहीं सकती। मेरी क्लास में बार-बार रुकावट आएगी.... मुझे ये तो झेलना ही पड़ा। (प्रो. एकता, एक केंद्रीय विश्वविद्यालय के शिक्षा विभाग की अध्यापिका)

महामारी ने महिला शोधार्थियों को भी नकारात्मक रूप से प्रभावित किया है। टीईएसएफ रिसर्च टीम ने जीवन विज्ञान एवं सामाजिक न्याय के समर्थक संगठनों के प्रतिनिधियों को लेकर एक पैनल चर्चा आयोजित की थी। इस चर्चा में निकलकर आया कि महामारी ने करिअर के शुरुआती दौर की और वरिष्ठ शोधार्थियों, खासतौर से विज्ञान की महिला शोधार्थियों के लिए नये दबाव पैदा कर दिये हैं। महामारी ने भारतीय विज्ञान के क्षेत्र में पहले से महिलाओं पर मौजूद तीन तरह के दबावों को और सघन बना दिया है। उन्हें घर की ज़िम्मेदारियां भी निभानी होती हैं, पेशेवर ज़िम्ममेदारियों को भी निभाना

पड़ता है और विज्ञान के विषयों से संबंधित विशिष्ट चुनौतियों का भी सामना करना पड़ता है। उन्होंने बताया कि शुरुआती रुझानों में ये दिखायी दे रहा था कि महिलाओं की शोध उत्पादकता घट गयी है, कम से कम प्रिप्रिंट सर्वर्स में, यानी वे जितना महामारी के पहले प्रकाशित करती थीं, उसके मुकाबले उनके प्रकाशन कम हो गये थे।[22] प्रयोगशालाओं में जाने और फ़ील्ड वर्क करने की सीमाओं की वजह से भारत में विज्ञान के क्षेत्र में पहले से मौजूद भारी जेंडर फासले में और इज़ाफ़ा होना तय है।

उच्च शिक्षा संस्थानों एवं अध्यापकों की प्रतिक्रिया

महामारी के दौरान दुनिया भर के उच्च शिक्षा संस्थानों ने परंपरागत कक्षाओं के स्थान पर ऑनलाइन लर्निंग का विकल्प अपनाया है मगर ये बदलाव कतई भी सहज नहीं रहा है। फ़ैकल्टी सदस्यों और विद्यार्थियों के अनुभवों में भारी विविधता है और सभी में एक किस्म की तात्कालिकता दिखायी पड़ती है। दोनों का कहना था कि शुरुआती कुछ हफ्ते भारी अनिश्चितता में गुज़रे। जैसे ही क्लासेज़ रद्द की गयीं, छात्रावासों में रह रहे विद्यार्थियों, खासतौर से दूसरे शहरों और दूसरे राज्यों के विद्यार्थियों को अपने घर लौटने के लिए कह दिया गया। कोई नहीं जानता था कि इस महामारी का क्या असर होगा या ये शिक्षा संस्थान कितने दिन तक बंद रहेंगे। जब क्लासेज़ उल्लेखनीय अवधि तक बंद रहीं तो संस्थाओं को अपने कोर्स पूरे करवाने और मूल्यांकन वगैरह की चिंता सताने लगी।

शुरुआत में बहुत अनिश्चितता थी। हमें कुछ पता नहीं था कि सेमेस्टर एक्सटेंड किया जाएगा या नहीं और कोर्स की ज़रूरतों में कोई बदलाव किया जाएगा या नहीं क्योंकि क्लासेज़ को बंद हुए दो-तीन हफ्ते हो चुके थे। (रवि, प्राइवेट कॉलेज में आर्किटेक्चर के अंडरग्रेजुएट विद्यार्थी)।

ऑनलाइन क्लासेज़ का फैसला बहुत तेजी से लागू किया गया। ऑनलाइन टीचिंग के अनुसार पाठ्यचर्या और शिक्षा पद्धितयों में बदलाव के लिए कोई खास समय नहीं दिया गया। फ़ैकल्टी और विद्यार्थी, सभी के लिए ऑनलाइन टीचिंग-लर्निंग का ये तजुर्बा नया था।

हमें कुछ नहीं पता था कि क्या होने वाला है क्योंकि ऑनलाइन टीचिंग का ये तरीका फ़ैकल्टी और विद्यार्थियों, सभी के लिए नया था। (पूर्णा, एक प्राइवेट युनिवर्सिटी में आर्किटेक्चर की अंडरग्रेजुएट छात्रा)

मगर कुछ संस्थानों ने इस बदलाव के लिए तुलनात्मक रूप से बेहतर तैयारी कर ली थी। कई फ़ैकल्टी सदस्यों, खासतौर से प्राइवेट संस्थाओं के फ़ैकल्टी सदस्यों ने बताया कि टीचिंग सत्र शुरू होने से पहले ही उनके संस्थान की तरफ से उन्हें कई दौर का प्रशिक्षण दिया जा चुका था ताकि वे ऑनलाइन प्लेटफ़ॉर्म्स और ऑनलाइन टीचिंग के तौर-तरीकों से अच्छी तरह वाकिफ हो जाएं। कई फ़ैकल्टी सदस्यों ने ऑनलाइन टीचिंग को ध्यान में रखते हुए अपनी शिक्षा पद्धति, कोर्स की विषयवस्तु और मूल्यांकन के तरीकों में भी संशोधन कर लिये थे। कुछ निजी संस्थानों ने *ज़ूम* और *मेंटीमीटर* जैसे प्लेटफ़ॉर्म्स के भुगतानशुदा संस्करण भी ख़रीद लिए थे ताकि ऑनलाइन टीचिंग को दिलचस्प बनाया जा सके। निजी संस्थानों ने कोर्स मेटीरियल भेजने, असेस्मेंट सबमिट करने और ऑनलाइन टेस्ट कराने के लिए ऑनलाइन लर्निंग मैनेजमेंट सिस्टम प्लेटफ़ॉर्म (एलएमएस) भी ख़रीद लिए थे। विद्यार्थियों को विभिन्न ऑनलाइन टीचिंग प्लेटफ़ॉर्म्स और टूल्स से परिचित कराने के लिए ओरिएंटेशन सेशन भी आयोजित किये गये। मगर ऐसा सब जगह नहीं हुआ। युनिवर्सिटी ऑफ एग्रीकल्चरल साइंसेज़ और बेंगलोर युनिवर्सिटी जैसे सरकारी संस्थानों के विद्यार्थियों और अध्यापकों ने बताया कि उनके विश्वविद्यालय की तरफ से इस तरह के प्रशिक्षण व ओरिएंटेशन आयोजित नहीं किए गये थे। फ़ैकल्टी को *ज़ूम* जैसे एप्लीकेशंस के गैर-लाइसेंसी संस्करण से काम चलाना पड़ा जिसकी वजह से उनकी क्लास हर 40 मिनट में बंद हो जाती थी।

हमें बताया गया कि अब क्लासेज़ ज़ूम पर ली जाएंगी। युनिवर्सिटी ने ज़ूम का लाइसेंसी संस्करण केवल ऐसे अध्यापकों और कक्षाओं के लिए ही ख़रीदा जिनमें विद्यार्थियों की तादाद 100 से अधिक होती थी (...)। हमने कर करके ही सब कुछ सीखा। शुरू में एक-दो क्लासेज़ में कुछ दिक्कतें आयीं मगर ये बड़ी समस्या नहीं थी। (...) स्टूडेंट्स हमसे ज़्यादा स्मार्ट हैं इसलिए उनको भी कोई परेशानी नहीं हुई। सॉफ्टवेयर यूज़र फ्रेंडली था। (प्रोफेसर मंजुनाथ, सरकारी विश्वविद्यालय में कृषि विज्ञान के प्रोफेसर)

[22] लाइफ ऑफ साइंस 'एक ऐसा साइंस मीडिया प्लेटफार्म है जो देश में विभिन्न सामाजिक बाधाओं के प्रसंग में समकालीन शोध एवं वैज्ञानिक अन्वेषण पर केंद्रित है।' इनका काम आप https://thelifeofscience.com/about-tlos/ पर देख सकते हैं।

जिन विद्यार्थियों के पास पर्याप्त डिजिटल सुविधाएं नहीं हैं, वे लर्निंग की प्रक्रिया से बाहर न छूट जाएं, ये सुनिश्चित करने के लिए संस्थानों ने ऑनलाइन सत्रों को रिकॉर्ड करके व्हॉट्सएप जैसे लोकप्रिय मैसेजिंग प्लेटफ़ॉर्म्स के जरिये उन्हें विद्यार्थियों तक भेजा ताकि कमज़ोर इंटरनेट कनेक्शन के बावजूद वे उन्हें डाउनलोड करके देख सें। मगर, ये संस्थान भी कम्प्यूटरों, टैब्लेट्स और स्मार्ट फोन की कमी को दूर नहीं कर पाये। हमने पाया कि एक प्राइवेट युनिवर्सिटी, जो एक परोपकारी सोच के तहत शुरू की गयी थी, ने ग्रामीण पृष्ठभूमि वाले विद्यार्थियों को आर्थिक सहायता भी दी ताकि वे ऐसी जगह कमरा लेकर पढ़ सकें जहां इंटरनेट कनेक्टिविटी अच्छी है। ऐसे विद्यार्थियों को डेटा पैकेज भी उपलब्ध कराये गये। मगर इस तरह की कोशिशें बहुत कम थीं। जनवरी 2021 में शुरू हुए सेमेस्टर में विद्यार्थियों को शहर में स्थित छात्रावासों में आने की छूट दी गयी ताकि वे वहां रहते हुए ऑनलाइन क्लासेज़ अटेंड कर सकें। कई विद्यार्थियों ने इस सुविधा का लाभ उठाया।

इस तरह की संस्थागत प्रतिक्रियाओं के अलावा कुछ फ़ैकल्टी सदस्यों ने भी अपनी पहल पर विद्यार्थियों को मदद दी। मिसाल के तौर पर, सरकारी विश्वविद्यालयों के कुछ फ़ैकल्टी सदस्यों ने अपने पैसे इकट्ठा करके विद्यार्थियों को ऑनलाइन क्लासेज़ करने के लिए उपकरण व इंटरनेट पैकेज ख़रीदने के लिए भी पैसा दिया। उन्होंने काम के घंटों के बाद भी व्हॉट्सएप के जरिये विद्यार्थियों के सवालों के लगातार जवाब दिये। कई अवसरों पर अतिरिक्त सपोर्ट ग्रुप मीटिंगें भी बुलाई गयीं।

घर के कामों और परिजनों की देखभाल का ज़िम्मा भी अध्यापिकाओं और छात्राओं पर ज़्यादा आ गया है। बहुत सारी लड़कियों की पढ़ाई छुड़ा दी गयी और उन पर शादी के लिए भारी दबाव पड़ रहा है या उनकी शादी कर दी गयी है।

चूंकि माइक्रोफोन और कैमरा बंद रहते थे इसलिए फ़ैकल्टी का ये पता नहीं चल सकता था कि विद्यार्थियों को बात समझ में आ रही है या नहीं। इसी लिए हर क्लास के आखिर में वे उन्हें पॉप क्विज़ वगैरह भी देते थे जिससे पता चल सकता था कि किस को कितना समझ में आया है। इसकी वजह से विद्यार्थियों और फ़ैकल्टी सदस्यों पर काम का बोझ काफी बढ़ गया था।

हर क्लास के बाद एसाइनमेंट एक बोझ बन जाता है क्योंकि एक एक दिन में तीन-चार क्लास होती हैं। इस तरह रोज़ तीन-चार एसाइनमेंट हो जाते हैं। इसका नतीजा ये होता है कि हम घंटों तक स्क्रीन से चिपके रहते हैं (...) मेरे घरवालों की शिकायत है कि मैं दिन भर कम्प्यूटर से चिपकी रहती हूं, मैं उन्हें कोई समय नहीं देती। मगर मैं कुछ नहीं कर सकती। मेरे पास काम ही इतना रहता है। (पूर्णा, एक प्राइवेट युनिवर्सिटी में आर्किटेक्चर की अंडरग्रेजुएट छात्रा)

आर्किटेक्चर जैसे कोर्स, जिनमें विद्यार्थियों को एक पूरे सेमेस्टर का इंटर्नशिप पूरा करना पड़ता है, उन्होंने इंटर्नशिप सेमेस्टर के स्थान पर टीचिंग सेमेस्टर ले लिए ताकि बाद में टीचिंग सेमेस्टर के स्थान पर वे इंटर्नशिप के लिए जा सकें। ये विद्यार्थी इंटर्नशिप नहीं ले सकते थे क्योंकि ज़्यादातर संस्थानों का काम घरों से ही चल रहा था। कई जगह विद्यार्थियों को कहा गया कि वे अपने गृह नगर में या घर के आसपास ही इंटर्नशिप कर लें क्योंकि यात्रा संबंधी पाबंदियों और क्वॉरंटीन के नियमों की वजह से वे और कहीं नहीं जा सकते थे। इससे ग्रामीण इलाकों और कस्बों में रहने वाले विद्यार्थियों को नुकसान हुआ क्योंकि वहां अवसर बहुत कम थे।

इस भाग में आप देख सकते हैं कि कोविड-19 महामारी और उसकी वजह से क्लासेज़ को रद्द करने के फैसले से बेंगलुरू के उच्च शिक्षा संस्थानों में टीचिंग और लर्निंग प्रक्रिया के लिए किस तरह के नुकसान हुए हैं। दुनिया के तमाम दूसरे भागों की भांति यहां के संस्थानों ने भी अपनी सारी अकादमिक गतिविधियां ऑनलाइन स्थानांतरित कर दी थीं मगर इस बदलाव में बहुत समस्याएं थीं। फ़ैकल्टी सदस्यों और विद्यार्थियों, दोनों ने पाया कि क्लासरूम के खत्म हो जाने से पूरी लर्निंग प्रक्रिया पर बहुत गहरा असर पड़ा है। ऑनलाइन प्लेटफ़ॉर्म्स से अकादमिक गतिविधियों, चर्चाओं, संवाद और असहमति को व्यक्त करने में तो दिक्कत नहीं थी मगर ऑनलाइन माहौल में उच्च शिक्षा के भव्य मानक भी साकार नहीं हो सकते थे। इसके चलते लर्निंग प्रक्रिया पर असर तो पड़ा ही है।

यात्रा पर लगी पाबंदियों और शारीरिक फासले के नियमों की वजह से लाइब्रेरी और प्रयोगशालाएं बंद कर दी गयीं थी। फ़ील्डवर्क बंद करना पड़ा। इससे व्यवहार आधारित कोर्सों और शोध कार्यों पर सीधा असर पड़ा। लंबे समय तक घर पर रहने के आदेश, दोस्तों और संगी-साथियों से न मिल पाने और महामारी की वजह से पैदा हुई अनिश्चितता का विद्यार्थियों और फ़ैकल्टी सदस्यों के मानसिक स्वास्थ्य पर भारी असर पड़ा है।

इस महामारी और ऑनलाइन क्लासेज़ ने न केवल नई चुनौतियां पैदा की हैं बल्कि उच्च शिक्षा के क्षेत्र में पहले से मौजूद खाइयों को और ज़्यादा गहरा कर दिया है। जाति, वर्ग, समुदाय और क्षेत्र के आधार पर व्याप्त भारी डिजिटल असमानता का नतीजा ये हुआ कि हाशियाई समुदायों के तथा ग्रामीण एवं दूरदराज इलाकों में रहने वाले विद्यार्थी ऑनलाइन क्लासेज़ अटेंड नहीं कर पाये। यह पर्याप्त और भरोसेमंद डिजिटल बुनियादी ढांचा मुहैया न करा पाने की एक व्यवस्थागत समस्या भी है। लंबे समय तक घर पर रहने के हुक्म से महिलाओं के लिए खासतौर पर परेशानी पैदा हुई है क्योंकि घर के काम और देखभाल का ज़िम्मा अब उन पर और ज़्यादा आ गया था। कई छात्राओं को पढ़ाई छोड़नी पड़ी और उन पर शादी के लिए दबाव पड़ने लगा। इससे महिलाओं की अकादमिक गतिविधियों में गिरावट आयी है और बहुत सारी लड़कियों को पढ़ाई छोड़नी पड़ी जिससे उच्च शिक्षा में जेंडर असमानता और बढ़ गयी है।

निजी संस्थानों ने ऑनलाइन क्लासेज़ अपनाने और पहुंच संबंधी चिंताओं को दूर करने के लिए कई तरह के प्रयास किये मगर सरकारी संस्थाओं में इस तरह की कोशिशें दिखायी नहीं दीं। निजी संस्थानों ने फ़ैकल्टी और विद्यार्थियों के लिए ओरिएंटेशन कार्यक्रम आयोजित किए ताकि उन्हें विभिन्न ऑनलाइन प्लेटफ़ॉर्म्स और टूल्स से वाकिफ कराया जा सके। मजबूत आर्थिक स्थिति वाले संस्थानों ने ऑनलाइन लर्निंग को पारस्परिक और बाधामुक्त बनाने के लिए इन सॉफ्टवेयर्स के लाइसेंसी संस्करण भी ख़रीदे। मगर, डिजिटल उपकरणों का बंदोबस्त करने के लिए विद्यार्थियों और फ़ैकल्टी सदस्यों को अपनी जेब से ही खर्च करना पड़ा। इससे पता चलता है कि महामारी के दौरान शिक्षा तक पहुंच व्यक्ति की आर्थिक क्षमता पर निर्भर हो गयी थी।

सभी संस्थानों ने ऑनलाइन सेशंस को रिकॉर्ड करके उन्हें मैसेजिंग प्लेटफ़ॉर्म्स की मार्फ़त विद्यार्थियों तक पहुंचाया है मगर उपकरणों की अनुपलब्ध्ता के सवाल पर वे भी कुछ नहीं कर पाए।

कई संस्थानों ने शिक्षाशात्रीय बदलाव भी किये। मसलन, विद्यार्थियों की प्रगति को मापने के लिए कक्षाओं के आखिर में पॉप क्विज़ या छोटे-छोटे एसाइनमेंट दिये गये। टीचिंग के लिए ऑडियो-विजुअल संसाधनों का भी इस्तेमाल किया गया।

पहुंच की चिंताओं को दूर करने के लिए सभी संस्थानों ने ऑनलाइन सत्र रिकॉर्ड करके उन्हें मैसेजिंग प्लेटफ़ॉर्म्स के जरिये विद्यार्थियों तक पहुंचाया ताकि कमज़ोर इंटरनेट पहुंच वाले विद्यार्थी भी देर से ही सही क्लास को देख-सुन सकें। मगर, ये संस्थान भी उपकरणों की अनुपलब्धता से संबंधित चिंताओं को दूर करने के लिए कुछ खास नहीं कर पाये। उपकरणों का बंदोबस्त करने की ज़िम्मेदारी विद्यार्थियों के ऊपर ही रही।

निष्कर्ष और मुख्य सीख

बेंगलुरू केस स्टडी के नतीजों से पता चलता है कि लोगों पर महामारी का असर जाति, राज्य, जेंडर, समुदाय, भाषा और इलाके के हिसाब से अलग-अलग रहा है। इसमें तो कोई शक नहीं कि महामारी से विद्यार्थियों, खासतौर से सामाजिक व आर्थिक रूप से हाशियाई समुदायों के विद्यार्थियों पर बहुत दूरगामी असर पड़े हैं। अध्ययन से पता चलता है कि आज हमें उच्च शिक्षा में सरकारी व्यय बढ़ाने की ज़रूरत है ताकि समतापरक और टिकाऊ नतीजे हासिल किये जा सकें। लिहाज़ा, उच्च शिक्षा में सामाजिक बेदखली व असमानता तथा उच्च शिक्षा के कॉमोडिफ़िकेशन, इन दो पहलुओं पर नीचे चर्चा की गयी है।

सामाजिक बेदखली और असमानताएं

उच्च शिक्षा शहरी इलाकों में 'हैसियत को कायम' (स्टेटस रिटेंशन) रखते हुए 'हैसियत को स्थिरता' (स्टेटस स्टेबिलाइज़र) देने का काम करती रही है। आज़ादी के बाद शिक्षा के अवसरों में इज़ाफ़ा तो हुआ है मगर ऊपरी तबके जैसी सुविधाजनक स्थिति और ऊंची हैसियत पाने की मुश्किलें कायम रही हैं और उनमें इज़ाफ़ा हुआ है (जयराम, 1977)।

मगर, ताजा साक्ष्यों से ये भी पता चलता है कि उच्च शिक्षा से गरीबी को कम करने में मदद मिलती है क्योंकि इससे सामाजिक, व्यावसायिक एवं आर्थिक गतिशीलता बढ़ती है। इसके बल पर बहुत सारे परिवारों को वापस गरीबी में गिरने से रोका जा सकता है। इससे मानव विकास संकेतकों में भी सुधार आता है (तिलक, 2012)। सामाजिक एवं आर्थिक गतिशीलता बढ़ाने में उच्च शिक्षा की भूमिका को तो प्रायः मान्यता दी जाती रही है मगर उच्च शिक्षा संस्थानों में गरीब परिवारों के विद्यार्थियों के दाखिले और शिक्षा पूरी करने की दरों में गिरावट आ रही है। इसकी वजह से शैक्षिक असमानता में इज़ाफ़ा हो रहा है। इस भाग में हमने बताया है कि शैक्षिक असमानताएं महामारी के आने से पहले भी बढ़ने लगी थीं। इसके पीछे मुख्य रूप से सरकारी निवेश की कमी, निजीकरण और बाज़ार की विचारधारा के तहत किए जाने वाले गुणवत्ता के दावों का हाथ रहा है।

उच्च शिक्षा में दाखिले और पढ़ाई पूरी करने की संभावनाएं किन चीज़ों से तय होती हैं, इसके बारे में किये गये एक अध्ययन में तिलक ने एनएसएस के 1983 से 2009-10 तक के चक्रों का डेटा लिया है और बताया है कि जेंडर, जाति, धर्म, क्षेत्र (शहरी/ग्रामीण) और आर्थिक वर्ग, इन सभी असमानताओं में किसी न किसी हद तक कमी आयी है मगर आर्थिक असमानता में कमी नहीं आयी है बल्कि यह असमानता बढ़ती दिखायी दे रही है (तिलक 2015)। उनका कहना है कि पढ़ाई पूरी करने में जेंडर आधारित असमानता दाखिलों की असमानता से ज़्यादा है मगर अध्ययन की अवधि (1983-84 से 2009-10) के दौरान जेंडर आधारित असमानताओं में कुल मिलाकर गिरावट ही आयी है। इस दौरान जाति पर आधारित असमानताओं में भी कुल मिलाकर कमी आयी है मगर अनुसूचित जातियों (अजा) और अनुसूचित जन जातियों (अजजा) में दाखिला अनुपात तुलनात्मक रूप से कम है और आज भी अजा, अजजा आबादी तथा गैर-अनुसूचित आबादी के बीच भारी असमानता बनी हुई है। शहरी-ग्रामीण असमानता में भी गिरावट आयी है मगर अभी भी शहरी इलाकों के मुकाबले ग्रामीण इलाकों में उच्च शिक्षा तक पहुंचने और शिक्षा पूरी करने की दर काफी कम है (तिलक, 2015)। तो भी, इस बात पर गौर करना ज़रूरी है कि इस दौरान आर्थिक असमानताएं लगातार बढ़ती रही हैं जिसके चलते यह भिन्नता और सामाजिक बेखली की सबसे महत्वूपर्ण धुरी है (तिलक, 2015)। तिलक का कहना है कि इन असमानताओं को उच्च शिक्षा में बढ़ते निजीकरण, लागत वसूली मॉडल के बढ़ते महत्व और वंचित समुदायों के लिए सरकारी सब्सिडियों में कटौती के संदर्भ में ही देखा जाना चाहिए।

तिलक का कहना है कि निजी संस्थानों को बढ़ावा देने वाले नीतिगत सुधार - जिन्हें भारत में विदेशी विश्वविद्यालयों के प्रवेश को छूट देने वाले कानून, 12वीं पंचवर्षीय योजना (2012-17) के एप्रोच पेपर, निजी संस्थानों के लिए अनुकूल माहौल और नवउदारवादी रूपरेखा से मेल खाने वाले सामान्य नीतिगत रुझान में देखा जा सकता है - 'कल्याणकारी राज्य' से एक ऐसी व्यवस्था की ओर विचलन हैं जो एक हद तक बाजार के सिद्धांतों पर आधारित है और नवउदारवादी बाजार-केंद्रित व्यवस्था की तरफ बढ़ रही है (तिलक, 2012)।

तुकदेव का कहना है कि फॉरेन इंस्टिट्यूशंस एंट्री, ऑपरेशंस ऐंड रेगुलेशन बिल (2010) जो उच्च शिक्षा के स्तर को ऊपर उठाने और प्रतिभा पलायन को रोकने के उद्देश्य से विदेशी विश्वविद्यालयों को भारत में अपने परिसर खोलने की अनुमति देता है, वह असल में एक ऐसी वैश्विक अर्थव्यवस्था की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए माहौल तैयार करता है जिसे लगातार नये कौशलों और ट्रांसनेशनल पूंजी के लिए सुगम वातावरण की ज़रूरत रहती है (2015)। इसे अनिवासी भारतीयों को आकर्षित करने और उच्च शिक्षा के अंतर्राष्ट्रीयकरण के व्यापक सामाजिक-राजनीतिक और वैश्विक आर्थिक संदर्भ में देखा जाना चाहिए (तुकदेव, 2014)। सरकारी फंडिंग में कमी के चलते भारत में उच्च शिक्षा असमान पहुंच और स्तरीय मानक बनाये रखने के लिए उचित मानकों के अभाव से ग्रस्त है। आज ज़रूरत इस बात की है कि केंद्र और राज्य सरकारों, परिवारों और शैक्षिक ऋणों के जरिये पर्याप्त निवेश का बंदोबस्त किया जाए, सामाजिक समता निधियों का गठन किया जाए और गरीब परिवारों के विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा तक पहुंच प्रदान करने के लिए एक सकारात्मक कार्यनीति व माहौल तैयार किया जाए (अग्रवाल, 2006)।

पिछले एक दशक से भी ज़्यादा समय से निजीकरण को लगातार बढ़ावा देने और उच्च शिक्षा में सरकारी निवेश में कटौती के नीतिगत माहौल से जो दरारें पैदा हुई हैं वे महामारी और लॉकडाउन के कारण और ज़्यादा गहरी हो गयी हैं। जेंडर और कोविड-19 पर दलित नजरिये से लिखते हुए पाटिल (2021) का कहना है कि खासतौर से सोशल डिस्टेंसिंग के कायदों ने जाति के सवाल पर भेदभाव भरे तौर-तरीकों को दोबारा पैदा कर दिया है। इससे महिला सफाई कर्मियों और घरेलू कामगारों पर सबसे साफ असर पड़ा है। डिजिटल असमानता को दूर किये बिना ऑनलाइन शिक्षा का विकल्प अपनाने से शिक्षा में जाति आधारित असमानताएं भी और ज़्यादा मजबूत हो गयी हैं क्योंकि दलित विद्यार्थियों के सामने डिजिटल सुविधाओं तक पहुंच की संभावना औरों के मुकाबले कम पायी जायेगी (पाटिल, 2021)। पंजाब और केरल में दो दलित किशोरियों द्वारा आत्महत्या की घटनाओं पर पाटिल (2021) का कहना है कि ये घटनाएं महामारी के दौरान दलित समुदाय के सामने पैदा हो रही कठोर स्थितियों का परिणाम है। आर्थिक रूप से कमज़ोर सभी समुदायों के विद्यार्थियों को इन समस्याओं से जूझना पड़ रहा है। केरल और पंजाब की आत्महत्या करने वाली दोनों लड़कियों के पिता दिहाड़ी मज़दूर हैं और उनके पास ऑनलाइन क्लासेज़ अटेंड करने के लिए आवश्यक स्मार्ट फोन ख़रीदने के पैसे नहीं थे।[23] इस बात पर गौर करना भी ज़रूरी है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति (भारत सरकार, 2020बी) जिससे स्कूल और उच्च शिक्षा पर निश्चय ही गहरा प्रभाव पड़ने वाला है, को भी महामारी के दौरान ही जारी किया गया जबकि उस समय इस पर आपत्ति उठाने या बहस करने का भी कोई अवसर नहीं था। बत्रा (2020ए) का कहना है कि इस नीति में जमीनी हकीकत की विवेचनात्मक समझ का अभाव है और यह असमानताओं को बढ़ाने का कारण भी बन सकती है। उनका कहना है कि इस नीति के माध्यम से राज्य हमारे समाज के कमज़ोर तबकों की ज़िम्मेदारी से पीछे हटने की कोशिश कर रहा है जो समानता, खासतौर से सबके लिए समतापरक शिक्षा सुनिश्चित करने के संवैधानिक उद्देश्य पर कुठाराघात करने के बराबर है (बत्रा, 2020ए)। नए शैक्षिक बंदोबस्त और महामारी के दौरान पेश की गयी एनईपी (2020) के माध्यम से वैधता हासिल कर चुकी डिजिटल लर्निंग के साथ-साथ शैक्षिक प्रक्रियाओं और व्यवस्था में जो बदलाव आ रहे हैं उनसे असमानता की नयी परतें और नये तरह की बेदखलियां पैदा हो रही हैं जिससे कमज़ोर तबके के विद्यार्थियों पर सीधे असर पड़ेंगे।

डिजिटल फासलों को पाटे बिना ऑनलाइन शिक्षा की तरफ बढ़ने से शिक्षा के क्षेत्र में जाति आधारित और आर्थिक असमानताएं और मजबूत हो गई हैं। ऑनलाइन लर्निंग से न केवल उच्च शिक्षा तक पहुंच में बल्कि इस लाभदायक स्थिति को बनाए रखने के लिए भी संपन्न तबकों को मदद मिलेगी।

निजीकरण को बढ़ावा देने वाली नीतिगत व्यवस्था और हाल ही में डिजिटल लर्निंग की दिशा में बढ़ने से पैदा हुई चुनौतियों के बावजूद 2021-22 के केंद्रीय बजट में शिक्षा व्यय में 6% की कमी की गयी है। बजट में उच्च शिक्षा का हिस्सा इस बजट में बीते सालों के मुकाबले और भी कम हो गया है। एनईपी, 2020 में प्रस्तावित हायर एजुकेशन फंडिंग एजेंसी (एचईएफए) के लिए भी शायद पर्याप्त पैसा नहीं होगा। उच्च शिक्षा में असमानताओं का बढ़ना एक ऐसी व्यवस्था का नतीजा है जो न केवल उच्च शिक्षा तक पहुंच के मामले में बल्कि इस लाभ पर पकड़ बनाये रखने के लिए भी दूसरों के मुकाबले 'उच्च' जातियों और अभिजात्य वर्गों का पक्ष लेती है और निजी हितों के साथ मिली हुई है और जबकि राज्य अपनी भूमिका से पीछे हटता जा रहा है (बत्रा एवं अन्य, 2021)। नीचे के भाग में हमने नवउदारवादी एजेंडा पर चर्चा की है जो न केवल हमारी शिक्षा नीतियों में बल्कि उच्च शिक्षा में निजी संस्थानों को दिये जा रहे प्रोत्साहन के रूप में भी साफ दिखायी देने लगा है।

उच्च शिक्षा का कॉमोडिफिकेशन

आज़ादी के बाद के दशकों में भारत के उच्च शिक्षा क्षेत्र का लगातार विस्तार हुआ है। फलस्वरूप, आज उच्च शिक्षा क्षेत्र में 1,043 विश्वविद्यालय, 42,343 कालेज और 11,779 स्वतंत्र संस्थान हैं जिनमें 3.85 करोड़ विद्यार्थी पढ़ते हैं (शिक्षा

[23] https://www.tribuneindia.com/news/punjab/couldnt-take-online-classes-teen-ends-life-96481, https://indianexpress.com/article/education/kerala-dalit-student-kills-herself-parents-say-upset-over-not-being-able-to-attend-online-classes 6439682/

मंत्रालय, 2020)। इस विस्तार प्रक्रिया को निकट से देखने पर पता चलता है कि इसमें निजी क्षेत्र का विस्तार कहीं ज़्यादा तेज़ रहा है। इसका नतीजा ये है कि फिलहाल 38% विश्वविद्यालय और 78% कालेजों का प्रबंधन व संचालन निजी क्षेत्र के हाथों में है। उच्च शिक्षा में हो रहे कुल दाखिलों में से लगभग 66% निजी क्षेत्र के संस्थानों में हो रहे हैं। संरचनागत सुधार नीतियों के अनुसार उच्च शिक्षा क्षेत्र को बाजार की ताकतों के लिए खोल देने के फलस्वरूप (1) उच्च शिक्षा में होने वाले सरकारी व्यय में कमी आयी है, (2) निजी क्षेत्र की मौजूदगी बढ़ी है, (3) फ़ीसों में इज़ाफ़ा हुआ है, और (4) विश्वविद्यालयों को निजी स्रोतों से फंडिंग जुटाने के लिए बाध्य किया जा रहा है चाहे इसकी वजह से संवैधानिक उद्देश्यों और उच्च शिक्षा के लक्ष्यों की अनदेखी ही क्यों न करनी पड़े (दास, 2007)।

उच्च शिक्षा में निजी क्षेत्र के अनियंत्रित फैलाव से उच्च शिक्षा के व्यवसायीकरण और कॉमोडिफ़िकेशन में बेतहाशा तेजी आयी है। इसके साथ ही उच्च शिक्षा का आर्थिक भार भी सार्वजनिक से व्यक्तिगत कंधों पर आ गया है। सार ये है कि उच्च शिक्षा अब एक ख़रीदने-बेचने की वस्तु बन गयी है और ख़रीद पाने की क्षमता उसको प्राप्त करने की कसौटी बन गयी है। राज्य से जो पुनर्वितरणकारी भूमिका निभाने की उम्मीद की जा रही थी, उससे राज्य के पीछे हटते जाने से उच्च शिक्षा समाज के सामाजिक-आर्थिक रूप से हाशियाई तबकों की पहुंच से दूर होती चली गयी है। इस तरह, उच्च शिक्षा की पूरी व्यवस्था आज भी उच्च वर्ग और ऊंची जाति के विद्यार्थियों के पक्ष में दिखायी पड़ती है जिससे वही ऊंच-नीच और अधिक मजबूत हो रही है जिसको खत्म करना इसका बुनियादी मकसद था। कोविड-19 महामारी और उसके बाद ऑनलाइन क्लासेज़ अपनाये जाने से उच्च शिक्षा के क्षेत्र में ये विभाजन रेखाएं और भी ज़्यादा साफ दिखायी देने लगी हैं।

हमारे नतीजों से पता चलता है कि महामारी की वजह से उच्च शिक्षा में जो व्यवधान आये हैं, उनसे निपटने में निजी उच्च शिक्षा संस्थान कहीं ज़्यादा सक्रिय दिखायी दिये। अपने आर्थिक साधनों के बल पर उन्होंने ऑनलाइन टीचिंग व लर्निंग का एक मजबूत डिजिटल इन्फ्रास्ट्रक्चर तैयार करने में निवेश किया है। इस मद में उन्होंने एलएमएस प्लेटफॉर्म, विडियो कॉन्फ्रेंसिंग एप्लीकेशंस के लाइसेंसी संस्करण, ऑनलाइन टीचिंग और परीक्षाओं के लिए अनुकूल टूल्स ख़रीदने में पैसा खर्च किया है। इन संस्थानों के पास या तो पहले से एक समर्पित सूचना प्रौद्योगिकी (आईटी) टीम मौजूद थी या उन्होंने ज़रूरत पैदा होने पर उसका बंदोबस्त कर लिया ताकि फ़ैकल्टी सदस्यों और विद्यार्थियों को ऑनलाइन टीचिंग व लर्निंग के इस नये अनुभवों में मदद मिल सके। उन्हें ऑनलाइन लर्निंग से परिचित कराने के लिए विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम भी आयोजित किये गये।

दूसरी तरफ, आर्थिक संकट से जूझते सरकारी विश्वविद्यालयों को विभिन्न सॉफ्टवेयर और टूल्स के निशुल्क संस्करणों से ही काम चलाना पड़ा जिनमें कई कमियां होती थीं। इन कमियों की वजह से क्लासेज़ में बार-बार बाधा पड़ती थी। ऑनलाइन क्लासेज़ को ज़्यादा से ज़्यादा समावेशी बनाने के लिए सभी संस्थानों ने प्रयास किया कि ऑनलाइन क्लासेज़ को रिकॉर्ड करके मैसेजिंग प्लेटफॉर्म्स के माध्यम से विद्यार्थियों तक पहुंचाया जाए। इस तरह के उपायों से धीमे इंटरनेट कनेक्शन वाले विद्यार्थियों को भी क्लास 'अटेंड' करने में मदद मिली। मगर, इन उपायों पर आश्रित विद्यार्थी क्लास के दौरान होने वाली चर्चा और संवाद में हिस्सा नहीं ले सकते थे। संस्थाओं ने उपकरणों की अनुपलब्धता के सवाल पर कुछ खास नहीं किया जबकि कुछ मामलों में फ़ैकल्टी सदस्यों ने अपनी जेब से पैसा इकट्ठा करके अपने विद्यार्थियों को मदद दी। इस मद में संस्थागत मदद का विकल्प सामने नहीं आया। उच्च शिक्षा पर सरकारी व्यय में कटौती की वजह से क्लासेज़ अटेंड करने के लिए ज़रूरी डिजिटल सुविधाएं जुटाने का ज़िम्मा विद्यार्थियों पर ही आ पड़ा। महामारी के दौरान उच्च शिक्षा हासिल करने के लिए कम्प्यूटर और एक स्थिर, तेज-रफ्तार इंटरनेट कनेक्शन लाजिमी हो गया था जिससे उच्च शिक्षा की लागत में इज़ाफ़ा हुआ है।

कोविड-19 महामारी ने उच्च शिक्षा व्यवस्था में फैली गहरी असमानताओं को बेनकाब कर दिया है और इस क्षेत्र में सरकारी व्यय बढ़ाने की ज़रूरत को सामने ला दिया है। मगर, भारतीय राज्य द्वारा 'छात्र-हित' में किये गये ताज़ा नीतिगत उपायों से निजीकरण को बढ़ावा मिल रहा है और व्यवस्था में मौजूद चुनौतियां बढ़ गयी हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 के जरिये हाल ही में 'ब्लैंडेड लर्निंग' पर जोर दिया गया है जोकि इसी दिशा में एक कदम है। इस नीति में कहा गया है कि ब्लैंडेड यानी मिश्रित पद्धति से विद्यार्थियों को ज़्यादा स्वायत्तता मिलेगी और वे अपनी गति से सीख सकेंगे। यहां फ़ैकल्टी सदस्यों की भूमिका को कोच या मेंटर के रूप में पेश किया गया है (यूजीसी, 2021)। ब्रिटिश उपनिवेशकारों की भांति यूजीसी भी यह प्रस्ताव रखते हुए उच्च शिक्षा संस्थानों को ऐसे युवा तैयार करने वाली फैक्ट्रियों में तब्दील करने जा रहा है जो नवउदारवादी अर्थव्यवस्था की सेवा के लिए 'नौकरी लायक स्नातक' पैदा किया करेंगी। इसका अंदाजा शिक्षा के कॉमोडिफ़िकेशन के बढ़ते दबाव से लगाया जा सकता है जिसमें विद्यार्थियों को ज्ञान के उपभोक्ताओं और अध्यापकों को ज्ञान प्रदाताओं के रूप में देखा जा रहा है। विद्यार्थियों और फैकल्टी को ज्ञान के उपभोक्ता एवं प्रदाता मात्र की भूमिका में

सीमित करके नीति निर्माता समाज का लोकतंत्रीकरण करने और समता एवं सामाजिक न्याय को प्रोत्साहन देने की शिक्षा की बुनियादी प्रस्थापना को ही नज़रअंदाज करते जा रहे हैं (बत्रा, 2020बी; अपूर्वानंद, 2021)।

शिक्षा के बढ़ते कॉमोडिफ़िकेशन से वंचित तबके और ज़्यादा हाशिये पर चले जाएंगे। फौरी ज़रूरत इस बात की है कि उच्च शिक्षा में सरकारी निवेश बढ़ाया जाए ताकि शिक्षा व्यवस्था समतापरक और टिकाऊ परिणाम दे सके।

नीति निर्माताओं ने महामारी के कारण ऑफ़लाइन क्लासेज़ पर लगी रोक का फायदा उठाकर शिक्षा को ऑनलाइन प्लेटफ़ॉर्म्स की ओर ढकेलने का प्रयास किया है। व्यापक आर्थिक सुधारों की बदौलत जाति, वर्ग, जेंडर और इलाकाई असमानताओं को महामारी ने और बढ़ा दिया है। इसके बावजूद नीति निर्माता शिक्षा की नई कल्पना पर पुनर्विचार करने के लिए तैयार नहीं हैं। हमारे देश में डिजिटल विभाजन बहुत गहरा है और मौजूदा सामाजिक-आर्थिक असमानओं से सीधे-सीधे मेल खाता है। अगर महामारी की वजह से ज़रूरी दिखायी दे रही ऑनलाइन क्लासेज़ के बारे में अपनाए जा रहे रवैये कोएक संकेत माना जाए तो यही लगता है कि शिक्षा पर यह नवउदारवादी आग्रह समाज के वंचित तबकों को और ज़्यादा हाशिये पर ढकेल देगा। लिहाज़ा आज हमें इस बात पर जोर देना होगा कि सामाजिक न्याय, लोकतंत्र और समता जैसे संवैधानिक मूल्यों को केंद्र में रखते हुए हम शिक्षा के अर्थ और उद्देश्यों पर गंभीरता से पुनर्विचार करें।

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में निर्णयकारी एवं नीति निर्धारक निकायों के लिए जो सबक मिले हैं वे नीचे दिये गये हैं।

(1) मौजूदा असुरक्षाओं और असमानताओं को संबोधित करने की ज़रूरत : महामारी ने भारत में उच्च शिक्षा व्यवस्था के बेहद असमतापरक और बेदखली आधारित स्वरूप को उजागर कर दिया है। जो विद्यार्थी ऑनलाइन क्लासेज़ अटेंड नहीं कर पाये उनकी भारी संख्या को देखते हुए पता चलता है कि उच्च शिक्षा संस्थानों में बेदखली की चुनौती सिर्फ पहुंच की चुनौती नहीं है बल्कि ये इस बात का सीधा परिणाम है कि उच्च शिक्षा की पूरी संरचना सुविधासंपन्न तबके के हित में केंद्रित दिखायी देती है। डिजिटल लर्निंग के लिए ज़रूरी उपकरण जुटाने की ज़िम्मेदारी विद्यार्थियों पर ढकेलकर संस्थानों ने वंचित समुदायों के ऊपर बोझ और बढ़ा दिया है। इस विसंगति को दूर करने के लिए हमें ऐसी नीतियां और कार्यक्रम तैयार करने होंगे जो ऐसे विद्यार्थियों को आर्थिक सहायता और सब्सिडी प्रदान कर सकें जिनके पास डिजिटल बुनियादी ढांचे तक पहुंच और साधन नहीं हैं। इस महामारी ने समाज के सबसे असुरक्षित विद्यार्थियों को मदद मुहैया कराने की राज्य और शिक्षा संस्थानों की ज़िम्मेदारी को एक बार फिर रेखांकित किया है। इसमें हमें जाति, जेंडर और इलाके के आधार पर पैदा होने वाली असमानताओं को खासतौर से संबोधित करना होगा।

(2) *उच्च शिक्षा में सरकारी व्यय बढ़ाने की ज़रूरत :* महामारी ने शिक्षा के बढ़ते व्यवसायीकरण और कॉमोडिफ़िकेशन के खतरों को सामने ला दिया है। जमीनी हालात को देखते हुए ऑनलाइन टीचिंग-लर्निंग का विकल्प अपनाना ज़रूरी था मगर एक पर्याप्त बुनियादी ढांचा हासिल करने की ज़िम्मेदारी सिर्फ विद्यार्थियों के ऊपर डाल दी गयी जिसके बिना वे क्लासेज़ अटेंड नहीं कर सकते थे। इससे समता व न्याय के संवैधानिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए गंभीर नतीजे पैदा होंगे क्योंकि इससे उच्च शिक्षा की लागत बढ़ जायेगी और समाज के वंचित तबकों के लिए उच्च शिक्षा प्राप्त करना कठिन हो जायेगा। चूंकि राज्य ब्लैंडेड टीचिंग-लर्निंग की ओर बढ़ना चाहता है इसलिए नीति निर्माताओं को ये सुनिश्चत करना चाहिए कि इन बदलावों का बोझ भी नागरिकों पर न डाल दिया जाए। इसका सीधा मतलब ये है कि सरकार उच्च शिक्षा पर अपना खर्चा बढ़ाए। दूसरी तरफ, निजी संस्थाओं के लिए इसका मतलब ये है कि वे शिक्षा को मुनाफ़ा अर्जित करने के साधन के रूप में न देखें (सर्वोच्च न्यायालय के आदेश में व्यक्त भावना)[24] बल्कि समावेशी शिक्षा और विविधता के लक्ष्य को अनिवार्य और प्रासंगिक लक्ष्य के रूप में देखें।

---

[24] सर्वोच्च न्यायालय के आदेश में कहा गया है कि "कोई कैपिटेशन फ़ीस या मुनाफ़ाखोरी नहीं होनी चाहिए;" तथा 'संविधान के सभी अनुच्छेदों में "शिक्षा" का आशय सभी स्तरों की शिक्षा से है जिसमें प्राथमिक शिक्षा से लेकर स्नातकोत्तर तक की शिक्षा शामिल है तथा "शैक्षिक संस्थान" में ऐसे सभी संस्थान शामिल हैं जो संविधान की भावना के अनुसार शिक्षा प्रदान कर रहे हैं' (पैरा 43)। 'पाई फाउंडेशन और इनामदार ने शिक्षा के व्यवसायीकरण को स्पष्ट रूप से खारिज किया है' (पैरा 142)।

(3) मानसिक स्वास्थ्य पर ध्यान देने की ज़रूरत : लंबे समय तक घर की चारदीवारी में बंद रहने, दिन रात केवल परिजनों के बीच रहने, और यार-दोस्तों से किसी तरह का संपर्क न रहने से विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य पर गहरा असर पड़ा है। फ़ैकल्टी सदस्यों के लिए भी ऑनलाइन टीचिंग की वजह से काम के घंटे बहुत ज़्यादा बढ़ गये हैं। एक घर के भीतर कैद हो जाने और आइसोलेशन में रहने से मानसिक समस्याओं में निश्चय ही इज़ाफ़ा हुआ है और इस तरह की समस्याओं से जूझ रहे लोगों के प्रति हिकारत का नज़रिया समस्या को और गंभीर बना देता है। ज़ाहिर है कि मानसिक स्वास्थ्य पर ध्यान न देने और जागरूकता की कमी से भावनात्मक खुशहाली के मुद्दों को संबोधित करना और भी ज़्यादा मुश्किल हो जाता है। महामारी की वजह से पैदा हुई स्थितियों के चलते लोगों को जिन भावनात्मक तनावों का सामना करना पड़ रहा है, उन पर ध्यान देने की बात कहीं-कहीं सुनाई देने लगी है। मगर, हमारी कोशिशें सिर्फ फौरी संकट को संबोधित करने तक सीमित नहीं रहनी चाहिए बल्कि हमें स्वजाग्रति तथा तनाव से उबरने के मॉड्यूल्स तैयार करके पूर्वाग्रहों और जागरूकता की कमी को दूर करना चाहिए। लिहाज़ा ये लाजिमी हो जाता है कि संस्थागत प्रतिक्रियाओं के माध्यम से मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में पैदा हो रही समस्याओं को पेशेवर ढंग से संबोधित किया जाए वर्ना ये न केवल अकादमिक प्रगति को बल्कि रोज़मर्रा चुनौतियों से निपटने की हमारी क्षमता को भी प्रभावित कर सकती हैं। शिक्षा विभागों के माध्यम से सरकार को उच्च शिक्षा संस्थानों में पेशेवर नैतिकता के उच्चतम मानकों का पालन करते हुए इन-हाउस काउंसलिंग सेवाओं के दिशानिर्देश तय करने चाहिए और ये हस्तक्षेप केवल मौजूदा संकट तक ही सीमित न हो।

स्रोत : भारत का सर्वोच्च न्यायालय (2012) सोसाइटी फॉर अनएडेड प्राइवेट स्कूल्स ऑफ राजस्थान बनाम रिस्पॉन्डेंट : यूनियन ऑफ इंडिया (यूओआई) एवं अन्य, MANU/SC/0311/2012.

उच्च्च शिक्षा

इस शोध में बेंगलुरू के उच्च्च शिक्षा संस्थानों में कोविड-19 से विद्यार्थियों, शोधार्थियों और फ़ैकल्टी सदस्यों पर पड़े अलग-अलग प्रभावों को समझने का प्रयास किया गया है।

पहुंच

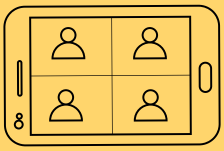

ऑनलाइन क्लासेज़ अटेंड करने की ज़िम्मेदारी केवल विद्यार्थियों के ऊपर थी जिससे उनके लिए उच्च शिक्षा का खर्चा और बढ़ गया है। ऐसे में समाज के वंचित तबकों, हाशियाई समुदायों और दूरदराज के इलाकों में रहने वाले विद्यार्थियों के लिए शिक्षा की संभावनाएं और क्षीण हो गयी हैं।

साधनसंपन्न निजी संस्थानों ने ऑनलाइन क्लासेज़ की ओर संक्रमण को सहज बनाने के लिए विभिन्न प्रकार के डिजिटल प्लेटफार्म्स का सहारा लिया जबकि सरकारी संस्थान इस तरह के प्रयास नहीं कर पाए जिसकी वजह से बहुत सारे विद्यार्थी लर्निंग प्रक्रिया से बाहर छूटते चले गये।

टीचिंग एवं लर्निंग

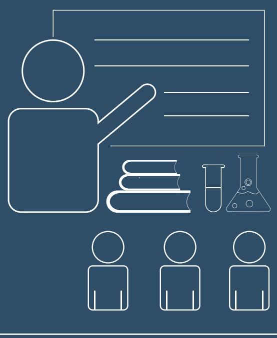

डिजिटल लर्निंग की वजह से क्लास के भीतर होने वाली सहभागिता में गिरावट आयी और फ़ैकल्टी विद्यार्थियों की लगन व उत्साह पर भी असर पड़ा।

प्रयोगशालाओं और पुस्तकालयों के बंद होने तथा फ़ील्डवर्क रद्द होने से शोध एवं व्यवहार आधारित लर्निंग पर भारी प्रभाव पड़ा है।

स्वास्थ्य

लंबे समय तक घर पर रहने के आदेशों तथा ऑनलाइन क्लासेज़ अटेंड करने में पेश आने वाली रुकावटों से विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य पर असर पड़ रहा है।

घर पर रहने की वजह से घर के कामों और परिजनों की देखभाल का ज़िम्मा अधिकांशतः महिलाओं पर आ गया है जिससे उनकी उत्पादकता पर असर पड़ा है। कई छात्राओं पर शादी का दबाव पड़ने लगा जिसके चलते उन्हें पढ़ाई छोड़नी पड़ी।

सामाजिक बेदखली एवं उच्च्च शिक्षा का कॉमोडिफ़िकेशन

उच्च्च शिक्षा में बेदखली की समस्या केवल भौतिक एवं डिजिटल पहुंच की समस्या नहीं है। दरअसल उच्च्च शिक्षा की पूरी संरचना ही संपन्न तबकों के पक्ष में झुकी दिखायी देती है।

उच्च्च शिक्षा को सामाजिक एवं आर्थिक रूप से वंचित तबकों की पहुंच में लाने के लिए सरकारी व्यय बढ़ाना होगा। डिजिटल लर्निंग का आर्थिक भार विद्यार्थियों पर न पड़े, इसके लिए भी सरकार को अपना व्यय बढ़ाना होगा।

महामारी के दौरान लंबे समय तक अलगाव में रहने की वजह से जो भावनात्मक कठिनाइयां पैदा हुई हैं, उनको संबोधित करना जरूरी है। ये हस्तक्षेप डिजिटल लर्निंग के लिए आवश्यक तकनीकी सुविधाओं से कहीं ज़्यादा व्यापक होने चाहिए।

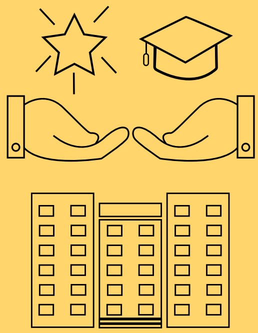

त्रिची : आजीविका

त्रिची[25] तमिलनाडु का एक श्रेणी-II शहर है। शहर के आकार और सामाजिक-आर्थिक विशिष्टताओं को देखते हुए इस अध्ययन के लिए यह एक बिलकुल उपयुक्त चुनाव था। क्योंकि भारत के 80: गरीब दस लाख से कम आबादी वाले शहरों में रहते हैं (रेवी एवं अन्य, 2011)। अपनी 8,47,387 आबादी और 91: साक्षरता (जनगणना 2011) के बल पर त्रिची इस शोध के लिए बिलकुल उपयुक्त शहर दिखायी पड़ता है। इस शहर का शासन त्रिची नगर निगम (टीसीसी) के पास है। यह जिले का मुख्यालय भी है। इस जिले के तहत चार रेवेन्यू डिवीजन और ग्यारह ताल्लुके आते हैं (सीडीपी, तारीख नहीं)। राज्य के बीचों-बीच स्थित त्रिची, परिवहन एवं सेवा, व्यापार एवं वाणिज्य गतिविधियों का एक अहम केंद्र है (उपरोक्त)। यह एक समृद्ध सांस्कृतिक विरासत वाला शहर है। यहां बहुत सारे मंदिर और ऐतिहासिक स्मारक मौजूद हैं (तिरुचिरापल्ली सिटी म्युनिसिपल कारपोरेशन, 2021; राज्य योजना आयोग, 2017)। पिछले एक दशक के दौरान ये शहर इंजीनियरिंग और मैनेजमेंट की उच्च शिक्षा का भी एक बड़ा केंद्र बन गया है (सीडीपी, तारीख नहीं)।

रोज़गार की तलाश में बहुत सारे भूमिहीन खेत मज़दूर, निर्माण मज़दूर और घरेलू कामगार त्रिची आते हैं। ये ठेके या दिहाड़ी पर भी काम करते हैं और प्रायः शहर के भीतर ही अस्थायी रूप से रहते हैं (उपरोक्त)। शहर के कृषि एवं शिक्षा बाजार में सहायक सेवाएं मुहैया कराने के लिए बाल काटने वाले, इस्तरी करने वाले, दर्जी, कैब और ऑटो ड्राइवर, हम्माल[26] और सब्जियों की छंटाई करने वाले भी बड़ी संख्या में यहां आते हैं। अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में काम करने वाले ज़्यादातर मज़दूर शहर की झुग्गी-बस्तियों में रहते हैं जहां साफ हवा और रौशनी की व्यवस्था तक नहीं होती, नालियां अकसर गंदगी से अंटी रहती हैं और पीने का साफ पानी व शौचालय भी आसानी से उपलब्ध नहीं होते (सीडीपी, तारीख नहीं)। 2001 में इस नगर निगम के तहत 1.62 लाख लोग झुग्गी बस्तियों में रहते थे (जनगणना 2011) जोकि शहर की आबादी का 11.42% बैठता था। स्लम्स में रहने वालों का शहर की श्रम-शक्ति में हिस्सा 34.87% है और उनमें से लगभग 92.12% सेवा क्षेत्र में अनौपचारिक मज़दूर हैं (सीडीपी, तारीख नहीं)। शहर के शेष भागों में काम करने वाले मज़दूर अधिकांशतः स्वरोज़गार में संलग्न हैं (जैसे, फेरीवाले, छोटे दुकानदार, हॉकर) या घरों में काम करते हैं (राज्य योजना आयोग, 2017)। चाहे स्लम्स में हों या अल्प आय बस्तियों में हों, शहरी गरीबों के सामने पर्याप्त आवास, खाद्य सुरक्षा और कर्ज़ों का बोझ हमेशा बना रहता है।

अस्थायी आवास एक आम समस्या है। शहरी गरीबों को मकानों के ऊंचे भाड़े देने पड़ते हैं। इसके बावजूद उनको अच्छे मकान नहीं मिलते। कई बार उनकी बस्तियां ढहा दी जाती हैं या उन्हें पलायन करना पड़ता है और वे सड़क पर आ जाते हैं। उनके कच्चे घर बाढ़ और तूफान जैसे प्राकृतिक खतरों की आशंका में रहते हैं। घटिया आवास की वजह से गरीबी के चक्र से निकलने और एक सम्मानजनक जीवन की ओर बढ़ने की संभावना भी कुंद हो जाती है (आनंद एवं अन्य 2014)। सार्वजनिक वितरण व्यवस्था (पीडीएस) के तहत राशन कार्ड दिखाने पर उचित दर दुकानों (फेयर प्राइस शॉप्स - एफपीएस) से रियायती दरों पर अनाज मिलता है जोकि सीमित आमदनी वाले शहरी गरीबों के लिए भोजन का एक महत्वपूर्ण स्रोत होता है। शहरी गरीब एक अस्थिर ऋण व्यवस्था की चपेट में भी रहते हैं जिसके तहत उन्हें परिवार, परिचितों, सूदखोरों और सूक्ष्म वित्त संस्थानों से कर्ज लेना पड़ता है। उन्हें अपनी शैक्षिक आवश्यकताओं और निजी ज़रूरतों (विद्युत उपकरण, वाहन आदि) के लिए अक्सर कर्ज़े लेने पड़ते हैं। शहरी गरीबों की कई स्वास्थ्य समस्याएं कुपोषण, गंदे पानी, स्वच्छता सुविधाओं की कमी (चित्र 8), एनीमिया की ऊंची दर और मलेरिया व डेंगू जैसी बीमारियों की वजह से पैदा होती हैं (आनंद एवं अन्य, 2014)। शहरी गरीब भी सरकारी स्वास्थ्य संस्थानों के बजाय निजी स्वास्थ्य संस्थानों में जाना ज़्यादा पसंद करते हैं क्योंकि सरकारी स्वास्थ्य सुविधाएं संख्या के लिहाज़ से कम हैं और वहां या तो साधन नहीं होते या वे नियमित रूप से नहीं खुलतीं। इसकी वजह से शहरी गरीबों पर निजी संस्थानों में महंगा इलाज कराने से भारी बोझ पड़ जाता है। उनके सामने निशुल्क शिक्षा अधिकार कानून के तहत मिलने वाली निशुल्क प्रारंभिक शिक्षा[27] पाने की और उच्च शिक्षा तक पहुंचने की संभावना भी कम होती है। इससे समाज में उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति और ज़्यादा प्रभावित होती है (उपरोक्त)।

[25] त्रिची को तिरूचिरापल्ली भी कहा जाता है। इस रिपोर्ट में हमने त्रिची शब्द का ही प्रयोग किया है।

[26] लोडमैन/हम्माल वह होता है जो त्रिची शहर के बाजारों में कृषि उपज की ढुलाई और परिवहन में मदद देता है।

[27] इसके लिए सरकारी स्कूलों में खराब बुनियादी ढांचे और शिक्षा की कथित घटिया स्थिति को ज़िम्मेदार माना जा सकता है।

अध्ययन के उद्देश्य और शोध प्रक्रिया

कोविड-19 महामारी के दौरान अनौपचारिक क्षेत्र मज़दूरों के अनुभवों को समझना इस शोध का बुनियादी मकसद था। हम जानना चाहते थे कि अपनी भौतिक और आर्थिक असुरक्षाओं के बीच इन लोगों ने लॉकडाउन का सामना किस तरह किया? सरकारी और गैर-सरकारी निकायों ने स्वास्थ्य एवं आर्थिक संकट के प्रभावों पर अंकुश लगाने के लिए क्या कदम उठाए? इन सवालों को ज़ेहन में रखते हुए प्रस्तुत शोध में त्रिची शहर के अनौपचारिक मज़दूरों के अनुभवों को दर्ज किया गया है। उनके आजीविका, स्वास्थ्य एवं शिक्षा संबंधी अनुभवों को इकट्ठा किया गया। हम जानना चाहते थे कि रोज़गार और आय की दृष्टि से उनकी आजीविका किस तरह प्रभावित हुई है और इस दौरान उन्होंने किस तरह हालात का सामना किया और उन्हें सरकार और/या गैर-सरकारी स्रोतों से किस तरह की सहायता मिली (या नहीं मिली)? इन सवालों के आधार पर आगे बढ़ते हुए हमें पता चला कि उन्हें किन चीज़ों से लाभ हुआ है और वे किन-किन संरचनात्मक खामियों से जूझ रहे हैं। कोविड-19 महामारी एक स्वास्थ्य संकट है इसलिए हमें इस अवधि के दौरान उनके मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य पर भी ध्यान दिया है। शिक्षा संस्थानों के बंद होने की वजह से ऑनलाइन लर्निंग पर ज़ोर दिये जाने के फलस्वरूप इस बात को समझना ज़रूरी था कि इन समुदायों के विद्यार्थियों और माता-पिता ने इस नये शैक्षिक माहौल के हिसाब से खुद को कैसे ढाला है।

इस अध्ययन के लिए प्राइमरी डेटा सितंबर से अक्टूबर 2020 के बीच इकट्ठा किया गया। इसके लिए, चुने गये अनौपचारिक मज़दूरों के सेमी-स्ट्रक्चर्ड साक्षात्कार लिये गये और गैर-सरकारी व्यक्तियों के साथ ऑनलाइन पैनल चर्चाओं का आयोजन भी किया गया। सेकेंडरी डेटा मार्केट स्कैन के जरिये इकट्ठा किया गया जिससे स्थिति को समझने में मदद मिली। शोध सहभागियों तक पहुंचने के लिए शहर के हाशियाई समुदायों के बीच काम कर रही एक संस्था के माध्यम से संपर्क किया गया। शुरुआती एपॉइंटमेंट तय करने के बाद शोधार्थी ने संपर्क व्यक्ति की उपस्थिति में या उनकी अनुपस्थिति में मज़दूरों के साक्षात्कार लिये। ज़्यादातर साक्षात्कार सहभागियों के घर या कार्यस्थल पर लिये गये। ये साक्षात्कार ऑनलाइन नहीं लिये जा सके क्योंकि उनके पास ज़रूरी तकनीक और उसके इस्तेमाल का अनुभव ज़्यादा था। प्रत्येक साक्षात्कार 20-45 मिनट का रहा। ये साक्षात्कार सहभागियों की सुविधा के समय पर लिये गये जिससे उनके काम-धंधे में किसी तरह का व्यवधान न आए। मास्क पहनने और सोशल डिस्टेंसिंग जैसे कोविड-19 स्वास्थ्य नियमों का पालन किया गया। व्यापक शोध प्रश्नों के आधार पर सेमी-स्ट्रक्चर्ड इंटरव्यू गाइडलाइंस तय की गयीं। सेमी-स्ट्रक्चर्ड साक्षात्कार से शोधार्थियों को और सहभागियों को खुलकर बात करने और कई मुद्दों को कवर करने में मदद मिली। उत्तरदाताओं ने तमिल में बात की। साक्षात्कारों को ऑडियो रिकॉर्ड किया गया। तत्पश्चात उनको ट्रांस्क्राइब तथा अंग्रेजी में अनुवाद किया गया। इनके ट्रांस्क्रिप्टस[28] NVivo में कोडेड थे जोकि फाइलिंग सिस्टम के रूप में एक उपयोगी सॉफ्टवेयर है। कोड्स आगमनिक (इंडक्टिव) थे और डेटा से ही निकले थे। ये मोटे तौर पर आजीविका, स्वास्थय और शिक्षा पर केंद्रित थे।

चित्र 7 : निर्माण मज़दूर।

[28] सहभागियों को ट्रांस्क्रिप्ट्स में काल्पनिक नाम दिये गये थे और शोध की नैतिकता का पालन करते हुए इस रिपोर्ट में भी उनके असली नामों का प्रयोग नहीं किया गया है।

चित्र 8 : एक गरीब बस्ती में पानी भरती महिला।

अध्ययन के लिए 48 उत्तरदाताओं को चुना गया जिनमें गैर-सरकारी व्यक्ति, बच्चे और विभिन्न किस्म के अनौपचारिक मज़दूर भी शामिल थे। अनौपचारिक मजदूरों को दो मोटी श्रेणियों में रखा जा सकता है : (1) स्वरोज़गार मज़दूर - ऐसे लोग जो व्यक्तिगत रूप से या साझेदारी में अपना काम या व्यवसाय करते थे; (2) तनख़्वाह पर काम करने वाले मज़दूर - ऐसे मज़दूर जो किसी मालिक या ठेकेदार के लिए तनख़्वाह पर काम करते हैं। ये तनख़्वाहभोगी मज़दूर मासिक तनख़्वाह वाले मज़दूर भी हो सकते हैं और उनमें दिहाड़ी या साप्ताहिक तनख़्वाह पाने वाले मज़दूर भी हो सकते हैं (एनएसओ, 2020; सेनगुप्ता एवं अन्य, 2007)। नमूने की श्रेणियां त्रिची शहर के लिए शोध के उद्देश्य और अनुकूलता को ध्यान में रखते हुए चुनी गयी थीं। नमूने का ब्यौरा टेबल 7 में दिया गया है।

(1) दिहाड़ी मज़दूरी पाने वाले			
काम का स्वरूप	**पुरुष**	**महिलाएं**	**कुल**
नलसाज़/प्लम्बर	2		2
इलेक्ट्रीशियन	2		2
बढ़ई/कारपेंटर	2		2
सब्ज़ी की छंटाई करने वाले	1	1	2
सफाई कर्मी[29]	2		2
हम्माल/लोडमैन	2		2
निर्माण मज़दूर[30]	1	1	2
कुल	**12**	**2**	**14**
(2) स्वरोज़गारी मज़दूर			
काम का स्वरूप	**पुरुष**	**महिलाएं**	**कुल**
फेरी वाले		3	3
बैंड पार्टी मालिक	1		1
दर्जी		2	2
ऑटो ड्राइवर		2	2
कैब ड्राइवर	1		1
सफाई कर्मी		1	1
बाल काटने वाले	2		2
फोटोग्राफर	1		1
धोबी	2		2
व्यवसाय मालिक		1	1
मेडिकल शॉप	1		1
कुल	**8**	**9**	**17**
(3) महावार तनख़्वाह पाने वाले			
काम का स्वरूप	**पुरुष**	**महिलाएं**	**कुल**
घरेलू कामगार		4	4
प्राइवेट कंपनी में मज़दूर		1	1
सफाई कर्मी		1	1
परचून की दुकान पर काम करने वाले		2	2
कुल	**0**	**8**	**8**
(4) अन्य			
काम का स्वरूप	**पुरुष**	**महिलाएं**	**कुल**
बच्चे		6	6
गैर-सरकारी व्यक्ति	1	2	3
कुल	1	8	9
नमूने का कुल आकार	**21**	**27**	**48**

टेबल 3 : सैम्पल साइज़ का ब्यौरा

[29] सफाई कामगारों को तीन श्रेणियों में बांटा जाता है : स्वरोज़गार करने वाले, दिहाड़ी और मासिक तनख़्वाह पाने वाले।

[30] निर्माण मज़दूर साप्ताहिक तनख़्वाह पाने वाले मज़दूर होते हैं।

महामारी के दौरान गैर-सरकारी स्रोतों द्वारा (1) प्रवासी मज़दूरों, तथा (2) एलजीबीटीक्यूआईए+ कम्युनिटी (लेस्बियन, गे, बाईसेक्शुअल, ट्रांसजेंडर, क्वियर, और इंटरसेक्स) के लिए राहत सुविधाएं मुहैया करायी गयी। राहत पर चर्चा करने के लिए दो ऑनलाइन पैनल चर्चाएं आयोजित की गयीं। इस पैनल चर्चा में विभिन्न गैर-सरकारी संगठनों तथा नागर समाज संगठनों (स्ट्रेंडेड वर्कर्स एक्शन नेटवर्क (स्वान)/ गुड़गांव नागरिक एकता मंच (जीएनईएम), आजीविका ब्यूरो, पारस इंडिया, वर्किंग पीपुल्स चार्टर, सेफो फॉर इक्वेलिटी, नज़रिया तथा दि लाइफ ऑफ सांइंसेज़) के कार्यकर्ताओं और वॉलंटियर्स ने हिस्सा लिया। सहभागियों ने राहत कार्य के साथ-साथ महामारी के दौरान सामने आयी विभिन्न संस्थागत एवं संरचनात्मक विफलताओं पर चर्चा की। अध्ययन के दौरान सरकारी स्रोतों, गैर-सरकारी संगठनों, नागरिक समाज संगठनों और शैक्षिक संस्थानों से विभिन्न प्रकार की रिपोर्ट्स, लेख, केस स्टडीज और रैपिड असेसमेंट स्टडीज के रूप में आजीविका और स्वास्थ्य पर सेकेंडरी डेटा भी इकट्ठा किया गया। इस सेकेंडरी डेटा से साक्ष्यों की जांच करने और अन्य संदर्भों से मिले नतीजों की पुष्टि करने में मदद मिली।

नतीजे

अध्ययन के नतीजों पर नीचे दो भागों में चर्चा की गयी है। पहले भाग में लोगों की आजीविका पर लॉकडाउन और महामारी के प्रभावों का विश्लेषण किया गया है। उनकी जिंदगियों, उनके मानसिक स्वास्थ्य और उनके बच्चों की शिक्षा पर किस तरह के असर पड़े हैं? इस पर भी चर्चा की गयी है कि लोगों ने महामारी का मुकाबला करने के लिए किस-किस तरह के कदम उठाए और सरकारी व गैर-सरकारी स्रोतों की प्रतिक्रियाएं क्या रही हैं। दूसरे भाग में इस पर चर्चा की गयी है कि जब लॉकडाउन की पाबंदियों में ढील दी जाने लगी तो लोगों ने अपनी जिंदगियों को नये सिरे से शुरू करने और अपने बच्चों की शिक्षा को पटरी पर लाने के लिए किस तरह के कदम उठाए हैं।

लॉकडाउन का फौरी असर

महामारी ने अनौपचारिक क्षेत्र मज़दूरों के जीवन और आजीविका के अस्थिर और नाजुक स्वरूप को सामने ला दिया है। तनख़्वाहभोगी मज़दूर (मासिक या दिहाड़ी) और स्वरोज़गारी मज़दूरों (जैसे निर्माण मज़दूर, घरेलू कामगार, ऑटो ड्राइवर, बाल काटने वाले) के काम का स्वरूप ऐसा होता है जिसके लिए उन्हें अपने कार्यस्थल (निर्माण स्थल, मालिकों के घर, स्कूल, सैलून आदि) पर जाना पड़ता है और निश्चित शारीरिक श्रम (निर्माण कार्य, खाना पकाना, घर साफ करना, ड्राइविंग, कटिंग और शेविंग आदि) करना पड़ता है। तनख़्वाहभोगी मज़दूर के तौर पर उनके पास ऐसा कानूनी कार्य अनुबंध नहीं होता जिससे उन्हें काम या आमदनी की गारंटी मिलती हो और उसके सहारे वे बुरे वक्त में अपना गुज़ारा चला सकें। चूंकि उन्हें अपनी आजीविका के लिए 'कार्यस्थल' पर जाना पड़ता है इसलिए उनके पास घर बैठकर या ऑनलाइन काम करने की सुविधा नहीं होती। महामारी के संक्रामक स्वरूप को देखते हुए ज़्यादातर कार्यस्थल बंद कर दिये गये थे और लोगों को वायरस के प्रसार को रोकने के लिए घर पर ही बंद रहना पड़ा। स्कूलों और कमर्शियल ट्रिप्स के लिए टैक्सी चलाने वाले एलेक्स ने कहा कि *"हर चीज़ पर लॉकडाउन था। हम कहीं नहीं जा सकते थे। इसलिए स्कूल की ट्रिप या दूसरी ट्रिप्स भी नहीं ले पाए।"* जन साहस (2020बी) का कहना है कि 92.5% निर्माण मज़दूरों[31] की नौकरी लॉकडाउन के शुरुआती दिनों में जा चुकी थी।

लॉकडाउन के दौरान लगी पाबंदियों के अलावा खुद वायरस के डर ने भी लोगों की आजीविका को प्रभावित किया। घरेलू कामगार जैसे उन लोगों पर सबसे प्रत्यक्ष असर पड़ा जिन्हें लोगों के सीधे संपर्क में आना होता था। एक घर में नौकरी करने वाली राम्या को उनके मालिकों ने काम पर आने से मना कर दिया था।

शुरुआत में तीन अलग-अलग मालिकों ने मुझे कहा कि मैं आना बंद कर दूं। उन्होंने कहा जब लॉकडाउन बंद हो जाए तब तक मुझे आने की ज़रूरत नहीं है। दो घरों में अभी भी काम कर रही थी मगर 10-15 दिनों बाद उन्होंने भी मुझे काम पर आने से मना कर दिया। उन्होंने कहा कि जब सब कुछ सामान्य हो जाए तभी आना।

काम न कर पाने से लोगों की पूरी आमदनी खत्म हो चुकी थी। प्रवासी निर्माण मज़दूर अपनी मज़दूरी भी लेने नहीं जा पाए क्योंकि उनके कार्यस्थल बंद कर दिये गये थे। मार्च 2020 के तीसरे हफ्ते में जब साप्ताहिक भुगतान का समय आया

[31] इस अध्ययन में मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश के 3196 निर्माण मज़दूर लिये गये थे।

तो बहुत सारे मज़दूर अपनी तनख़्वाह लेने भी नहीं जा पाए। जब लॉकडाउन का ऐलान हुआ उस समय बहुत सारे मज़दूरों के पास 300 रुपये तक भी नहीं बचे थे (स्वान, 2020ए)। महामारी और लॉकडाउन की वजह से ये लोग और भी ज़्यादा नाज़ुक हालात में फंस गये क्योंकि उनके पास किसी तरह की सामाजिक सुरक्षा भी नहीं थी। यह 'बड़े पैमाने की अनिश्चितता' एक बाहरी झटके का परिणाम है जिसने उनकी *आर्थिक असुरक्षा* को बेइंतिहा बढ़ा दिया था (बत्रा एवं अन्य, 2021)।

महामारी ने अनौपचारिक क्षेत्र मज़दूरों की आर्थिक असुरक्षा को सामने ला दिया है। उनकी आजीविका असुरक्षित है, तनख़्वाहें कम हैं और वे सुरक्षा साधनों के बिना कठोर शारीरिक श्रम करते हैं।

फोटोग्राफर का काम करने वाले राजू ने बताया कि आमदनी खत्म होने पर उनके लिए खर्चा चलाना भी मुश्किल हो गया था।

ये बहुत नाज़ुक वक़्त था। हमें घर का, दफ़्तर का भाड़ा भी चुकाना था और अपने कर्मचारियों की तनख़्वाह भी देनी थी। सभी के लिए मुश्किल हालात थे। दूसरी बात, सब कुछ बंद था इसलिए किसी तरह के कार्यक्रम भी नहीं हो रहे थे। अपने मासिक खर्चे के लिए और भाड़ा चुकाने के लिए भी हमें हर महीने पंद्रह हज़ार रुपये महावार की ज़रूरत थी। और ये रकम भी हमारे पास नहीं थी।

स्वरोज़गार में लगे या दिहाड़ी मज़दूरी करने वाले बहुत सारे लोगों के लिए आवासीय या व्यावसायिक किराया चुकाना एक बहुत बड़ी समस्या थी। पेंटर और इलक्ट्रीशियन का काम करने वाले मुरुगन पर 9,000 रुपये का किराया बकाया था जिसे उनके मकान मालिक ने बिना बताए सिक्योरिटी डिपॉज़िट में से काट लिया।

मैंने तीन महीने का किराया नहीं दिया है इसलिए उसने सिक्योरिटी डिपॉज़िट में से पैसा काट लिया। मैंने उसे 12,000 रुपये सिक्योरिटी डिपॉज़िट दिया हुआ था। उसने मुझसे पूछा भी नहीं कि उसे डिपॉज़िट में से पैसा काटना चाहिए या नहीं। उसने बस यही बताया कि "मैंने डिपॉज़िट में से पैसा काट लिया है।"

तमिलनाडु सरकार ने आदेश जारी किया था कि लॉकडाउन के दौरान ऐसे किरायेदारों से एक महीने का किराया न लिया जाए जो दिहाड़ी कामगार, मज़दूर और विद्यार्थी हैं (तमिलनाडु सरकार, 2020बी)। इसके बावजूद मुरुगन जैसे किरायेदारों को बताए बिना उनके सिक्योरिटी डिपॉज़िट में से पैसा काट लिया गया। ज़ाहिर है कि यह सरकार के आदेश का स्पष्ट उल्लंघन था। दिल्ली, मोहाली और मध्य प्रदेश व उत्तर प्रदेश के बहुत सारे शहरों में रहने वाले प्रवासी मज़दूरों को उनके मकान मालिकों ने जबरन घरों से निकाल दिया था क्योंकि वे किराया अदा नहीं कर पा रहे थे (जन साहस, 2020बी; एमडब्ल्यूएसएन, 2020)। इसकी वजह से एक बहुत नाज़ुक स्थिति पैदा हो गई थी। जहां एक तरफ किरायेदारों को भाड़ा अदा करने में परेशानी हो रही थी वहीं दूसरी तरफ बहुत सारे छोटे मकान मालिक भी बहुत मुश्किल हालात से गुज़र रहे थे क्योंकि उनके लिये मकान के किराये से आने वाली आमदनी ही प्रमुख और बहुधा एकमात्र आमदनी थी। ऐसे हालात में मकान मालिक और किरायेदार सभी नाज़ुक स्थिति में फंसे दिखायी पड़ते हैं। किराया वसूली को रोकने के लिए आए आदेश ने मकान मालिकों की मुश्किलें बढ़ा दी थीं। इस आदेश ने एक किस्म के गरीबों (किरायेदारों) को राहत देने के लिए दूसरी श्रेणी (मकान मालिक) के बहुत सारे लोगों को संकट में ढकेल दिया था। हम्माल का काम करने वाले राकेश ने बताया कि उनकी मकान मालकिन ने किराया मांगने के लिए क्या किया :

मेरी मकान मालकिन बूढ़ी औरत है। हर महीने वो पांच तारीख को किराया लेती थी। इस बार वो एक तारीख को ही आकर कहने लगी कि "मेरे पास दवाई ख़रीदने के लिए पैसा नहीं है। तुम किराया दे दोगे तो अच्छा रहेगा!" वह इस तरह कभी किराया नहीं मांगती। मगर उस महीने की पहली तारीख को वो खुद चलकर मेरे पास आयी और पेशगी किराया अदा करने के लिए कहने लगी।

राकेश ने बताया कि इन हालात में भी वह *"किराया बकाया नहीं रखना चाहता था भले ही इसकी वजह से खाने में कटौती हो जाती।"* कई लोगों को भोजन और आवास जैसी बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करने में बहुत मशक्कत करनी

पड़ी। इससे पता चलता है कि गरीब समुदायों के लिए सामाजिक सुरक्षा का अभाव कितना गहरा था। अज़ीम प्रेमजी युनिवर्सिटी द्वारा अप्रैल-मई 2020 में किये गये एक अध्ययन से पता चला कि उत्तरदाताओं ने किराये की अदायगी को एक आम समस्या बताया;[32] 89% शहरी परिवारों का कहना था कि वे अगले महीने का किराया नहीं चुका पाएंगे और लगभग 41% शहरी परिवारों ने बताया कि उन्हें अपने रोज़मर्रा खर्चे निपटाने के लिए भी कर्जे लेने पड़े (ऐपीयू, 2020)। सरकारी आदेशों के बावजूद बहुत सारे लोगों को लॉकडाउन के दौरान भी किराया चुकाना पड़ा। सर से छत छिन जाने की आशंका ने लोगों को और ज़्यादा संकट में ढकेल दिया था।

त्रिची और तमिलनाडु में लॉकडाउन तो दो महीने रहा मगर किराया वसूली पर रोक का आदेश सिर्फ एक महीने का था। मकानों के किराये की अदायगी के विषय में सरकारी आदेशों की कमज़ोरी दिल्ली और सिक्किम में भी अनौपचारिक क्षेत्र मज़दूरों के लिए एक परेशानी थी (भान एवं अन्य, 2020)। किराया वसूली पर रोक की कम अवधि के अलावा सरकारी आदेश में उन लोगों के नुकसान की भरपाई का इंतजाम भी नहीं किया गया था जिनकी मुख्य आमदनी किरायेदारों पर ही आश्रित थी। कुल मिलाकर सरकारी आदेश का क्रियान्वयन कमज़ोर ही रहा। किराया वसूली पर रोक के आदेश की खामियों से हाशियाई समुदायों को स्तरीय और सस्ते आवास मुहैया कराने की मुश्किलों में और इज़ाफ़ा हुआ। महामारी ने हाशियाई समुदायों के सामने *भौतिक असुरक्षाओं* को भी बढ़ा दिया (बत्रा एवं अन्य, 2021) क्योंकि उनके पास सस्ते आवास उपलब्ध नहीं थे (आनंद एवं अन्य, 2014)। समाज के सबसे असुरक्षित लोग जैसे कठोर हालात में जिंदगी बसर करते हैं वह लगातार एक चुनौती है और यह समस्या बहुत सारे शहरों में मौजूद है।

सरकार ने मकानों के किराये की वसूली पर जो रोक लगायी थी, उस आदेश की कमज़ोरी से स्तरीय और सस्ते आवास हासिल करने की मौजूदा कठिनाई बढ़ गयी है। इससे भौतिक असुरक्षा में इज़ाफ़ा होगा।

महामारी की अनिश्चितता से जूझते और हताशा में कुछ लोगों ने लॉकडाउन के दौरान भी काम की तलाश में घर से निकलने की हिम्मत दिखायी। ऐसे लोगों को सरकारी बर्बरता का सामना करना पड़ा क्योंकि पुलिस वाले बहुत हिंसक ढंग से पेश आ रहे थे। अगर कोई मुसीबत में था और घर से निकला तो उसके साथ भी कोई रियायत नहीं होती थी। लोगों के वाहन ज़ब्त कर लिये जाते थे। फेरीवालों की तराज़ू और रेहड़ी ज़ब्त कर ली जाती थी ताकि लोग किसी भी सूरत में घर से बाहर न निकल सकें। महामारी से पहले सिमरन फूल बेचा करती थीं। लॉकडाउन के दौरान वह फूलों की जगह सब्ज़ियां बेचने लगीं। मगर उन्हें भी पुलिस की बर्बरता झेलनी पड़ी :

> *पुलिस वालों ने मुझसे पूछा कि लॉकडाउन में मैंने दुकान क्यों लगाई। पहले तो उसने लात मारकर मेरी रेहड़ी से सारा सामान गिरा दिया। पहले उन्होंने फूलों की दुकान बंद करवा दी इसलिए मैं रेहड़ी पर सब्ज़ियां बेचने लगी थी। मगर अब उनका कहना था कि अगर मैंने सड़क पर दुकान लगायी तो मुझ पर जुर्माना करेंगे। मेरे पति को भी उन्होंने मारा। वे हमारी तराज़ू लेकर चले गये।*

अप्रैल की शुरुआत में सरकार की तरफ से आए आदेश (भारत सरकार, 2020ए), जिसमें ग्रॉसरी, फल और सब्ज़ियों की बिक्री को अनिवार्य सेवाओं की सूची में रखा था, के बावजूद ये चीज़ें बेचने वालों के साथ भी पुलिस अत्याचार की बहुत सारी खबरें सामने आयीं। पुलिसकर्मियों ने फल-सब्ज़ी बेचने वाले रेहड़ी वालों की रेहड़ियां पलट डालीं, और जब तक लॉकडाउन जारी रहा, उनके साथ बार-बार ज़्यादती और जोर-जबर्दस्ती होती रही (आईजीएसएसएस, 2020)। लॉकडाउन लगने और बहुत कम समय के नोटिस पर आवाजाही पर लगी पाबंदियों के चलते बहुत सारे प्रवासी मज़दूर लक्ष्य राज्यों में ही फंसकर रह गये थे। उनके पास न तो पैसा बचा था और न ही खाने का सामान था (आईजीएसएसएस, 2020; कुमार, 2020)। हालांकि कुछ राज्यों में खाद्य राशन के वितरण का भी प्रयास किया मगर स्वान (2020 सी)[33] ने बताया है कि 82% से अधिक प्रवासी मज़दूरों को खाद्य राशन नहीं मिला और 97% को सरकार से किसी तरह की नकद राहत नहीं मिली। दिल्ली और बंबई जैसे शहरों से जब ऐसे मज़दूर वापस अपने गांवों को जाने लगे तो कई जगह उनके साथ बल प्रयोग की भी बहुत सारी घटनाएं सामने आयीं (एमडब्ल्यूएसएन, 2020; स्वान, 2020ए)। मध्य प्रदेश, बिहार, झारखंड

[32] ये उत्तरदाता 30 से अधिक अलग-अलग व्यवसायों से और 12 राज्यों के 161 जिलों से थे।

[33] इस अध्ययन में 16836 मज़दूर लिये गये जिनमें से ज़्यादातर महाराष्ट्र, कर्नाटक, उत्तर प्रदेश और दिल्ली में फंसे हुए थे।

और उत्तर प्रदेश आदि राज्यों के हिंदी[34] भाषी मज़दूरों को पुलिस की हिदायतें भी समझ में नहीं आती थीं क्योंकि पुलिस कन्नड़ा भाषा में हिदायत दे रही थी।[35] इसके बावजूद पुलिस ने बल प्रयोग में किसी तरह के संयम का परिचय नहीं दिया (मदन, 2020; श्रीवास्तव, 2020)। हालांकि लॉकडाउन लगने के एक महीने बाद प्रवासी मज़दूरों के लिए परिवहन साधन की व्यवस्था कर दी गयी मगर इस बीच 971 मज़दूर भूख, प्यास, आर्थिक तनाव, खुदकुशी, तथा सड़क व रेल दुर्घटनाओं की वजह से मौत के मुंह में जा चुके थे (स्वान, 2020डी)।[36] सरकारी तंत्र और पुलिस बल लॉकडाउन व महामारी के दौरान किसी तरह जीने की कोशिश कर रहे अनौपचारिक क्षेत्र मज़दूरों की पीड़ा और मुश्किलों के प्रति बिलकुल उदासीन दिखायी दिए।[37]

रोज़गार छिन जाने और आमदनी का कोई भी साधन न होने के चलते बहुत सारे लोगों पर भारी तनाव रहा क्योंकि अब उनका भविष्य पूरी तरह अनिश्चित हो चुका था। दर्ज़ी का काम करने वाली उमा ने बताया कि उन्हें ये सोचकर बार-बार पसीना आ जाता था कि महामारी के बाद उनकी ज़िंदगी कैसे चल पाएगी। ऐसे कठोर हालात के बावजूद लोग अपने परिवारों के प्रति अपनी ज़िम्मेदारियों को निभाने के लिए हर तरह की कोशिश करते रहे। घरों में काम करने वाली अंबिका के इस बयान से ये बात समझी जा सकती है :

हालात तो बहुत कठिन थे! (लेकिन) बच्चों को पालना तो था ही। इसकी वजह से मैं यही सोचती कि "जो भी होगा मैं पीछे नहीं हटूंगी!" और मैं आगे बढ़ती रही।

महामारी के कारण लोगों के मानसिक स्वास्थ्य पर भी गंभीर असर पड़े। फिर भी, हालात के हिसाब से खुद को ढालने की कोशिशों में कोई कमी नहीं आयी। मानसिक स्वास्थ्य के साथ-साथ लोगों का शारीरिक स्वास्थ्य भी प्रभावित हुआ। महामारी के दौरान जब खाद्य वस्तुओं की कीमतें बढ़ने लगीं तो गरीब परिवारों के लिए फल और सब्ज़ियां ख़रीदना भी मुश्किल हो गया था (प्रगति एवं अन्य, 2020)। आमदनी न होने से यह संकट दोगुना हो गया था। चूंकि बहुत सारे हाशियाई समुदाय *आर्थिक असुरक्षाओं* के लगातार बने रहने की वजह से पहले ही अल्पपोषण या कुपोषण के शिकार हैं, अब महामारी के कारण इन लोगों के शारीरिक स्वास्थ्य में और ज़्यादा गिरावट आएगी।

मार्च 2020 में लगाए गये लॉकडाउन के बाद देश के सभी शिक्षा संस्थान बंद कर दिये गये थे। मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने सभी स्वायत्त संस्थानों एवं शिक्षा बोर्ड्स को निर्देश दिया कि वे महामारी को देखते हुए एहतियात के तौर पर सभी परीक्षाएं स्थगित कर दें (पीआईबी, 2020)। इस बीच प्रवासी मज़दूरों के बच्चे भी अपने मां-बाप के साथ अपने गृह राज्यों को जा चुके थे (क्राई, 2020) और इससे उनकी पढ़ाई-लिखाई पूरी तरह अस्त-व्यस्त हो गयी थी। पीयूसीएल (2020) का कहना है कि मुंबई के सरकारी स्कूलों में पहली से आठवीं कक्षा में पढ़ने वाले 28.12% विद्यार्थी अपने मां-बाप के साथ शहर से जा चुके थे। इसकी वजह से अगले अकादमिक वर्ष (2020-21) के दौरान दाखिलों में साफ गिरावट भी दर्ज की गयी।

हालात से निपटने की कोशिशें

रोज़गार के साधन अस्त-व्यस्त हो जाने, महामारी की अनिश्चितता और लॉकडाउन के नियमों से निपटने के लिए बहुत सारे परिवारों ने अलग-अलग तरीके अपनाए हैं। बहुत सारे लोगों ने समुदाय के भीतर से ही कर्जों जैसे परंपरागत स्वयं सहायता उपायों का सहारा लिया है। कुछ परिवारों को सरकार से मदद मिल पायी[38] जबकि बहुत सारे लोगों को गैर-सरकारी संस्थाओं और नागर समाज संगठनों से मदद मिली। इन सभी विकल्पों पर चर्चा नीचे की गयी है।

[34] हिंदी भारत की अधिकृत भाषाओं में से एक है।

[35] कन्नड़ा भारत के दक्षिण में स्थित कर्नाटक राज्य में बोली जाने वाली भाषा है।

[36] 4 जुलाई 2020 को (स्वान, 2020डी)।

[37] इसको सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म्स, जनसंचार माध्यमों और प्रिंट मीडिया में काफी कवर किया गया था।

[38] इस भाग में तमिलनाडु सरकार द्वारा मुहैया कराई गयी राहत सहायता पर चर्चा की गयी है।

स्वयं सहायता उपाय

जीवनयापन के लिए कर्जे लेना थोड़े समय के लिए एक उपयोगी रास्ता हो सकता है मगर लंबे दौर में इससे बात नहीं बनती क्योंकि इससे अनौपचारिक मज़दूरों की *आर्थिक असुरक्षा* नहीं घट पाती बल्कि स्थिर आय के अभाव में उन्हें कर्जे अदा करने में और ज्यादा मुश्किल होती है।[39] जो लोग सब्ज़ी बेचने या फूड पैकेजिंग जैसी वैकल्पिक आजीविका ढूंढने में कामयाब रहे उनमें से ज़्यादातर स्वरोज़गारी या दिहाड़ी मज़दूरी करने वाले लोग थे। **विडियो 3** में एक ऑटो ड्राइवर द्वारा नौकरी ढूंढने के लिए की गयी कोशिशों को देखा जा सकता है। मासिक तनख़्वाह पाने वालों के मामले में बचत के इस्तेमाल और गहने आदि गिरवी रखकर महाजनों से उधार लेने की घटनाएं ज़्यादा दिखायी दीं। साक्ष्यों से पता चलता है कि मासिक तनख़्वाह पाने वालों के पास थोड़ा-ही सही मगर कुछ निवेश भी था जिसकी वजह से उनके सामने कम ज़ोखिम रहा। कोविड से पहले की नियमित आय से उन्हें ये निवेश करने में मदद मिली होगी। टेबल 4 में मज़दूरों द्वारा अपनाए गये चार प्रमुख स्वयं सहायता विकल्पों का ब्यौरा दिया गया है।

स्वयं सहायता उपाय	अनुभव
दोस्तों और परिजनों से उधार	*खाने-पीने से लेकर काम-धंधे और घर का भाड़ा चुकाने तक के लिए हमें कर्जे लेने पड़े।* - वीणा, स्वरोज़गार
कीमती चीज़ों को गिरवी रखना	*हमने अपने गहने गिरवी रखकर कर्जा लिया।* - देवी, सफाई कर्मचारी
बचत का इस्तेमाल	*मुझे एलआईसी (बीमा) के लिए 15,000 रुपये चुकाने थे। (मैंने) पाई-पाई करके कुछ पैसा बचाया था। उन दिनों मैंने उसी पैसे से गुज़ारा चलाया।* - राकेश, हम्माल
वैकल्पिक रोज़गार	*सरकार कहती है कि लॉकडाउन के दौरान तुम कोई गाड़ी नहीं चला सकते। मैं तभी से ये सब्ज़ियां बेचकर अपना गुज़ारा चला रहा हूं।* - रॉबर्ट, भूतपूर्व ऑटो ड्राइवर

टेबल 4: स्वयं सहायता उपाय

स्वयं सहायता व्यवस्था एक अल्पकालिक राहत की दृष्टि से तो उपयोगी हो सकती है मगर ये पर्याप्त नहीं होती और इसने आर्थिक व भौतिक असुरक्षाओं को और ज़्यादा बढ़ा दिया है।

सरकारी उपाय

तमिलनाडु सरकार ने लोगों को राशन कार्ड के जरिये मुफ्त राशन और आर्थिक सहायता देने के साथ-साथ स्वास्थ्य कार्यक्रम के तहत हरबल काढ़े का भी वितरण शुरू किया था।[40] सार्वजनिक वितरण व्यवस्था (पीडीएस) के जरिये लोगों को निशुल्क खाद्य राशन दिया गया जिसमें उचित दर दुकानों (एफपीएस) पर चावल और चीनी (राशन कार्ड के लिए

[39] इस पर 'लॉकडाउन की पाबंदियों का निरंतर प्रभाव' शीर्षक में विस्तार से चर्चा की गयी है।
[40] शिक्षा के संबंध में सरकार द्वारा किये गये प्रयासों पर 'लॉकडाउन की पाबंदियों का निरंतर प्रभाव' शीर्षक भाग में विस्तार से चर्चा की गयी है।

स्वीकृत मात्रा के अनुसार)[41], एक किलो दाल और एक किलो पाम आयल का पैकेट दिया जा रहा था। यह सामान अप्रैल से जुलाई 2020 के बीच राशन कार्ड पर दिया गया। अप्रैल 2020 में प्रत्येक राशन कार्ड पर 1,000 रुपये का नकद भुगतान भी किया गया (तमिलनाडु सरकार, 2020ए)। मगर, जो राशन दिया जा रहा था, उसकी गुणवत्ता, मात्रा और पहुंच के लिहाज़ से कई समस्याएं थीं। महामारी से पहले कैब ड्राइवर का काम करने वाले एलेक्स ने बताया कि *"मेरी अभी शादी हुई थी इसलिए मुझे राशन कार्ड बनवाने के लिए समय ही नहीं मिल पाया।"* एलेक्स की भांति विभिन्न शहरों में फंसे बहुत सारे प्रवासी मज़दूरों को भी निशुल्क खाद्य राशन नहीं मिल पाया क्योंकि पीडीएस व्यवस्था में राशन कार्डों की पोर्टेबिलिटी का प्रावधान नहीं था। वे लक्ष्य राज्यों में राशन नहीं ले पाए क्योंकि वे प्रवासी थे और राशन कार्ड का इस्तेमाल उनके पंजीकृत शहर या गांव की एक निश्चित एफपीएस दुकान पर ही किया जा सकता था (जन साहस, 2020ए)। केंद्र सरकार ने 'वन नेशन वन राशन कार्ड' योजना[42] के माध्यम से इस समस्या को हल करने का भी प्रयास किया। इस योजना के तहत खाद्य सब्सिडी की अंतर्राज्यीय पोर्टेबिलिटी का प्रावधान किया गया था ताकि प्रवासी मज़दूर देश में कहीं भी राशन ले सकें (एमडब्ल्यूएसएन, 2020)। महामारी ने पीडीएस व्यवस्था में मौजूद ऐसे कई संरचनात्मक मुद्दों को सामने ला दिया है। ये ऐसी समस्याएं हैं जिन्होंने इस अभूतपूर्व संकट के दौरान प्रवासी मज़दूरों की असुरक्षा को और बढ़ा दिया था।

इलेक्ट्रीशियन का काम करने वाले संतोष ने खाद्य राशन की मात्रा के सिलसिले में बताया कि 6-8 लोगों का पेट भरने के लिए *"मासिक राशन काफी नहीं था। हमें अलग से भी राशन ख़रीदना पड़ा।"* स्वरोज़गार में लगी वीणा को चावल की घटिया गुणवत्ता से बहुत परेशानी थी। उन्होंने बताया कि *"पके हुए चावल में से बहुत गंदी बदबू आती थी।"* राशन कार्डों के न होने का एक नतीजा ये हुआ कि बहुत सारे लोगों को सरकार की तरफ से मिलने वाली आर्थिक सहायता भी नहीं मिल पायी। जिन्हें आर्थिक मदद मिली, उन्होंने बताया कि ये रकम लॉकडाउन के दौरान परिवार का पेट पालने के लिए पर्याप्त नहीं थी। घरेलू कामगार अंबिका ने बताया कि *"पांच आदमियों के परिवार के लिए हज़ार रुपये काफी नहीं थे। हमें दूध, सब्ज़ियां और दूसरी चीज़ें भी ख़रीदनी पड़ीं"* और इसलिए *"हम गुज़ारा नहीं चला पाए।"*

साल 2014-15 के दौरान पीडीएस चावल और गेहूं के उपभोग में देशव्यापी इज़ाफ़ा हुआ था मगर ये इस बात का संकेत भी है कि गरीबों के लिए ये सबसे बुनियादी अनाज है (आनंद एवं अन्य, 2014)। बहुत सारे लोगों को यह खाद्य सुरक्षा भी नहीं मिल पायी। उदारहण के लिए, महामारी से पहले दिल्ली में 72 लाख निवासियों के पास राशन कार्ड था और सूखा राशन लेने के लिए सरकार को राशन कार्ड के लिए छः लाख नये आवेदन और ई-कूपन के लिए 38 लाख नये आवेदन प्राप्त हुए[43] (भान एवं अन्य, 2020)। इससे पता चलता है कि बहुत सारे लोग पीडीएस व्यवस्था की संरचनात्मक खाइयों में गिर गये थे। इस तरह खाद्य उपलब्धता के लिहाज़ से इस सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था की एक गंभीर कमज़ोरी सामने आयी है। 'सबके लिए एकसमान सुविधा' और राशन कार्ड की पात्रता शर्तों, - जिनको कुछ लोग (खासतौर से प्रवासी मज़दूर) पूरा नहीं कर सकते थे - ने संवेदनशील लोगों को और ज़्यादा असुरक्षा में ढकेल दिया तथा सामाजिक न्याय व गरीबी की संरचनात्मक चिंताओं को भी सामने ला दिया।

सरकार ने जो कदम उठाए वे सभी के लिए एक जैसे थे। पीडीएस व्यवस्था में मौजूद संरचनात्मक खामियों व पात्रता कसौटियों से बेदखली को बढ़ावा मिलेगा।

राज्य सरकार ने *काबासूरा कुडिनीर* के नाम से एक हरबल काढ़ा भी बांटा, जिसके बारे में ये दावा किया गया कि उससे शरीर की इम्युनिटी बढ़ती है (दि हिंदू, 2020ए)। ये काढ़ा या तो मुहल्लों में बांटा गया या सरकारी केंद्रों पर निशुल्क पीने

[41] वहां राइस कार्ड्स (प्रति वयस्क चार किलो और प्रति बच्चा दो किलो; न्यूनतम 12 किलो और अधिकतम 20 किलो; चीनी 500 ग्राम प्रति व्यक्ति), अन्त्योदय अन्न योजना कार्ड्स (35 किलो; प्रति व्यक्ति 500 ग्राम चीनी) और शुगर कार्ड (चावल के स्थान पर 3 किलो चीनी) चलते हैं। शुगर कार्ड धारकों को चावल के अलावा बाकी सारी चीज़ें मिलती हैं (तमिलनाडु सरकार, 2020बी)।

[42] ये योजना अगस्त 2019 में चार राज्यों में शुरू की गयी थी (राजगोपाल, 2021) मगर इस योजना को बड़े पैमाने पर तभी लागू किया गया जब राशन कार्डों की पोर्टेबिलिटी का सवाल उठा जोकि महामारी के दौरान एक बड़ी समस्या बन गया था।

[43] दिल्ली सरकार ने ऐसे लोगों को ई-कूपन दिये थे जिनके पास कोई राशन कार्ड नहीं है। इससे उन्हें भी दिल्ली में एफपीएस दुकानों से निशुल्क राशन लेने में मदद मिली (भान एवं अन्य, 2020)।

के लिए दिया जा रहा था। निर्माण मज़दूर का काम करने करने वाली पूजा ने बताया कि जब ये घोल *"उनके इलाके में घूम-घूम कर बांटा जा रहा था"* उस दौरान उन्होंने भी ये पिया था। सरकार ने *"आम जनता के लिए कोविड-19 जांच करने के वास्ते हर महीने में दो बार कैंप भी लगाए थे"* (चारूलता, घरेलू कामगार)।

बहुत सारे सहभागियों को विभिन्न प्रादेशिक एवं राष्ट्रीय राजनीतिक दलों के नेताओं से भी कुछ मदद मिली। इस तरह के राहत उपायों के तहत उन्हें एक बार में या समय-समय पर सूखा राशन दिया गया। ये सिलसिला तमिलनाडु की क्षेत्रीय पार्टी द्रविड़ मुनेत्र कझगम (डीएमके) और आल इंडिया अन्ना द्रविड मुनेत्र कझगम (एआईएडीएमके) ने शुरू किया था। बाद में भाजपा जैसी राष्ट्रीय स्तर की पार्टियों ने भी ऐसा किया। दर्जिन का काम करने वाली रिया ने बताया कि उन्हें *"एआईएडीएमके से पांच किलो चावल और डीएमके से पांच किलो चावल व एक पैकेट खजूर"* मिला था। नेताओं ने जो खाद्य सामग्री बांटी उसमें कच्चा चावल ज़रूर होता था। ऐसा लगता है कि उन्होंने पीडीएस में मिलने वाले घटिया चावल को लेकर लोगों के गुस्से को भांप लिया था।

नागर समाज की कोशिशें

अनौपचारिक मज़दूरों को गैर-सरकारी संगठनों (एनजीओ), नागर समाज संगठन (सीएसओ) और विभिन्न व्यावसायिक संगठनों की तरफ से भी पका या सूखा भोजन, आर्थिक सहायता, स्वास्थ्य-शिक्षा संबंधी सहायता और विभिन्न प्रकार की बंदोबस्ती मदद दी गयी।

खाद्य पदार्थों की उपलब्धता

फेरी लगाने वाली सिमरन ने बताया कि जनता की तरफ से लोगों को *"सुबह इडली और दोपहर बाद चावल"* मिलता था। इसके अलावा, समुदाय के लोगों और *"कालेज की छात्राओं ने बच्चों को बिरियानी भी बांटी।"* सड़क पर फेरी लगाने वाली भुवना ने बताया कि उनके समुदाय ने एक महीने के राशन के तौर पर *"दस किलो चावल और चीनी, मिर्च, धनिया"* वगैरह दिया था। मीना घरेलू कामगार हैं। उन्हें *"अपने मालिकों की तरफ से निशुल्क राशन (तेल और चावल)"* मिला क्योंकि उनके पास अपना राशन कार्ड नहीं था। मीना के मालिकों ने एफपीएस के तहत मिले खाद्य राशन में से एक हिस्सा मीना को भी दिया जिससे वह और उनके तीन बच्चे लॉकडाउन का वक़्त गुज़ार पाए। वॉलंटियर्स तथा समाजसेवी संगठनों की तरफ से फूड किट्स और ग्रॉसरी का सामान भी बांटा गया। इसी तरह के समाजसेवी संपत ने अपने नेटवर्क से चंदा इकट्ठा करके *"गिफ्ट पैकों का वितरण करवाया जिसमें सौ शारीरिक रूप से विकलांग लोगों के लिए अनाज था।"* उन्होंने *"दान दाताओं को इकट्ठा किया और अम्मा कैंटीन के माध्यम से निशुल्क भोजन मुहैया कराया*[44] और त्रिची में *"कुत्तों के लिए 50 किलो पके हुए चावल"* का वितरण कराया। एक और समाजसेवी वाणी ने *"लगभग 30 ट्रांसजेंडर लोगों को महीने में दो बार मास्क, सेनेटाइजर और ग्रॉसरी"* दी। इसके लिए उन्होंने अपने *"परिवार और दोस्तों के नेटवर्क"* से पैसा इकट्ठा किया था।

जीएनईएम (गुड़गांव नागरिक एकता मंच)/स्वान (स्ट्रेंडेड वर्कर्स एक्शन नेटवर्क)[45] के आशीष ने बताया कि उन्होंने *"गुड़गांव में मज़दूर यूनियनों और एक स्कूल द्वारा चलायी जा रही सामुदायिक रसोई में रोज़ाना 35,000 लोगों के लिए पका हुआ खाना बंटवाया। जीएनईएम ने खाद्य वितरण के लिए आर्थिक मदद दी और तीन महीनों के दौरान लगभग 20,00,000 पैकेट पका हुआ खाना बांटा गया।"* इसके अलावा *"मानेसर गुड़गांव तथा दिल्ली की कुछ बस्तियों में भी 35,000 से ज़्यादा परिवारों को"* राशन किट्स वितरित किये गये। पारस इंडिया से संबद्ध क्रति[46] ने बताया कि शहर से जा रहे बुंदेलखंड के प्रवासी मज़दूरों को *"ट्रांजिट पॉइंट्स पर खाने के पैकेट बांटे गये। जब वे अपने गांव पहुंच गये तो वहां भी उन्हें राशन के पैकेट उपलब्ध कराए गये।"* इसके लिए उन्होंने दिल्ली और झांसी में जिला प्रशासन के साथ तालमेल में काम किया। *"अप्रैल के पहले हफ्ते से भोजन लाने, पैक करने और वितरित करने वाले वाहनों के लिए ई-पास मुहैया कराए गये।"* जिनके पास राशन कार्ड नहीं थे उन्हें *"दिल्ली सरकार की ई-कूपन योजना में शामिल करवाया गया।"* मगर, चूंकि ये योजना *"दो महीना देरी से लागू की जा रही थी इसलिए मज़दूरों को सिर्फ एक महीने तक ही लाभ मिल पाया हालांकि ई-कूपन तीन महीने के लिए बनाए गये थे।"*

---

[44] अम्मा कैंटीनों में रियायती दर पर पका हुआ भोजन मिलता है। ये कैंटीन तमिलनाडु सरकार द्वारा चलायी जा रही हैं।

[45] स्रोत : प्रवासी मज़दूरों पर पैनल चर्चा।

[46] स्रोत : प्रवासी मज़दूरों पर पैनल चर्चा। क्रति पारस इंडिया की एक भूतपूर्व कर्मचारी हैं।

आर्थिक सहायता मुहैया कराना

कपड़ों पर इस्तरी करने वाले कमलेश को लॉकडाउन के दौरान अपने ग्राहकों से मदद मिली।

> *अगर वे (ग्राहक) सौ रुपये देते थे तो अब उन्होंने 500 रुपये दिये। वे कहते, "कोरोना टाइम है, रख लो, तुम्हारा बच्चा भी है। तुम परेशान हो..."।*

पेशेवर संगठनों ने भी अपने सहभागियों को आर्थिक लाभ मुहैया कराए। प्लम्बिंग का काम करने वाले सेंथिल ने बताया कि उन्हें *"कंस्ट्रक्शन वर्कर्स वेलफेयर एसोसिएशन से मुझे 2,000 रुपये मिले जो मेरे खाते में जमा थे।"* एक बैंड मे शहनाई बजाने वाले राजेश को वेलफेयर एसोसिएशन से *"2,000 रुपये की आर्थिक सहायता"* मिली। कुछ समाज सेवियों ने भी निजी तौर पर चंदे दिये और भोजन व अन्य खर्चों के लिए दूसरों से भी पैसा इकट्ठा किया। उदाहरण के लिए, समाज सेवी वाणी ने *"खाना पकाने के लिए प्रवासी मज़दूरों को पैसा दिया।"* उन्होंने *"एक अन्य सामाजिक कार्यकर्ता को भी पैसा दिया जो सड़कों पर भिखारियों और बेघर लोगों की मदद कर रहे थे।"* प्रीती ने *"अपने परिवार और दोस्तों से 5,000 रुपये इकट्ठा किये"* जो उन्होंने *"शहर में लोडमैन के लिए खाना पकाने"* के लिए दे दिये। उन्होंने *"नेत्रहीन लोगों के लिए 10,000 रुपये का चंदा"* दिया। आशीष[47] ने बताया कि स्वान (स्ट्रेंडेड वर्कर्स एक्शन नेटवर्क) ने *"माइक्रोकैश ट्रांसफर्स के माध्यम से 36,000 मज़दूरों को लाभ पहुंचाया। इन मज़दूरों को 500 रुपये से 2,000 रुपये तक दिये गये और इस तरह 60,00,000 रुपये से ज़्यादा रकम बांटी गयी।"* मज़दूरों ने इस आर्थिक सहायता से *"कुकिंग गैस या महिलाओं के लिए सेनेटरी नैपकिन वगैरह ख़रीदे।"* ऋतुपर्णा ने बताया कि उनके संगठन नज़रिया[48] ने एलजीबीटीक्यूआईए+ समुदाय के लिए, *"चार लाख रुपये इकट्ठा किये और लगभग तीन महीने तक लगभग 72 ट्रांसमैस्क्युलिन, ट्रांसफेमिनिन और क्वियर लोगों को देश के अलग-अलग भागों में पैसा पहुंचाया।"*

बच्चों की शिक्षा में सहायता

घरेलू कामगार चारूलता ने बताया कि उनके मालिक उनकी बेटी की पढ़ाई का खर्चा तभी से उठा रहे हैं जब वह दूसरी कक्षा में थी। इधर *"महामारी के दौरान भी उन्होंने 8500 रुपये की मदद दी"* ताकि अंडरग्रेजुएशन कर रही उनकी बेटी की शिक्षा अधूरी न रह जाए। महामारी के दौरान जब लोग घरेलू कामगारों को वाजिब तनख़्वाह भी नहीं दे रहे थे उस समय भी चारूलता के मालिक उनकी बेटी की पढ़ाई के लिए मदद देते रहे जबकि चारूलता उनके घर में काम के लिए भी नहीं आ रही थी। उनको अंदाजा था कि इस संकट के दौर में चारूलता के सामने कितनी भारी आर्थिक समस्या रही होगी। एक और समाजसेवी संपत ने बताया कि उनके नेटवर्क/संगठन के लोगों ने *"ज़रूरतमंद बच्चों के लिए 7,000-7,500 रुपये मूल्य के पांच स्मार्ट फोन भी ख़रीद कर दिये।"* क्रति[49] ने बताया कि पारस इंडिया के वॉलंटियर्स ने लीड इनिशिएटिव के जरिये *"विद्यार्थियों को मोबाइल फोन या लैपटॉप दिलाने के लिए संपर्क किया और उन्हें अंग्रेजी सीखने में मदद दी।"* बहुत सारी लड़कियों को मां-बाप के दबाव की वजह से और ऑनलाइन लर्निंग के लिए मोबाइल फोन जैसे साधन न होने के कारण पढ़ाई छोड़नी पड़ी थी। ज़ाहिर है कि महामारी के दौरान मौजूदा जेंडर असमानता और ज़्यादा बढ़ गयी थी क्योंकि लड़कियों को अकसर ऑनलाइन शिक्षा तक पहुंच नहीं मिल पायी। इस पर पिछले भागों में विस्तार से बात की जा चुकी है।

कोविड-19 जागरूकता एवं स्वास्थ्य प्रयासों की शुरुआत

महामारी के शुरुआती दिनों में समाजसेवी वाणी ने *"त्रिची के पांच अलग-अलग इलाकों में सफाई मज़दूरों के लिए कोविड-19 जागरूकता कार्यक्रम चलाए।"* उन्होंने *"मज़दूरों को वायरस के बारे में बताया, एक-दूसरे से शारीरिक दूरी की ज़रूरत के बारे में बताया और मास्क व दस्ताने बांटे।"* महामारी के खिलाफ इन मज़दूरों की अग्रिम पंक्ति की भूमिका के मद्देनज़र उन्होंने मज़दूरों को समझाया कि उन्हें *"कूड़े की छंटाई के दौरान क्या सावधानियां बरतनी हैं"* खासतौर से इसलिए क्योंकि *"उनके काम की वजह से उन पर वायरस की चपेट में आने का खतरा कुछ ज़्यादा है।"* वाणी ने *"शहर के अन्य*

47 स्रोत : प्रवासी मज़दूरों पर पैनल चर्चा।

48 स्रोत : असमानता पर पैनल चर्चा।

49 स्रोत : प्रवासी मज़दूरों पर पैनल चर्चा।

इलाकों में भी 100 मास्क, 100 दस्ताने सेनेटरी अधिकारियों को दिये ताकि वे उन्हें सफ़ाई मज़दूरों के बीच बांट सकें।" जिस वक़्त मास्कों की भारी किल्लत थी, उस समय उन्होंने *"इंडियन बैंक के एक बैंक मैनेजर को भी अपने सहकर्मियों के बीच बांटने के लिए मास्क मुहैया कराए।"* उन्होंने *"इनर व्हील क्लब"* के माध्यम से कोविड-19 जागरूकता पोस्टर भी तैयार किये। इन पोस्टरों को *"बाजार और बस स्टैंड जैसे सार्वजनिक स्थानों पर लगाया गया था।"* जब अधिकारियों ने इन पोस्टरों को देखा तो *"उन्होंने पोस्टरों की फोटो खींचकर (वाणी) को भेजीं।"* इससे पता चलता है कि उनकी चीज़ों का सही ढंग से इस्तेमाल हुआ है। क्रति[50] ने बताया कि *"उन्होंने दूसरे गैर-सरकारी संगठनों के साथ मिलकर काम किया और फेस मास्क, सेनेटाइजर, चप्पलें, सेनेटरी नैपकिन वगैरह बंटवाए।"* वाणी ने अपनी दर्जिन को भी मदद दी जो उनके *"ब्लाउज सींती थी।"*[51] उन्होंने दर्जिन को *"माल ख़रीदने के लिए मदद दी जिससे उसने मास्क बनाए और इन मास्कों को वाणी ने ट्रांसजेंडर लोगों, बैंक मैनेजरों व कर्मचारियों तथा सफाई मज़दूरों के बीच बंटवाया।"* ये प्रयास इस बात का उदाहरण हैं कि किस प्रकार एक साधारण स्वास्थ्य कार्यक्रम - मास्क बनवाकर बंटवाना - भी लोगों को आजीविका प्रदान करने के लिए मददगार हो सकता है।

क्रति[52] ने बताया कि *समर्पण* कार्यक्रम के तहत जागरूकता अभियान आयोजित किये गये ताकि *"कोविड-19 के बारे में फैलाई जा रही झूठी खबरों और अफवाहों को रोका जा सके। सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म्स के माध्यम से बहुत सारे सोशल मीडिया चैनल शुरू किये गये जहां सुरक्षा नियमों, क्वॉरंटीन अवधि और स्वास्थ्य संबंधी नियमों* (मास्क पहनने और उनके निस्तारण के तरीके, हाथ धोने के तरीके आदि) *के बारे में स्थानीय भाषा में जानकारियों का प्रसार किया जाता था।"* ये प्रयास दिल्ली, बुंदेलखंड, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ में चलाए गये।

ऋतुपर्णा ने बताया कि नज़रिया[53] ने *"सुबह 10 बजे से शाम 6 बजे तक सोमवार से शनिवार तक हेल्पलाइन सेवा चलाई।"* इस हेल्पलाइन पर जो कॉल्स आती थीं वे *"मानसिक स्वास्थ्य, आत्महत्या की प्रवृत्ति और मां-बाप द्वारा समलैंगिक और ट्रांसजेंडर लोगों के बारे में की जा रही अपमानजनक टिप्पणियों से संबंधित होती थीं।"* इस हेल्पलाइन पर कॉल करने वाले *"विभिन्न प्रकार के मानसिक स्वास्थ्य तनावों पर बात करते थे। जैसे, वे किस प्रकार की निगरानी का सामना करते हैं, उन्हें ऐसे कपड़े पहनने के लिए विवश किया जाता है जो जन्म के समय उन्हें दे दी गयी जेंडर पहचान पर आधारित हैं मगर वे उस पहचान को नहीं मानते क्योंकि वे ट्रांसजेंडर हैं। कई कॉलर्स ने ये भी बताया कि उन्हें कन्वर्जन थैरेपी के लिए मजबूर किया जा रहा है और उनके पास फोन रीचार्ज कराने के लिए भी पैसे नहीं हैं जिसके कारण वे अपने साथियों, दोस्तों और प्रेमियों से भी बात नहीं कर पा रहे हैं।"* ऋतुपर्णा ने बताया कि कुछ लोगों ने आत्महत्या भी कर ली *"क्योंकि उनके घर वाले तथा चिकित्सा संस्थान उन पर कन्वर्जन थैरेपी के लिए बेतहाशा दबाव डाल रहे थे।" "तमिलनाडु, मुजफ्फर नगर, उत्तर प्रदेश और गोहाटी में लेस्बियन और गे जोड़ों द्वारा आत्महत्या की भी खबरें आयी हैं।"* इनमें से बहुत सारे लोगों के लिए ज़िंदगी इसलिए भी दुश्वार हो गयी थी क्योंकि वे घर के भीतर लगातार एक ऐसे विषैले वातावरण में घिरे हुए थे जो उन्हें समझने या उनको मदद देने के लिए तैयार नहीं था। लॉकडाउन की वजह से सामान्य बाहरी सहायक तंत्र भी पहुंच के बाहर चला गया था और उनके पास पैसे भी प्रायः नहीं होते थे। एलजीबीटीक्यूआईए+ समुदाय के बीच काम करने वाले नज़रिया जैसे गैर-सरकारी संगठनों के अनुभवों से पता चलता है कि इस तरह के लोग महामारी व लॉकडाउन के दौरान किस कदर उपेक्षित थे और उन्हें पहले से भी ज़्यादा असुरक्षित लगने लगा था।

यात्रा बंदोबस्त मुहैया कराना

चूंकि प्रवासी मज़दूरों के पास अपना गुज़ारा चलाने के लिए कोई आमदनी या खाने-पीने के साधन भी नहीं थे और बहुधा सरकारी योजनाओं का भी लाभ नहीं ले पा रहे थे इसलिए संकट आने पर वे अपने गांवों की तरफ लौटने को विवश हो गये। शहरों से जाने वाले प्रवासी मज़दूरों के सामूहिक पलायन के लगभग एक महीने बाद केंद्र सरकार ने एक मई 2020 से श्रमिक रेलगाड़ियां चलाना शुरू किया ताकि शेष प्रवासी मज़दूर अपने गंतव्य पर पहुंच सकें (स्वान, 2020बी)। इसके बावजूद बहुत सारे मज़दूर या तो इन रेलगाड़ियों के बारे में जानते नहीं थे या उन्हें समय पर स्टेशन पहुंचने के लिए साधन नहीं मिल पाए या उन्हें रेलगाड़ियों का सही ब्यौरा नहीं मिल पाया (उपरोक्त)। राघव[54] ने बताया कि गैरकानूनी

[50] स्रोत : प्रवासी मज़दूरों पर पैनल चर्चा।

[51] ब्लाउज़ एक परंपरागत कपड़ा है जो साड़ी के साथ पहना जाता है।

[52] स्रोत : प्रवासी मज़दूरों पर पैनल चर्चा।

[53] असमानता पर पैनल चर्चा में शामिल एक संगठन।

[54] स्रोत : प्रवासी मज़दूरों पर पैनल चर्चा। राघव आजीविका ब्यूरो के भूतपूर्व कर्मचारी हैं।

दलाल श्रमिक ट्रेनों में टिकट दिलाने के लिए अनौपचारिक बस्तियों[55] के लोगों से बहुत ज़्यादा पैसा ऐंठ रहे थे। जैसे ही उन्हें इसके बारे में पता चला, ऐसे लोगों पर कार्रवाई की गयी।

अनधिकृत एजेंट लोगों से एक टिकट के लिए 4,000 रुपये तक वसूल कर रहे थे जबकि ये टिकट निशुल्क थे। हमारे समुदाय के दो लोगों ने बस्ती के पास स्थित मैदान में जब इस तरह का लेन-देन होते हुए देखा तो उन्होंने इस बारे में हमारी टीम को जानकारी दी। हमने ये जानकारी मीडिया को दी और मीडिया के लोगों ने पुलिस से संपर्क किया जिसके चलते ऐसे दलालों के खिलाफ एफआईआर दर्ज हुई। इस तरह कम से कम हमारे इलाके में ये ठगी बंद हो गयी।

गैर-सरकारी प्रयासों में बड़े पैमाने पर राहत कार्य चलाने के लिए ज़रूरी साधनों का भारी अभाव रहा।

सरकारी और गैर-सरकारी, दोनों तरह की कोशिशों में कोविड-19 स्वास्थ्य आवश्यकताओं, भोजन (सूखा और पका हुआ) और आर्थिक सहायता पर ही ज़्यादा जोर दिया जा रहा था क्योंकि इस संकट के दौरान रोज़गार और आमदनी का नुकसान सबसे बड़ा था। सरकारी प्रयासों के दौरान बहुत सारे लाभार्थियों को लाभ पहुंचाया गया मगर राहत सामग्री *निश्चित मानकों* पर आधारित थी और वितरण व्यवस्था की पात्रता शर्तें *बेदखली पर आधारित* थीं। सार्वजनिक वितरण व्यवस्था (पीडीएस) के तहत लोगों को खाद्य पदार्थ निशुल्क दिये जाने थे मगर बहुत सारे लोग न तो उचित दर दुकानों पर निशुल्क राशन हासिल कर पाए और न ही उन्हें आर्थिक मदद मिल पायी। इसके दो कारण रहे : (1) संरचनात्मक बाधाएं : राशन कार्ड की पोर्टेबिलिटी के प्रावधान का अभाव (प्रवासी मज़दूरों के मामले में) जिसके चलते वे लाभ नहीं ले सकते थे; प्रवासी मज़दूरों के लिए राहत सामग्री के वितरण पर नज़र रखने हेतु डेटाबेस का अभाव; नौकरशाही विलंब की वजह से राशन कार्ड आवेदनों पर कार्रवाई न हो पाना; तथा (2) पीडीएस की पात्रता के लिए योग्यता मानदंड पर खरा उतरने के लिए आवश्यक दस्तावेज (पहचान और निवास का साक्ष्य) हासिल न कर पाना। डोमिसाइल दस्तावेजों की अनिवार्यता के कारण प्रवासी मज़दूरों और बेघरों को राहत सामग्री प्राप्त करने में और ज़्यादा दिक्कत पैदा हो गयी (आजीविका ब्यूरो, 2020)।

खाद्य राशन की अपर्याप्त मात्रा व गुणवत्ता, तथा नकद सहायता की अपर्याप्तता और इन सारी कोशिशों का सीमित दायरा गहरी चिंताओं का सबब है। इससे पता चलता है कि खाद्य सुरक्षा, अपर्याप्त आवास (*भौतिक असुरक्षा*), और अनौपचारिक रोज़गार (*आर्थिक असुरक्षा*), ये आपस में जुड़े हुए हैं। इन अनुभवों से पता चलता है कि प्रभावी सामाजिक सुरक्षा उपायों की रूपरेखा तैयार करते हुए हमें गरीबी के स्थिर आंकड़ों पर ध्यान देने के साथ-साथ इन अंतर्संबंधों और असुरक्षाओं को ध्यान में रखना भी कितना ज़रूरी है (भान एवं अन्य, 2020)। मात्रा और गुणवत्ता के लिहाज़ से बच्चों के स्वास्थ्य व शिक्षा के लिए किये गये राहत प्रयास भी सीमित रहे क्योंकि ये कोशिशें मुख्य रूप से सामुदायिक नेटवर्कों और गैर-सरकारी स्रोतों से ही चलायी गयी जिनके पास देशव्यापी क्रियान्वयन के लिए ज़रूरी पैसा और बुनियादी सुविधाएं नहीं थीं।

इस दौर के साक्ष्यों से दो मुख्य बातों पर ध्यान जाता है : मौजूदा सरकारी सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था अपर्याप्त है, क्षीण है और इसमें कई संरचनात्मक कमजोरियां हैं। जब संकट से निपटने के लिए इस व्यवस्था की ज़रूरत पैदा हुई तो ये व्यवस्था लोगों को ज़रूरी सहायता मुहैया नहीं करा पायी और लिहाज़ा तमाम ज़रूरतमंदों को कवर करने में नाकाम रही। जैसा कि भान एवं अन्य (2020) का कहना है, यह व्यवस्था संरचनात्मक कमज़ोरियां तथा पात्रता कसौटी के असंतुलनों की वजह से महामारी के झटके का मुकाबला करने में सक्षम नहीं थी। गैर-सरकारी ताकतों ने भोजन, वित्त, शिक्षा और स्वास्थ्य राहत प्रयासों के जरिए ऐसे लोगों को मदद देने की कोशिश की जो सरकारी राहत उपायों का लाभ नहीं ले पा रहे थे। इससे कुछ लोगों की पीड़ा को दूर करने में निश्चय ही मदद मिली मगर ज़्यादातर अनौपचारिक क्षेत्र मज़दूरों का राहत साधनों के लिए संघर्ष जारी रहा।

[55] श्रमिक हिंदी का एक शब्द है। श्रमिक को लेबरर या मज़दूर भी कहा जाता है। महामारी के दौरान संकट में फंसे मज़दूरों को निशुल्क श्रमिक ट्रेन उपलब्ध करायी गयी थीं।

भोजन, आवास, शिक्षा और रोज़गार की दृष्टि से मौजूदा व्यवस्थाएं नाकाफ़ी और नाज़ुक साबित हुई हैं और लिहाज़ा सबसे असुरक्षित लोगों को मदद देने में विफल रही हैं। इससे पता चलता है कि सामाजिक सुरक्षा उपायों को संस्थागत रूप देना कितना ज़रूरी है।

लॉकडाउन की पाबंदियों का निरंतर प्रभाव

जब लॉकडाउन की वजह से लगायी गयी पाबंदियों में ढील दी जाने लगी तो कुछ लोगों ने काम पर वापस जाना शुरू कर दिया और बहुत सारे लोगों ने दोबारा अपनी आजीविका जुटाने की कोशिशें शुरू कर दीं। सफ़ाई कामगार देवी[56] ने बताया कि अब हालात *"सामान्य"* होने लगे थे क्योंकि अब वह *"काम को संभालने, बच्चों की देखभाल करने और कर्ज़े चुकाने की हालत में आ गयी हैं।"* मगर, बहुत सारे लोगों को बड़े शहरों और आर्थिक गतिविधियों के ढप हो जाने की वजह से आय के स्रोत दोबारा हासिल करने में लगातार संघर्ष करना पड़ा। उमा एक दर्जी हैं। उनको भी अंदाजा है कि उनके ग्राहक क्यों वापस नहीं लौट रहे हैं :

> *ग्राहक अब भी नहीं आ रहे। सबसे पहले तो आपको रोटी चाहिए होती है न! कपड़ों का सवाल तो उसके बाद आता है। ये कोई बुनियादी खर्चा नहीं है, है कि नहीं? पहले तो हमें अपनी ज़िंदगी की फ़िक्र करनी पड़ती है। पेट भरना पड़ता है। लोग तो यही देखेंगे। पहनने के लिए तो उसी से काम चल जाएगा जो पहले से उनके पास है।*

उनके ग्राहक भी पैसा खर्च करने से कतरा रहे हैं क्योंकि उन्हें अपने भोजन के लिए पैसे की ज़रूरत है। इससे पता चलता है कि मध्यवर्गीय परिवारों में भी आर्थिक तंगी बहुत ज़्यादा है क्योंकि उनकी नौकरियां छिन चुकी हैं या महामारी के कारण उनकी तनख़्वाह में भारी कटौती हुई है। रंगाई, पुताई और बिजली का काम करने वाले मुरुगन ने बताया कि उन्हें पिछले मालिक ने भी काम देने से इनकार कर दिया क्योंकि उसके पास भी दुबारा काम शुरू करने के लिए *"तनख़्वाह या कच्चे माल पर खर्च करने के लिए कोई पैसा नहीं था।"* संक्रमण की चपेट में आने और दोबारा पाबंदियों की आशंका को देखते हुए महामारी का असर लॉकडाउन हटने के बाद भी जारी रहा और अभी भी लोगों का आय स्तर पहले जैसा नहीं हुआ है। दीपक लोगों की कटिंग करते हैं। उन्होंने बताया कि उनके ग्राहक भी अब वायरस के डर से दुकान पर नहीं आना चाहते।

> *अब वे इंतजार नहीं करते। उनको डर लगता है। अगर यहां एक ग्राहक है और मैं दूसरे व्यक्ति के बाल काट रहा हूं तो कोई और ग्राहक आकर नहीं बैठेगा। जो आता है, देखकर वापस चला जाता है...*

न केवल ग्राहकों की संख्या में कमी आयी है बल्कि अब ग्राहक पहले से कहीं ज़्यादा समय के बाद आते हैं।

> *पहले कुछ लोग हर हफ्ते हजामत बनवाने आते थे। अब ऐसे लोग महीने में एक बार ही आते हैं। सबको डर लगता है! "हे भगवान! अगर मैं इसके यहां गया तो कुछ हो न जाए!"*

बाल काटने वाले को अपने ग्राहक से बहुत सटकर खड़े होना पड़ता है (कटिंग और शेविंग के लिए) इसलिए लोगों में उसके प्रति भय और एक आशंका का भाव बना ही रहता है। हालांकि लॉकडाउन की वजह से लगी पाबंदियों में छूट दे दी गयी मगर स्वरोज़गार करने वाले लोगों के काम में पहले जैसा लचीलापन अभी भी नहीं आ पाया।

तान्या रेहड़ी पर सामान बेचती हैं। लॉकडाउन में ढील के बाद समय की जो पाबंदियां तय की गयी थीं, उनकी वजह से तान्या को काफी दिक्कत आयी। हलांकि फेरी वाले दुकानदारों को दुकान खोलने की छूट दे दी गयी थी मगर उन्हें रात नौ बजे से पहले दुकान बंद करनी होती थी (तमिलनाडु सरकार, 2020सी)। इसके फलस्वरूप तान्या को नौ बजे के बाद होने वाली आमदनी से हाथ धोना पड़ा क्योंकि बहुत सारे ग्राहक रात को नौ बजे के बाद ही दुकान पर आते थे।

---

[56] स्वरोज़गारी मज़दूर।

जब लोग अपने काम से लौटते हैं तो वे गाड़ी में बैठकर खाने का सामान ख़रीदने निकलते हैं। हमारे जैसे फेरीवालों का असली धंधा नौ बजे के बाद ही शुरू होता है और सबसे ज़्यादा ग्राहक तो 10-11 बजे की बीच ही आते हैं। अब नौ बजे दुकान बंद करनी पड़ती है जिसकी वजह से हमारा धंधा बहुत कम रह गया है।

महामारी और लॉकडाउन की पाबंदियों तथा वायरस के लगातार भय के कारण आयी मंदी की वजह से भी बहुत सारे लोगों को आय जुटाने में भारी जद्दोजहद करनी पड़ रही है। उच्च एवं मध्यवर्ग के लोगों की भी नौकरियां छिनी हैं और तनख़्वाह में कटौती हुई है जिसके चलते उन पर जो आर्थिक दबाव पैदा हुआ है उसने उन्हें पहले की तरह खर्चे करने से रोका हुआ है। उदाहरण के लिए घरेलू कामगारों की मासिक तनख़्वाह में कमी आ गयी है; सिलाई और इस्तरी जैसे कामों की दरें कम हो गयी हैं; लोगों ने अपने घरों की मरम्मत वगैरह रोक दी है जिससे बिजली वाले, पेंटर, कारपेंटर और निर्माण मज़दूर आदि सभी मज़दूरों पर असर पड़ा है।

उच्च एवं मध्यवर्गीय परिवारों के पास औपचारिक रोज़गार, रोज़गार सुरक्षा, नियमित तनख़्वाह और काम के निश्चित घंटों की व्यवस्था कुछ हद तक बची हुई थी मगर उन्होंने फिर भी अपने खर्चों में कटौती के लिए अपने अनौपचारिक कामगारों व मज़दूरों की मामूली तनख़्वाहों में भी और कटौतियां कर दीं। ऐसे लोग कम ही थे जो इस बात को समझते हों कि अनौपचारिक मज़दूर प्रायः ऐसे संपन्न परिवारों पर काफी आश्रित रहते हैं। कुछ मामलों में मध्य एवं उच्च-मध्यवर्गीय परिवार अपने घरेलू और अन्य कामगारों को मासिक तनख़्वाह देते रहे जिससे ये मज़दूर अपना गुज़ारा चला सकें (राय चौधरी एवं अन्य, 2020)। मगर, दिल्ली की कुछ रेजिडेंशियल वेलफेयर एसोसिएशनों[57] (आरडब्ल्यूए) ने घरेलू कामगारों को अपार्टमेंट या कॉलोनी के भीतर आने के लिए आधार कार्ड दिखाने को मजबूर किया।[58] ऐसा यह सुनिश्चित करने के लिए किया गया कि वे कंटेनमेंट ज़ोन से तो नहीं आ रही हैं। उनके आने और जाने की टाइमिंग भी तय कर दी गयी (हिंदुस्तान टाइम्स, 2020)। मुंबई की कुछ हाउसिंग सोसाइटीज़ ने घरेलू कामगारों को इसके लिए भी मजबूर किया कि वे मालिक के घर में काम को हाथ लगाने से पहले नहाकर धुले साफ कपड़े पहनें (सिंह, 2020)। ये अपमानजनक तौर-तरीके घरेलू कामगारों के प्रति मध्यवर्ग की घृणा को दर्शाते हैं क्योंकि ये मज़दूर अपने काम और सामाजिक आर्थिक हैसियत की वजह से पहले ही *सामाजिक रूप से असुरक्षित* होते हैं।

कर्जे उतारने के दबाव में आर्थिक असुरक्षा तो बढ़ ही गयी है,
बहुत सारे लोग सामाजिक असुरक्षा के भी शिकार हैं क्योंकि वायरस की चपेट में आने के
भय से उनके मालिक और ग्राहक भी उनके साथ बराबरी का व्यवहार नहीं करते।

जहां एक तरफ इस मध्यवर्गीय उदासीनता ने अनौपचारिक मज़दूरों की असुरक्षा को और ज़्यादा बढ़ा दिया था, वहीं इससे ये समझने में भी मदद मिलती है कि वो आर्थिक नेटवर्क कितना नाजुक है जिसमें मध्यवर्ग के लोग आते हैं और लिहाज़ा इससे उन लोगों पर और ज़्यादा असर पड़ा जो और भी ज़्यादा असुरक्षित हैं। चुनांचे जो पहले से ही हाशिये पर हैं, उनके लिए नतीजे और भी ज़्यादा भयावह साबित हुए। आमदनी और नकद प्रवाह बंद हो जाने से अकुशल और अर्धकुशल मज़दूरों की असुरक्षा और ज़्यादा बढ़ गयी क्योंकि उनके पास पहले ही किसी तरह की रोज़गार सुरक्षा नहीं थी और आमदनी बहुत ही कम थी। सार्वजनिक स्थानों पर किसी भी तरह के आयोजन में लोगों की संख्या पर लगी पाबंदियों के कारण विवाह जैसे सामाजिक अवसरों पर लोगों की संख्या में गिरावट आयी। सेलून और इस्तरी आदि कामों में भी ग्राहकों की संख्या बहुत कम हो गयी। सेवा क्षेत्र के बहुत सारे स्वरोज़गार करने वाले लोग जैसे फोटोग्राफर, बाजे वाले, बाल काटने वाले, इस्तरी करने वाले और फेरी लगाने वालों को लॉकडाउन की पाबंदियों में ढिलाई के बाद भी वापस पटरी पर आने में बहुत संघर्ष करना पड़ रहा है। चूंकि अभी भी उनके ग्राहक पहले जितने नहीं हैं इसलिए उनकी सीमित आमदनी और भी कम रह गयी है। लोगों ने बताया कि ज़्यादातर अनौपचारिक क्षेत्र मज़दूरों को लॉकडाउन में ढिलाई के बाद भी कोई राहत नहीं मिली। महामारी के चलते बहुत सारी पाबंदियां अभी भी कायम थीं इसलिए उनकी आर्थिक असुरक्षा में कोई कमी आती दिखायी नहीं दे रही थी।

[57] आरडब्ल्यूए किसी खास शहरी बस्ती या समूह के निवासियों का प्रतिनिधित्व करने वाला संगठन होता है।

[58] आधार कार्ड भारत सरकार द्वारा जारी किया जाने वाला 12 अंकों का एक विशिष्ट पहचान नंबर होता है।

अस्थिर आय का एक नतीजा ये हुआ कि लोगों को ब्याजशुदा कर्जों की किस्तें, ईएमआई और लॉकडाउन के दौरान खर्चा चलाने के लिए लिये गये कर्जों को चुकाने में बहुत दिक्कत हुई। सड़कों पर फेरी लगाने वाली सिमरन ने बताया कि लॉकडाउन के दौरान *"उनके कर्जदाताओं ने उन्हें परेशान नहीं किया।"* मगर जैसे ही लॉकडाउन की सख्ती कुछ कम होने लगी, कर्ज देने वाले जल्दी से जल्दी कर्जा चुकाने के लिए उनको धमकाने लगे। सिमरन ने इलाज के मद में कर्जा लिया था।

> *मैं उसका कर्ज़ा नहीं चुका सकती थी सो मैंने उसको 50,000 रुपये दे दिये। मैंने उसे कहा "मेरे पास अभी कोई काम नहीं है इसलिए भैया आप अभी ये 50,000 रुपये रख लें।" इस पर वह बोला, "ये कोई पैसा है? तुम्हें 1,00,000 रुपये देने हैं और तुम ये दे रही हो? मैं घर आकर तुम्हें देख लूंगा। मैं चार आदमी लेकर आऊंगा जो तुम्हारी अकल ठिकाने लगा देंगे। जब भी तेरी लड़की बाहर निकलेगी, उसे टांगों से पकड़कर घसीटूंगा।"*

स्थिर आमदनी के अभाव में सिमरन जैसे अनौपचारिक मज़दूरों के सामने कर्ज में फंसने का और भी ज़्यादा खतरा पैदा हो गया था क्योंकि अब उन्हें सूदखोरों को बहुत ज़्यादा ब्याज चुकाना पड़ रहा था। कुछ लोगों को कर्जा न चुका पाने की वजह से मारपीट भी झेलनी पड़ी। जन साहस (2020बी)[59] का कहना है कि जिन मज़दूरों के इंटरव्यू लिये गये उनमें से 79% से भी अधिक (984 में से 774) का कहना था कि वे निकट भविष्य में अपना कर्जा नहीं चुका सकेंगे। लगभग 146 (984 में से) ने कहा कि उनको अंदाजा नहीं है कि इससे उन पर क्या असर पड़ेगे। इससे समाज के हाशिये के लोगों की दर्दनाक वास्तविकता का पता चलता है। 50% से ज़्यादा मज़दूरों को इस बात का डर था कि कर्जा न चुका पाने पर उनके साथ मारपीट भी हो सकती है। महामारी ने बहुत सारे लोगों को भीषण गरीबी की कगार पर ला दिया है जिससे भारतीय शहरों में बड़े पैमाने पर फैली शहरी असमानता व गरीबी और ज़्यादा भयावह रूप लेने लगी है (बत्रा एवं अन्य,2021)। इस संकट ने उन्हें कर्ज चक्र में ढकेल दिया है और उनके सामने कर्ज अदा न करने पर हिंसा की आशंका भी बढ़ती जा रही है।

इससे इन लोगों के मानसिक स्वास्थ्य पर भी भारी असर पड़ रहा है। चारूलता जोकि घरेलू कामगार हैं, ने बताया कि *"कोई काम या नौकरी न होने की वजह से रोटी के लिए जो कर्जा लिया था"* उसको चुकाने के बारे में वे कितनी चिंतित हैं। लिहाज़ा, कर्ज अदायगी असुरक्षित समुदाय के लिए भारी चिंता का विषय है और लॉकडाउन के बाद जितना वे अपनी ज़िंदगी को पटरी पर लाने की कोशिश कर रहे हैं, उतना ही ये चिंता उनको बेचैन कर रही है। निश्चय ही कुछ लोग इस संकट का औरों के मुकाबले कुछ बेहतर ढंग से सामना कर पाए हैं। उदाहरण के लिए, परचून की दुकान पर काम करने वाली रेणुका *"इसको लेकर आशावान हैं कि हालात बेहतर होंगे"* और वह महामारी के असर से उबरने में कामयाब होगी।

लॉकडाउन के बाद काम पर लौटने वाले मज़दूरों ने खुद को और अपने ग्राहकों को वायरस से बचाने के लिए कोविड-19 स्वास्थ्य प्रोटोकॉल्स का भी संजीदगी से पालन किया है। सेंथिल प्लम्बर का काम करते हैं। उन्होंने बताया कि उनके ग्राहकों में डर समाया हुआ है और वे कहते हैं कि *"उनके घर आने से पहले मैं अपने हाथ अच्छी तरह धो लूं। वे मुझे मास्क पहनने को देते हैं।"* इसी तरह, सैलून चलाने वाले आनंद ने भी बताया कि उन्होंने अपनी दुकान में किस तरह की सुरक्षा उपाय किये हैं ताकि ग्राहकों को सुरक्षित महसूस हो और वे नियमित तौर से दुकान पर आने लगें।

> *जो ग्राहक दुकान पर आते हैं हम उनको सेनेटाइज़र देते हैं और सीटों पर लाइज़ॉल[60] छिड़कते हैं। पूरी दुकान को साफ करते हैं और हर समय फेस मास्क पहन कर रखते हैं। दस्ताने भी पहनते हैं।*

इन सारी कोशिशों के बावजूद कुछ मज़दूर अभी भी *"हिचकिचाते"* हैं। वे शेविंग के लिए खुद अपने *"तौलिये और ब्लेड"* लेकर आते हैं। आनंद भी उनको कहते हैं कि यदि लोग घर से सामान लाना चाहते हैं तो वे ला सकते हैं। जैसे-जैसे लोग अपनी ज़िंदगी को दुबारा पटरी पर लाने की कोशिश कर रहे हैं, ये स्वास्थ्य चिंताएं एक बार फिर अहम होती जा रही हैं।

स्कूलों के बंद होने की वजह से सभी बच्चे घरों में फंस गये हैं और लॉकडाउन के दौरान उनकी पढ़ाई-लिखाई में भारी बाधाएं आयी हैं। इसका ब्यौरा रिपोर्ट के पिछले भागों में देखा जा सकता है। त्रिची के आकड़ों और ब्यौरों से सबसे संवेदनशील समुदायों के बच्चों की दुर्दशा का पता चलता है। जिन लोगों ने अपने बच्चे सरकारी स्कूलों में दाखिल कराए

[59] जन साहस ने उत्तरी एवं मध्य भारत में प्रवासी निर्माण मज़दूरों पर कोविड-19 से पड़े प्रभावों को समझने के लिए मार्च-अप्रैल 2020 में एक अध्ययन किया था।द्य

[60] लाइज़ॉल फर्श साफ करने का एक कीटनाशक रसायन है जिसको काउंटरटॉप और फर्नीचर साफ करने के लिए भी इस्तेमाल किया जा सकता है।

हैं, उनको इस बात से राहत है कि वहां बच्चों को मिड डे मील योजना के तहत निशुल्क अनाज मिलने लगा है।[61] घरेलू कामगार मीना का कहना है कि उनकी बेटी आठवीं कक्षा में पढ़ती है जिसे स्कूल की तरफ से मासिक सूखा राशन मिलता है – *"कच्चा चावल, दस अंडे और दाल।"* सरकारी स्कूलों में सूखे राशन के अलावा बच्चों को निशुल्क किताबें भी दी जा रही हैं। लॉकडाउन के बाद तमिलनाडु राज्य सरकार द्वारा चलाए जा रहे स्कूलों के लिए *"कालवी थोलाईकच्ची"* चैनल शुरू किया गया है और इसकी मदद से टेलीविजन के माध्यम से भी बच्चों को साथ जोड़ने की कोशिश की जा रही है। इस चैनल पर बच्चों के लिए सरकारी पाठ्यचर्या के अनुसार कार्यक्रम प्रसारित किये जाते हैं। सोमवार से शुक्रवार तक पूर्वनिर्धारित समय पर शिक्षकों द्वारा पढ़ाए जाने वाले अध्याय भी प्रसारित किये जाते हैं (मानव संसाधन विकास मंत्रालय, 2020)। निजी स्कूलों ने भी व्हॉट्सएप और गूगल मीट जैसे विभिन्न ऑनलाइन प्लेटफॉर्म्स के जरिये बच्चों तक पहुंचने की कोशिशें की हैं।

कुछ सहभागियों ने माना कि महामारी की वजह से पैदा हुए हालात के चलते ऑनलाइन शिक्षा एक 'ज़रूरत' बन गयी थी मगर कई लोगों ने इस बात पर भी जोर दिया कि उनके पास ऑनलाइन लर्निंग के लिए साधन और पहुंच नहीं थी। स्मार्ट फोन और टीवी जैसे साधन न होने के बारे में लोगों ने कई परेशानियां गिनायीं। उन्होंने सॉफ्टवेयर के संबंध में पैदा होने वाले तकनीकी समस्याओं, डेटा की ज़रूरत और बैंडविड्थ की ज़रूरत; फ़ीस वसूली पर सरकार की तरफ से लगायी गयी रोक के बावजूद फ़ीस अदा करने के दबावों पर भी लोगों ने बात की। इन सब चीज़ों से ऑनलाइन टीचिंग-लर्निंग की गुणवत्ता पर असर पड़ा है। अनौपचारिक क्षेत्र मज़दूरों के बच्चों, खासतौर से प्राइवेट स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों के पास ज़रूरी संसाधन नहीं थे जिसकी वजह से उनकी पढ़ाई-लिखाई प्रायः बंद हो गयी थी। ये समस्याएं दिल्ली के एक तबके में महसूस की गयी समस्याओं से मेल खाती हैं। आजीविका छिन जाने के आर्थिक तनाव तथा स्कूलों के बंद हो जाने से बहुत सारे बच्चे बाल मज़दूरी के लिए विवश कर दिये गये क्योंकि बच्चों की मज़दूरी सस्ती मानी जाती है और वे मालिकों को किसी तरह से परेशान भी नहीं कर सकते (क्राई, 2020)। शाह और लूथरा (2020)[62] ने बताया है कि 235 प्रवासी बच्चों में से 5% का कहना है कि अब वे स्कूल नहीं जाएंगे, 17% ने बताया कि घर में उनके साथ मारपीट होने लगी है और लगभग 42% बच्चे घर के कामों में पहले से ज़्यादा हाथ बंटाने लगे हैं। जिन परिवारों में खाने और नकदी की किल्लत है, उनके बच्चों के सामने स्कूल न लौटने का खतरा काफी ज़्यादा है (घटक एवं अन्य, 2020)। बाद में, डिजिटल डिवाइड और शिक्षा प्रक्रिया के अस्त-व्यस्त हो जाने से न केवल हाशियाई बच्चों के सामने मौजूद खतरे बढ़ गये हैं बल्कि उनकी लर्निंग का भी भारी नुकसान हुआ है। इससे शैक्षिक असमानता को और ज़्यादा बढ़ावा मिलेगा जिसको शिक्षा के निजीकरण और शिक्षा पर होने वाले सरकारी व्यय में कटौती के साथ-साथ नवउदारवादी नीतिगत उपायों से भी संस्थागत मान्यता मिलती जा रही है (बत्रा एवं एन्य, 2021)।

निष्कर्ष और मुख्य सीख

भारत में शहरीकरण फिलहाल सबसे बड़ी रूपांतरकारी परियोजना है। एक कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था से एक सेवा केंद्रित अर्थव्यवस्था की ओर जबर्दस्त विचलन के चलते एक ऐसा जनसांख्यिकीय बदलाव आ रहा है जिसने भारतीय शहरों में शिक्षित युवाओं और कुशल बेरोजगारों की विशाल आबादी तैयार कर दी है। मगर ये शहर इस भारी दबाव की वजह से अनियोजित ढंग से फैलते जा रहे हैं जबकि बुनियादी ढांचे और लोक सेवाओं में इज़ाफ़ा उतनी तेजी से नहीं हो रहा है। गरीबी, सामाजिक व आर्थिक असमानताएं भारतीय शहरों में एक बड़ी चुनौती हैं क्योंकि सामाजिक, आर्थिक व भौतिक असुरक्षाओं के बीच अर्थव्यवस्था का अनौपचारिक स्वरूप सघन होता जा रहा है। भारतीय शहर और कस्बे आर्थिक गतिविधि और अवसरों के केंद्र हैं और उनसे उम्मीद की जाती है कि वे गरीबी को दूर करने में सफल होंगे। विरोधाभास यह है कि ये शहर असमानता को दूर करने के बजाय दैनिक और संरचनात्मक असुरक्षाओं का एक बड़ा केंद्र बनते जा रहे हैं। शहरी परिवारों में से 17.4% परिवार झुग्गी बस्तियों में रहते हैं (जनगणना, 2011)। ऐसे में शहरों में रहने वाले अनौपचारिक क्षेत्र मज़दूर असुरक्षा के जटिल और परिवर्तनशील पहलुओं से जूझते हैं। उन्हें अनौपचारिक रोज़गार मिलता

---

[61] मिड डे मील योजना सरकारी एवं सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों में प्राइमरी कक्षाओं (आयु 5-9) और अपर प्राइमरी कक्षाओं (आयु 10-15 वर्ष) के बच्चों को निशुल्क पोषाहार प्रदान करने के लिए शुरू की गयी थी (एमडीएम, 2018)। महामारी के दौरान प्राथमिक स्कूलों के बच्चों को 3.1 किलोग्राम चावल और 2 किलो दाल जबकि अपर प्राइमरी कक्षाओं के बच्चों को 4.65 किलोग्राम चावल और 1.25 किलोग्राम दाल दी गयी थी (दि हिंदू, 2020बी)।

[62] इस अध्ययन में हाशियाई और गरीब परिवारों के 1598 अभिभावकों तथा 989 बच्चों (11-17 वर्ष) से बात की गयी। इन लोगों को दो जनसंख्या समूहों में बांटा जा सकता है : प्रवासी (606 अभिभावक और 235 बच्चे) तथा सेव द चिल्ड्रेन के सहभागी (992 अभिभावक तथा 754 बच्चे)।

है और बहुत कम तनख़्वाह पर काम करना पड़ता है। उनके पास न तो नौकरी की सुरक्षा होती है और न ही उन्हें नियमों के अनुसार मज़दूरी मिलती है। वे अनौपचारिक कर्ज अर्थव्यवस्था के एक जटिल जाल में उलझे रहते हैं क्योंकि उनके पास औपचारिक वित्तीय संस्थानों से कर्जा लेने की स्थिति नहीं होती। वे बेहद दयनीय सुविधाओं वाले घरों में रहते हैं जहां पानी और सफाई का भी इंतजाम नहीं होता। उनके सामने हमेशा उजाड़ दिये जाने का खतरा बना रहता है और बहुधा वे बहुत खतरनाक व्यवसायों में काम करते हैं। हमारे शहर ऐसे प्रवासी मज़दूरों के लिए एक प्रमुख गंतव्य बन गये हैं जिनके पास शहरी जीवन में कोई राजनीतिक 'आवाज़' नहीं होती और उन्हें अपने ही दम पर इन सारी चुनौतियों से जूझना पड़ता है।

हालांकि भारत के शहर नाना प्रकार की चुनौतियों से जूझ रहे हैं मगर उन्हें इस महामारी की वजह से पैदा हुए हालात का भी जमकर सामना करना पड़ता है। इस शोध में हमारा मकसद ये पता लगाना था कि महामारी के दौरान मज़दूरों के सामने किस तरह की असुरक्षाएं पैदा हो रही हैं और अनलॉकिंग के लंबे दौर में वे किन हालात से गुज़रते हैं, उनके अनुभवों से नगर नियोजन के लिए क्या सबक सीखे जा सकते हैं :

(क) महामारी जैसी आपात स्थितियों में हमें ये सुनिश्चित करने के लिए प्रयास करना होगा कि हमें व्यापक पीड़ा का सामना न करना पड़े और मौजूदा असुरक्षाओं में किसी तरह का इज़ाफ़ा न हो;

(ख) गहरी और संरचनात्मक स्तर पर मौजूद बहुआयामी असुरक्षाओं को दूर करने के लिए लोक नीति के स्तर पर किस तरह की कोशिशें की जाएं; तथा

(ग) शहरों में विभिन्न प्रकार की असुरक्षा को चुनौती देने के लिए क्या निश्चित नीतिगत हस्तक्षेप तय किये जा सकते हैं।

संचालन के धरातल पर हमारा इरादा ये समझना था कि असुरक्षित आबादी की बेहतरी सुनिश्चित करने के लिए किस तरह के हस्तक्षेपों पर काम किया जा सकता है। यानी, स्थानीय विकास एवं डिलीवरी रूपरेखा में किस तरह के विचारों का समावेश करना ज़रूरी है। मकसद ये था कि लोगों की असुरक्षाओं के स्वरूप और आयामों को समझा जाए और लिहाज़ा हमने लोगों के व्यवसाय के आधार पर अलग-अलग असुरक्षित समूहों पर ध्यान केंद्रित किया है। हमने स्वरोज़गारी लोगों, मासिक तनख़्वाह पाने वालों दिहाड़ी या साप्ताहिक तनख़्वाह पाने वालों को केंद्र में रखकर अपना अध्ययन किया है। हम ये समझना चाहते थे कि महामारी ने उनके स्वास्थ्य, आजीविका और उनके बच्चों की शिक्षा को किस तरह प्रभावित किया है। हम ये भी समझना चाहते थे कि इस संकट से असुरक्षाओं के कौन से आयामों को और ज़्यादा बढ़ावा मिला है, कौन सी असुरक्षाएं परस्पर जुड़ी हुई हैं; इन असुरक्षाओं से निपटने के लिए सरकारी या गैर-सरकारी राहत कार्यों का स्वरूप क्या रहा है, तथा उनसे लोगों की पीड़ा को दूर करने में मदद मिली है या नहीं। *कुल मिलाकर, इरादा यही समझने का था कि किसी भी तरह के हालात का सामना करने में सक्षम और टिकाऊ शहरों की रूपरेखा तैयार करने के लिए किन असुरक्षाओं पर ध्यान देना ज़रूरी है और उनका किस तरह समावेश किया जा सकता है।*

लॉकडाउन की वजह से लोग काम पर नहीं जा पाए, उनकी नौकरियां और आमदनी खत्म हो गयी और उन्हें बिजली, गैस व भाड़ा ही नहीं बल्कि भोजन पर होने वाला मामूली खर्चा करने के लिए भी दिन-रात संघर्ष करना पड़ा। उन्होंने परिवार, दोस्तों और सूक्ष्म वित्त संस्थानों से कर्जे लेकर, आमदनी के नये स्रोत ढूंढकर, घर के गहने गिरवी रखकर या बची-खुची बचत के सहारे ये संकट का दौर गुज़ारा है। जान-पहचान या सूक्ष्म वित्त संस्थानों से कर्जा और वैकल्पिक काम करने की कोशिश सबसे ज़्यादा लोगों ने की है। इससे पता चलता है कि अस्थिर और मामूली आमदनी की वजह से गरीब मज़दूरों के बीच बचत की संभावना कितनी कम रहती है। सरकारी निकायों व कार्यक्रमों ने राशन कार्ड के जरिये (अल्प आय सामाजिक सुरक्षा) निशुल्क पीडीएस राशन (सब्सिडाइज्ड खाद्य पदार्थ) और आर्थिक सहायता प्रदान करने की कोशिश की है। मगर, पीडीएस व्यवस्था में मौजूद संरचनात्मक बाधाओं की वजह से इन उपायों का लाभ भी प्रायः लोग नहीं उठा पाए। इस व्यवस्था के तहत राशन कार्ड के बिना मदद नहीं मिल सकती थी मगर बहुत सारे लोगों के पास राशन कार्ड नहीं थे क्योंकि या तो उनके आवेदन अभी मंजूर नहीं हुए हैं या वे पात्रता कसौटी पर खरे नहीं उतरते। इसके अलावा, राशन कार्डों की पोर्टेबिलिटी न होना भी एक समस्या है क्योंकि इसकी वजह से प्रवासी मज़दूर अपने गृह क्षेत्र के बाहर कहीं राशन नहीं ले सकते थे।[63] जो लोग राजकीय सहायता की व्यवस्था के बाहर हैं या जिन्हें राजकीय सहायता नहीं मिल पा रही है, उनको गैर-सरकारी ताकतों ने खाद्य सहायता और आर्थिक मदद मुहैया कराने के साथ-साथ बच्चों की

[63] यह भाग देखें : सरकारी उपाय।

शिक्षा, कोविड-19 जागरूकता अभियान, मास्क वितरण, दस्ताना वितरण और प्रवासी मज़दूरों के लिए परिवहन आदि के रूप में कुछ ज़रूरतों को पूरा करने की कोशिश की है।

लॉकडाउन के बाद भी कुल आर्थिक स्थिति बेहद अस्थिर ही बनी हुई थी क्योंकि नकद आय अभी भी बहुत कम थी जिसकी वजह से लोग घरेलू मज़दूरों को पहले जितनी तनख़्वाह देने या मकानों की मरम्मत जैसे काम दुबारा शुरू करने में कतरा रहे थे।[64] कोविड-19 के चलते सामाजिक आयोजनों में लोगों की संख्या पर लगी पाबंदी और काम के समय पर लगी सीमाओं से भी[65] लोगों की आजीविका के मामले में वैसा सुधार नहीं आया है जैसा आना चाहिए था। चूंकि मज़दूर कोविड से पहले और लॉकडाउन के दौरान भी अपना गुज़ारा चलाने के लिए कर्जों पर आश्रित थे इसलिए बहुत सारे मज़दूरों को स्थिर आमदनी के अभाव में अपने कर्जे चुकाने में और ज़्यादा मुश्किलें पेश आ रही हैं। एक सार्वभौमिक आर्थिक सुरक्षा व्यवस्था के अभाव और एक अस्थिर ऋण व्यवस्था के चलते और सरकारी आदेशों (भाड़े की वसूली पर रोक, काम के घंटों में छूट, स्कूली फ़ीस की वसूली पर रोक संबंधी आदेश) के ढीले-ढाले क्रियान्वयन की वजह से इन लोगों की आर्थिक असुरक्षा और ज़्यादा बढ़ गयी थी। बच्चों की शिक्षा भी रुक गयी थी क्योंकि उनके पास निजी स्कूलों में दी जा रही ऑनलाइन शिक्षा में हिस्सेदारी के लिए ज़रूरी आर्थिक और भौतिक संसाधन नहीं थे जिसकी वजह से उनके सामने लर्निंग संबंधी समस्याएं पैदा हुई हैं जो आने वाले समय में शैक्षिक असमानता को फैलाने और गहरा करने में अहम भूमिका निभाएंगी। मज़दूरों के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को भी गहरा आघात पहुंचा है क्योंकि उन्हें रोज़ाना भोजन के लिए संघर्ष करना पड़ा और वे आजीविका छिन जाने तथा अनिश्चित भविष्य को लेकर लगातार त्रस्त और तनावग्रस्त रहने लगे हैं।

त्रिची के अनौपचारिक मज़दूरों के अनुभवों पर गौर करें तो यही लगता है कि महामारी ने उनकी *आर्थिक* और *भौतिक असुरक्षाओं* को पूरी तरह सामने ला दिया है। दूसरी तरफ उनकी *सामाजिक असुरक्षा* भी उजागर हो गयी है क्योंकि अब वायरस के नाम पर[66] उनके ग्राहक (मसलन सैलून के मामले में) और मालिक (घरेलू कामगारों के मामले में) भी उनके साथ भेदभाव करने लगे हैं। ये लोग ऐसी विविध प्रकार की असुरक्षाओं को ढो रहे हैं जो जटिल भी हैं, सबको अलग-अलग ढंग से प्रभावित कर रही हैं, और दैनिक जीवन में परस्पर गुंथी हुई हैं। यह बात महामारी के दौरान स्पष्ट रूप से सामने आ गयी है। लोगों के लिए सबसे बड़ी चिंता का विषय रोज़गार ही था मगर इस संकट ने कई प्रकार की परिवर्तनशील और मनोगत असुरक्षाओं को भी उजागर कर दिया है। उदाहरण के लिए, रोज़गार के अभाव *(आर्थिक असुरक्षा)* से उन लोगों पर ज़्यादा गंभीर असर पड़े जिन्हें अपने मकानों के भाड़े चुकाने थे *(भौतिक असुरक्षा)*। जिन्हें बाद में चुकाने की छूट थी उनके लिए हालात तुलनात्मक रूप से आसान थे।

आमदनी कम होने या खत्म हो जाने की वजह से पैदा हुई आर्थिक असुरक्षाओं ने लोगों की भौतिक व सामाजिक असुरक्षाएं बढ़ा दी हैं क्योंकि उन्हें सस्ते आवास, न्यूनतम भोजन और बच्चों की शिक्षा जारी रखने के लिए भी संघर्ष करना पड़ रहा है।

जहां तक भाड़े का सवाल है, ऐसे मकान मालिकों के लिए भी परेशानी पैदा हुई जिनके लिए मकान का किराया ही मुख्य आमदनी थी।[67] इससे पता चलता है कि शहरी अर्थव्यवस्था में लोग कई स्तर पर असुरक्षाओं से जूझते हैं। इसके अलावा अपर्याप्त आवासीय सुविधाओं (भौतिक असुरक्षा) ने लोगों की रियायती दर पर खाद्य पदार्थ (पीडीएस राशन) पाने की संभावना को भी कुंद किया है।[68] इन असुरक्षाओं के मनोगत और परतबद्ध स्वरूप के साथ-साथ ये भी पता चलता है कि ये समस्याएं परिवर्तनशील हैं और लगातार नये रूप में सामने आ रही हैं। इन असुरक्षाओं के जीवित यथार्थ का लॉकडाउन के शुरुआत में मुख्य रूप से आर्थिक पहलू ही सबसे मुखर था और अनलॉकिंग के दौरान इससे थोड़ी राहत भी मिली

[64] यह भाग देखें : लॉकडाउन की पाबंदियों का निरंतर प्रभाव।
[65] यह भाग देखें : लॉकडाउन की पाबंदियों का निरंतर प्रभाव।
[66] यह भाग देखें : लॉकडाउन की पाबंदियों का निरंतर प्रभाव।
[67] यह भाग देखें : लॉकडाउन का फौरी प्रभाव।
[68] यह भाग देखें : सरकारी उपाय।

है। मगर मकानों के किराए (*भौतिक असुरक्षा*) और भोजन तक पहुंच का सवाल लॉकडाउन के बाद और भी ज़्यादा सघन रूप ले चुका है। मज़दूरों की सामाजिक पहचानें (*सामाजिक असुरक्षा*) लगातार परिवर्तनशील रही हैं क्योंकि वे शहर की अर्थव्यवस्था के परोक्ष चालक के स्थान पर कुछ ही दिनों में किसी भी तरह की सामाजिक सहायता से वंचित और पूरी तरह असहाय छोड़ दिये गये थे।

इस अध्ययन में इस बात को रेखांकित किया गया है कि असुरक्षा के विभिन्न आयाम - *आर्थिक, भौतिक* एवं *सामाजिक* - महामारी की वजह से किस तरह बढ़ गये हैं और इससे सबसे हाशियाई तबकों पर अभूतपूर्व प्रकार के असर पड़े हैं। इस संकट के दौरान शहरों में उनके लिए जगह मानो खत्म हो गयी थी, शहर की लोक सेवाएं उनको मदद देने में नाकाम साबित हुई और संभवतः बहुत सारे लोग पहले से भी ज़्यादा गरीबी में जा चुके हैं। विश्व बैंक का अनुमान है कि 2021 के अंत तक 11-15 करोड़ नये लोग गहन गरीबी में जा चुके होंगे और इनमें से 82% लोग मध्य आय देशों के होंगे (2020बी)।

इस भारी आर्थिक उथल-पुथल को अंकुश में लाने के लिए ज़रूरी है कि ऐसी रणनीतियां विकसित की जाएं जो भविष्य में आने वाले संकटों से निपटने में मदद दे सकें, ठोस प्रक्रियाएं विकसित की जाएं ताकि एक टिकाऊ और हालात का मुकाबला करने में सक्षम शहरों का निर्माण किया जा सके। महामारी जैसे संकट के हालात में हमारी राहत प्रक्रिया में सभी प्रभावितों के लिए तत्काल और पर्याप्त भोजन, खर्चों से निपटने के लिए नकद सहायता और अल्प एवं दीर्घ काल में आजीविका को दुबारा खड़ा करने के लिए मदद का पूरा बंदोबस्त शामिल होना चाहिए। इसके लिए सबसे पहली ज़रूरत तो यही है कि पीडीएस राशन का सही अर्थों में सार्वभौमीकरण किया जाए। यानी, जिन लोगों के पास राशन कार्ड नहीं हैं उन्हें भी राशन दिया जाए तो एफपीएस के माध्यम से खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने में काफी मदद मिल सकती है। नकदी सहायता के लिए राशन की दुकानों, पोस्ट ऑफिसों और बैंक खातों में सीधे पैसा भेजा जा सकता है।

महामारी जैसी आपात स्थितियों में पहली प्रतिक्रिया ये होनी चाहिए कि लोगों की पीड़ा कम करने के लिए सभी को भोजन व ज़रूरी नकदी सहायता दी जाए और तत्काल व निकट भविष्य में आजीविका बहाल करने में मदद दी जाए।

हमें इस बात का एक व्यवस्थागत ब्यौरा तैयार करना होगा कि कि संकटग्रस्त लोग कौन हैं, कहां हैं और सरकारी व गैर-सरकारी तंत्र के लिए उन तक पहुंचने का सबसे अच्छा तरीका क्या है। हमें गरीब और असुरक्षित लोगों का फर्क भी समझना होगा और ऐसी सहायता व्यवस्था विकसित करनी होगी जो तमाम असुरक्षित आबादी और दस्तावेजों में दर्ज 'गरीबों', सभी ज़रूरतमंदों तक पहुंच सके। यह लक्ष्य हासिल करने के लिए मौजूदा रिकॉर्ड व्यवस्था को दुरुस्त करना होगा और नयी 'पंजिकाएं' तैयार करनी होंगी ताकि असुरक्षित आबादी का पूरा ब्यौरा सरकार के पास रहे। इसके अलावा, एक संकटपूर्व उपाय के तौर पर ये भी सुनिश्चित करना होगा कि डिलीवरी व्यवस्था ऐसी हो जो संकट के क्षणों में संकटग्रस्त लोगों तक तुरंत पहुंचने में मदद दे सके। मसलन, महामारी के दौरान दिल्ली के सरकारी स्कूलों में बड़े पैमाने पर तात्कालिक राहत किचेन शुरू किये गये जिससे बहुत सारे ज़रूरतमंद लोगों को समय पर खाना मुहैया कराया जा सका (भान एवं अन्य, 2020)। हमें मौजूदा डिलीवरी व्यवस्था का नयी कल्पनाशीलता के साथ सुदृढ़ीकरण करना होगा। उदाहरण के लिए, ऑटो ड्राइवरों और फेरी वालों को खाद्य सुरक्षा कार्यक्रमों में क्रियान्वयन एवं डिलीवरी तंत्र का हिस्सा बनाया जा सकता है।

सरकार को इस बात का सही-सही हिसाब रखना खहिए कि असुरक्षित लोग कितने और कहां हैं ताकि संकट के समय उन तक पहुंचने के लिए सबसे कारगर तरीके ढूंढे जा सकें।

हमारे अध्ययन से पता चलता है कि भोजन, शिक्षा आवास और रोज़गार के लिहाज़ से मौजूदा शहरी संरचनाएं महामारी जैसे झटके झेलने की हालत में तो निश्चय ही नहीं हैं बल्कि उन्होंने असुरक्षा के विविध आयामों को और ज़्यादा सघन बना दिया है। लिहाज़ा लोचदार और टिकाऊ शहर बनाने के लिए हमारा मत है कि लोक नीति प्रयासों में गरीबी के स्थिर आयामों के बजाय परिवर्तनशील असुरक्षाओं को ध्यान में रखते हुए लोक नीति और सामाजिक सुरक्षा की रूपरेखा तय करनी होगी। महामारी ने पहले से असुरक्षित अनौपचारिक क्षेत्र मज़दूरों की हालात से निपटने की जो व्यवस्थाएं (जैसे कर्जे लेने या बचत का इस्तेमाल करने) पहले से मौजूद थीं उनको भी कमज़ोर कर दिया है और कई मामलों में तोड़ भी दिया।

कोविड के बाद अब हमें ऐसी शहरी रोज़गार योजनाओं के बारे में सोचना होगा जो पर्याप्त सामाजिक बुनियादी ढांचा विकसित करने में मदद दे सके जिससे संकट से निपटने, तनाव कम करने और लोगों की निरंतर आर्थिक व सामाजिक उन्नति सुनिश्चित करने में मदद मिले (भान, 2020)। महामारी के बाद हमें आवास और खाद्य व्यवस्था पर खासतौर से गौर करना होगा। स्थानीय शासकीय निकाय और निजी संस्थाएं गरीब बस्तियों के लोगों के साथ मिलकर बुनियादी ढांचा विकास परियोजनाओं की रूपरेखा तय कर सकते हैं। ओडिशा में जग मिशन[69] का उदाहरण स्थानीय स्तर पर नये रोज़गार पैदा करने और एक ऐसा समग्र सामाजिक बुनियादी ढांचा विकसित करने में मार्गदर्शन कर सकता है जो सेवा डिलीवरी को सुधारने में मददगार हो। जैसा कि राय चौधरी एवं अन्य (2020) ने कहा है, नीति निर्माताओं के लिए ज़रूरी है कि वे ऋण एवं असुरक्षा के परस्पर जुड़े पहलुओं को समझें और केवल इस बात पर ही जोर न दें कि लोगों की आमदनी छिन गयी है। शहरी प्रेक्टिशनर्स को मौजूदा संस्थागत ऋण व्यवस्था की समीक्षा करनी होगी और उन्हें ज़्यादा संवेदनशील व मददगार बनाने के तरीके ढूंढने होंगे। इस क्रम में स्वयं सहायता समूहों (एसएचजी) परिघटना से मिले जबर्दस्त उदाहरणों को और ज़्यादा मजबूत करना होगा।

गरीबी की स्थिर मापों पर जोर देने के बजाय असुरक्षाओं के बहुपरती और गतिशील स्वरूप को ध्यान में रखते हुए लोक नीति के माध्यम से हमें एक मज़बूत सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था विकसित करनी होगी।

---

[69] जग मिशन ओडिशा सरकार द्वारा चलायी जा रही एक स्लम स्तरोन्नयन परियोजना है जिसके तहत राज्य भर की 2,000 बस्तियों में दो लाख से अधिक परिवारों को जमीन के अहस्तांतरणीय पट्टे दिये गये हैं। इस परियोजना में स्वयं सहायता समूहों (एसएचजी), स्लम डवलपमेंट एसोसिएशनों (एसडीए) की स्थापना करके समुदाय से ही निवासियों की ज़रूरतों का पता लगाया जाता है और यही लोग परियोजना के क्रियान्वयन साझीदार भी होते हैं (चक्रबर्ती, 2020)।

TE | SF

आजीविका

इस अध्ययन में हमने ये समझने की कोशिश की है कि महामारी से त्रिची शहर में अनौपचारिक क्षेत्र मज़दूरों पर क्या असर पड़े हैं और उन्होंने सरकारी व गैर-सरकारी राहत उपायों से लाभ लेने के लिए किस तरह की जद्दोजहद की है।

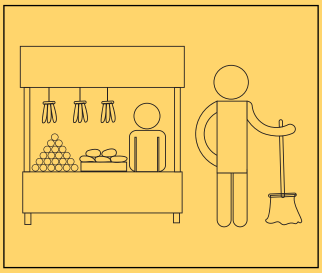

अनौपचारिक मज़दूरों की आजीविका और जीवन

महामारी ने अनौपचारिक क्षेत्र मज़दूरों की आजीविका के नाज़ुक स्वरूप को बेपर्दा कर दिया है। उनकी तनख़्वाह कम होती है, वे सुरक्षा प्रावधानों के अभाव में कठोर शारीरिक श्रम करते हैं।

महामारी के दौरान मज़दूरों की असुरक्षा - आर्थिक (आमदनी और आजीविका का अभाव), भौतिक (सस्ते मकानों का अभाव), और सामाजिक (जाति, काम पर आधारित भेदभाव) - न केवल खुलकर सामने आ गयी बल्कि और सघन हुई है।

संकट से निपटने के तरीके और राहत प्रयास

कर्जा लेना, कीमती चीज़ों को रेहन रखना, कोई नया धंधा ढूंढने जैसे स्वयं सहायता प्रयास तथा भोजन, आर्थिक सहायता और कोविड-१९ स्वास्थ्य जागरूकता जैसे कार्यक्रम फायदेमंद रहे हैं मगर ये अल्पकालिक उपाय हैं।

मगर ये अल्पकालिक उपाय नाकाफी साबित हुए हैं क्योंकि उन्होंने भावी आर्थिक व भौतिक असुरक्षाओं को और ज़्यादा बढ़ा दिया।

खाद्य राशन और आर्थिक मुआवजा देने के लिए शुरू किये गये सरकारी राहत प्रयास निश्चित मानकों पर आधारित थे और अपनी संरचनात्मक खामियों और कठोर पात्रता कसौटियों की वजह से समावेशी नहीं बल्कि बेदखली पर आधारित थे।

गैरसरकारी प्रयासों में बड़े पैमाने के राहत कार्यों के लिए ज़रूरी संसाधनों का साफ अभाव पाया गया।

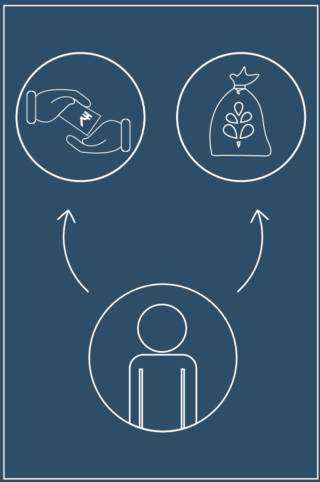

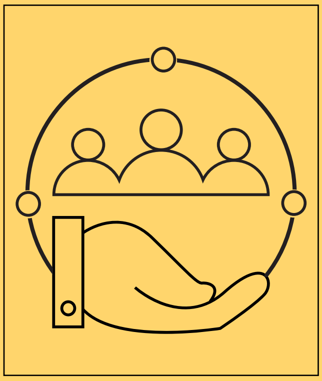

सामाजिक सुरक्षा उपायों की पुनर्कल्पना

महामारी जैसी आपात स्थितियों में व्यापक पीड़ा पर अंकुश लगाने के लिए हमें अपनी नीतियों को नये ढंग से सोचना होगा और उन्हें प्रभावित लोगों के लिए भोजन, नकद सहायता और आजीविका बहाली के उद्देश्यों पर केंद्रित करना होगा।

असुरक्षित लोगों और उनकी जगहों का विस्तृत रिकॉर्ड तैयार करना होगा ताकि उन तक पहुंचने के लिए उचित व्यवस्था विकसित की जा सके। इसके लिए मौजूदा और 'नयी' सामाजिक पंजिकाएं तैयार की जा सकती हैं।

सामाजिक सुरक्षा उपायों की रूपरेखा को जटिल, आपस में जुड़ी और परिवर्तनशील असुरक्षाओं के बहुआयामी रूप को ध्यान में रखते हुए नये सिरे से निर्धारित करना होगा।

निष्कर्ष

कोविड-19 महामारी शुरू होने के बाद शिक्षा संस्थान साल भर से ज़्यादा समय तक बंद रहे। भारत सरकार ने महामारी का हवाला देते हुए शिक्षा को ऑनलाइन प्लेटफ़ॉर्म्स पर केंद्रित कर दिया। स्कूलों और उच्च शिक्षा संस्थानों को निर्देश दिया गया कि वे ऑनलाइन लर्निंग प्लेटफॉर्म तैयार करें और इन चेष्टाओं को 'शिक्षा का भविष्य' घोषित कर दिया गया। कोविड-19 संकट को ऑनलाइन लर्निंग सपोर्ट सिस्टम के माध्यम से लर्निंग आउटकम्स पर ध्यान केंद्रित करने के नवउदारवादी एजेंडा को आगे बढ़ने के अवसर के रूप में देखा जाने लगा।

ऐसा लगता है कोविड-19 महामारी ने जीवन बनाम आजीविका के विवादास्पद विरोधाभास की आड़ में अलग-अलग प्रकार के हितों को साथ लाने का काम किया है जिसमें ये बात नज़रअंदाज होती जा रही है कि इस संकट से बच्चों और युवाओं की शिक्षा, पोषण और मानसिक स्वास्थ्य पर कितने गहरे नकारात्मक असर पड़े हैं।

जब पूरी शिक्षा व्यवस्था को जबरन डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म्स पर केंद्रित किया गया तो समाज के सबसे हाशियाई समुदायों के बच्चे बहुत तेजी से शिक्षा की प्रक्रिया और व्यवहारों से कटते चले गए। व्यावसायिक और तकनीक केंद्रित संस्थान स्कूलों को बंद किये जाने के इस मौके को एक बड़े मुनाफ़े के अवसर के रूप में देख रहे हैं। उनके अनुसार, मौजूदा संकट ये दिखाता है कि "डिजिटल लर्निंग कामयाब हो सकती है" और लंबे लॉकडाउन से "व्यावसायिक कंपनियों को पिछड़े समुदायों के लिए उत्पाद तैयार करने के लिए उत्प्रेरक मुहैया हो सकते हैं" (सीएसएफ 2020ए)। राज्य सरकारें स्कूलों में डिजिटल टेक्नॉलॉजी के इस्तेमाल को बढ़ाने के लिए सरकारी खजाने से पैसा खर्च करने के लिए पूरी तरह तैयार हैं। लॉकडाउन के दौरान इस बदलाव की वजह से 25 करोड़ बच्चे क्लासरूम्स के बाहर जा चुके हैं मगर सरकारें भारी खर्चा करके गैरसरकारी स्रोतों से डिजिटल प्लेटफार्म ख़रीदने पर आमादा हैं।

कई गैर-सरकारी ताकतों ने इस मद में एजेंडा तय करने में अहम भूमिका अदा की है। ये ऐसे लोग व संस्थायें हैं जो ग्लोबल एडवोकेसी नेटवर्कों की ओर से केंद्र एवं राज्य सरकारों के साथ घनिष्ठ रूप से मिलकर काम कर रहे हैं। चूंकि अभिभावक कथित रूप से शिक्षा के लिए प्राइवेट स्कूलों को प्राथमिकता देते हैं इसलिए देश में सरकारी स्कूलों[70] में विद्यार्थियों की संख्या गिरकर 65% तक रह गयी है जबकि विभिन्न राज्यों के लर्निंग स्तरों में सुधार अभी भी नहीं आ रहा है (असर, 2019बी)। ये कोविड-19 महामारी के दौरान पैदा हुए गंभीर शैक्षिक संकट के कारणों में से एक है। इस दौरान बहुत सारे कम फ़ीस लेने वाले निजी स्कूल दिवालिया और फलस्वरूप बंद हो चुके हैं क्योंकि बहुत सारे लोगों की आय व आजीविका नहीं बची है और लिहाज़ा वे इन स्कूलों की सस्ती फ़ीस अदा करने की स्थिति में भी नहीं रह गये हैं। इसके साथ ही, निजी क्षेत्र के पैरोकार राज्य पर इस बात के लिए दबाव डाल रहे हैं कि इन स्कूलों को एमएसएमई का दर्जा देकर उनको सरकारी सहायता से पुनर्जीवित किया जाए (सीएसएफ, 2020ए)। इस रिपोर्ट में दिये गये साक्ष्यों से पता चलता है कि बहुत सारे बच्चे एक बार फिर निजी स्कूलों को छोड़कर सरकारी स्कूलों में लौट रहे हैं। इसे सरकारी स्कूली तंत्र को फिर से पुनर्जीवित करने के अवसर के रूप में देखा जाना चाहिए।

उच्च शिक्षा संस्थानों में बेदखली की चुनौती डिजिटल असमानताओं के कारण केवल पहुंच की चुनौती नहीं है। डिजिटल लर्निंग के साधन जुटाने की ज़िम्मेदारी विद्यार्थियों के कंधों पर ढकेलकर उच्च शिक्षा संस्थानों ने दरअसल वंचित समुदायों पर एक और बोझ डाल दिया है।

इसके फलस्वरूप शिक्षा के व्यवसायीकरण और कॉमोडीफिकेशन को जो बढ़ावा मिला है उससे उच्च शिक्षा की लागत बढ़ जाएगी और सामाजिक न्याय व समता की ओर बढ़ने में भारी परेशानियां पैदा होंगी।

[70] यूनिफाइड डिस्ट्रिक्ट इन्फॉर्मेशन सिस्टम फॉर एजुकेशन (यूडाइस, 2018)। स्रोत : http://udiseplus.gov.in/mainhome#.

महामारी ने इस बात को एक बार फिर रेखांकित कर दिया है कि राज्य और शिक्षा संस्थान समाज के सबसे कमज़ोर विद्यार्थियों को मदद देने की अपनी संवैधानिक ज़िम्मेदारी से हाथ पीछे नहीं खींच सकते। लिहाज़ा राज्य और शिक्षा संस्थानों को जाति, जेंडर व क्षेत्र के आधार पर पिछड़ रहे विद्यार्थियों को आगे लाने के लिए खासतौर पर कोशिश करनी चाहिए।

ये हैरत की बात नहीं है कि मौजूदा संकट और लंबे समय तक चले लॉकडाउन ने शासन को जोर-जबर्दस्ती और निरंकुश तौर-तरीके अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया है। इसी का नतीजा है कि टीचर्स को किसी तैयारी के बिना ही शिक्षा के डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म्स अपनाने के लिए मजबूर किया जा रहा है। शिक्षा के उपकरणवादी लक्ष्यों, जैसे कौशल और क्षमता विकसित करना, पर अनावश्यक जोर दिये जाने से "ज्ञान" ही एक नये ढंग से परिभाषित हो रहा है और यहां तक कि उसको हाशिये पर ढकेला जा रहा है (बत्रा, 2020ए)। ऑनलाइन प्लेटफ़ॉर्म्स के इस्तेमाल को बढ़ाना और ऑनलाइन लर्निंग को स्कूली व उच्च शिक्षा के भविष्य के रूप में पेश करना भारत की नई शिक्षा नीति (भारत सरकार, 2020बी) में व्यक्त की गयी भावना से मेल खाता है और इससे उच्च शिक्षा में भारत का सकल दाखिला अनुपात और ऊपर जाने वाला है (भट्टाचार्य, 2020)।

सरकार को चाहिए कि वह स्कूली और उच्च शिक्षा में व्यय बढ़ाए जबकि निजी ताकतों की ज़िम्मेदारी है कि वे शिक्षा को मुनाफ़ाखोरी के अवसर के रूप में न देखें बल्कि समावेशी शिक्षा और विविधता को एक अनिवार्य व सार्थक राष्ट्रीय लक्ष्य के रूप में देखें।

कोविड-19 महामारी ने जीवन बनाम आजीविका का विवादास्पद विरोधाभास पैदा करके विभिन्न प्रकार के हितों को एक दिशा में केंद्रित करने का अवसर पैदा किया है। जीवन बनाम आजीविका के इस विरोधाभास में बच्चों व युवाओं, खासतौर से उनकी शिक्षा पर पड़े बेइंतहा असर, पोषण सुरक्षा, मानसिक स्वास्थ्य में आ रही गिरावट को नज़रअंदाज कर दिया जाता है। शिक्षा के डिजिटलीकरण को शैक्षिक असमानता व लर्निंग के खराब स्तर के एकमात्र समाधान के रूप में एक रामबाण औषधि की तरह पेश किया जा रहा है। इससे पिछले कुछ दशकों के दौरान मिली शैक्षिक उपलब्धियां भी हाथ से जा सकती हैं क्योंकि इससे बेहतर बैंडविड्थ, उपकरणों और नवीनतम सॉफ्टवेयर से लैस बच्चों और इनसे वंचित करोड़ों बच्चों के बीच एक नया फासला पैदा हो जाएगा। ऑनलाइन शिक्षा पर जिस तरह से जोर दिया जा रहा है, उससे स्तरीय शिक्षा और "लर्निंग क्राइसेस" जैसे सवालों पर चल रही बहुत सारी महत्वपूर्ण बहसें लगभग पूरी तरह अप्रासंगिक हो जाएंगी (बत्रा, 2020ए)।

लॉकडाउन के प्रभावों ने देश के करोड़ों लोगों के नाजुक हालात और उन्हें एक टिकाऊ ढंग से मदद दे पाने की सरकारी एवं औपचारिक व्यवस्थाओं की क्षमता को बेनकाब कर दिया है। इस संकट ने बहुत सारे हाशियाई समुदायों के सामने मौजूद जोखिमों - रोज़गार छिनने से लेकर भुखमरी और भयानक गरीबी तक - को और गंभीर रूप दे दिया है जिनसे इन समुदायों के बच्चों की शिक्षा व स्वास्थ्य के लिए गहरे दुष्परिणाम सामने आएंगे। *जामलो वॉक्स : ऐन इलस्ट्रेटेड बुक एबाउट लाइफ ड्यूरिंग लॉकडाउन*[71] बच्चों के लिए तैयार की गयी एक किताब है जिसमें सबसे असुरक्षित लोगों पर 2020 के लॉकडाउन के प्रभावों की बानगी पेश की गयी है। इसमें पता चलता है कि अन्याय और असमानता किस तरह हमारे रोज़मर्रा संबंधों और बातचीत में पैठ बनाए हुए है। महामारी ने गरीबों, बेघरों, सामाजिक रूप से वंचितों, प्रवासियों, शरणार्थियों और अनौपचारिक बस्तियों में रहने वालों के सामने मौजूद भयानक आर्थिक, चिकित्सकीय, जातीय, जेंडर और शिक्षा संबंधी असमानताओं को उजागर व सघन कर दिया है। इसने उन संरचनात्मक कमजोरियों और असमानताओं को

[71] देखें समीना मिश्रा एवं तरिक अज़ीज़ (2021)।

भी सामने ला दिया है जो संकट के समय न केवल एक-दूसरे को सींचती हैं बल्कि अलग-अलग समुदायों, इलाकों और संस्थानों पर अलग-अलग ढंग से अपना असर छोड़ती हैं।

प्रस्तुत अध्ययन इस बात पर रोशनी डालता है कि महामारी के दौरान *आर्थिक, भौतिक* एवं *सामाजिक* असुरक्षाओं के विभिन्न आयाम और भी ज़्यादा गंभीर हो गये हैं। खुशहाली और सम्मान का जीवन जीने की उम्मीद में शहरों में आकर बसे लोगों के जीवन फिर से बुरी तरह अस्तव्यस्त हो गए हैं। महामारी से साफ हो गया है कि ये लोग शहर के लिए अभी भी पराए हैं, उसकी लोक सेवाएं इन लोगों को मदद देने में विफल साबित हुईं और बहुत सारे लोग अब नये सिरे से गरीबी के चक्र में जा फंसे हैं। अनुमानों से पता चलता है कि 2020 के आखिर तक 1.5 करोड़ मज़दूरों का रोज़गार छिन चुका था और लगभग 23 करोड़ लोग गरीबी की रेखा से नीचे जा चुके थे (एपीयू,2021)। ज़ाहिर है कि इन लोगों के बच्चों की शिक्षा पर गहरा असर पड़ा है और इस तरह एक पीढ़ी सीखने के अवसरों से वंचित हो गयी है जिससे उनके जीवन अवसरों में गिरावट निश्चित है। अनौपचारिकता जिस तरह हमारे शहरों का अभिन्न हिस्सा बन गई है, उसी तरह हमारी शिक्षा में भी एक बुनियादी चुनौती बन गयी है। यदि हम इन परस्पर जुड़ी चुनौतियों को संबोधित करना चाहते हैं तो हमें ढीली-ढाली नियमन व्यवस्था के तहत आने वाले प्राइवेट स्कूलों और उच्च शिक्षा व्यवस्था पर बहुत गंभीरता से ध्यान देने की ज़रूरत है।

भले ही हम अपनी आर्थिक गतिविधियों में अनौपचारिकता को खत्म न कर पाएं मगर हम एक ऐसा प्रभावी और कुशल श्रम बाजार ज़रूर तैयार कर सकते हैं जिसमें ठोस सामाजिक सुरक्षा प्रावधान मौजूद हों। जटिल, परस्पर जुड़ी और परतबद्ध असुरक्षाओं को संबोधित करना निकट भविष्य में लोक नीति का एक निर्णायक लक्ष्य होना चाहिए जोकि इस शोध में साफ दिखायी पड़ता है।

महामारी ने इस तथ्य को एक बार फिर स्थापित कर दिया है कि हमारे शहरों में रहने वाले हाशियाई लोगों की संख्या उससे कहीं ज़्यादा है जितना सरकारी आंकड़े हमें बताते हैं। भारत की शहरी व्यवस्थाएं न केवल हाशिये पर रहने वालों को मूलभूत सेवाओं तक समान पहुंच प्रदान करने की दृष्टि से कमज़ोर हैं बल्कि स्कूल और उच्च शिक्षा संस्थानों तक पहुंच को कुंद करने के लिहाज़ से बेदखली को भी बढ़ावा देती हैं। हमें परस्पर जुड़ी शहरी चुनौतियों, जिनमें शैक्षिक असमानता को बढ़ाने वाली चुनौतियां भी शामिल हैं, को संबोधित करने के लिए जाति, जेंडर, समुदाय, वर्ग और क्षेत्र आधारित दुर्बलताओं पर गंभीरता से ध्यान देने की ज़रूरत है। शहरी असमानता और असुरक्षाओं के निरंतर परिवर्तनशील स्वरूप को समझने और ध्यान रखने से शहरी नीति व व्यवहारों को कहीं ज़्यादा न्यायसंगत, समतापरक और मानवीय बनाने में मदद मिल सकती है।

References

Aajeevika Bureau (2020). *Unlocking the urban: Reimagining migrant lives in cities post Covid-19.* Udaipur: Aajeevika Bureau. Retrieved from https://www.aajeevika.org/assets/pdfs/Unlocking%20the%20Urban.pdf

Agarwal, P. (2006). Higher Education in India: The need for change. *Working Paper, No.180, Indian Council for Research on International Economic Relations (ICRIER), New Delhi*, *40*(3). DOI: https://doi.org/10.4324/9780429305962-14

Ahvaan Trust. (2020). *Quarterly Programme Update*.

Anand, S., Bhan, G., Idicheria, C., Jana, A. & Koduganti, J (2014) *Locating the debate: Poverty and vulnerability in urban India.* Bengaluru: Indian Institute for Human Settlements. Retrieved from https://iihs.co.in/knowledge-gateway/wp-content/uploads/2015/07/IIHS-RF_Poverty_Edited-changes-accepted_Reduced-size.pdf

Apoorvanand (2021, May 29). Why UGC's proposal for 'blended teaching' is a bad idea. *The Indian Express*. Retrieved from https://indianexpress.com/article/opinion/columns/ugc-online-classes-blended-teaching-covid-7334748/

APU (Azim Premji University) (2020). *COVID-19 livelihood survey-compilation of findings*. Bengaluru: Azim Premji University. Retrieved from https://cse.azimpremjiuniversity.edu.in/

APU (Azim Premji University) (2021). *State of working India 2021: One year of Covid-19.* Bengaluru: Azim Premji University. Retrieved from https://cse.azimpremjiuniversity.edu.in/wp-content/uploads/2021/05/State_of_Working_India_2021-One_year_of_Covid-19.pdf

ASER (2019). *Annual Status of Education Report (Rural) 2018*. New Delhi: ASER Centre.

Batra, P. (2020a). NEP 2020: Undermining the Constitutional Education Agenda? *Social Change, 50*(4), 594-598.
Batra, P. (2020b). Re-imagining curriculum in India: Charting a path beyond the pandemic. *Prospects,* 1-18.

Batra, P., Revi, A., Bazaz, A., Singh, C. & Poonacha, P. (2021). *TESF India background paper*. Bristol: TESF and IIHS.DOI: https://doi.org/10.5281/zenodo.4331432

Bazaz, A., Jana, A., Revi, A. & Malladi, T. (2016). *Urban India 2016: Evidence*. Bengaluru: Indian Institute for Human Settlements

Béteille, A. (2010, April 22). Viable universities - Set conflicting goals, centres of higher learning cannot prosper. *The Telegraph*. Retrieved from https://www.telegraphindia.com/opinion/viable-universities-set-conflicting-goals-centres-of-higher-learning-cannot-prosper/cid/532832

Bhagat, R. B., Reshmi, R. S., Sahoo, H., Roy, A. K., & Govil, D. (2020). *The Covid-19, migration, and livelihood in India.* Mumbai: International Institute for Population Sciences.

Bhan, G, Chowdhury, A; Margosa, N; Sampat, K & Sohane, N (2020) *Lessons for social protection from the COVID-19 lockdowns report 1 of 2: State relief*. Delhi/Bengaluru: Indian Institute for Human Settlements. DOI: https://doi.org/10.24943/LSPCL11.2020

Bhan, G. (2020, May 27). View: India should make its cities worker friendly. *The Economic Times.* Retrieved from https://economictimes.indiatimes.com/news/economy/policy/view-india-should-make-its-cities-worker-friendly/articleshow/76047166.cms?from=mdr

Bhattacharya, S. (2020). What is so wrong with online teaching? *Economic and Political Weekly, 55*(23),19–21.

Bissoyi, S. K. (2018, October 14). The perils of inequality: The ugly face of Delhi. *Daily O.* Retrieved from https://www.dailyo.in/politics/delhi-poverty-aam-aadmi-party-education-rte-anganwadi-bjp-odf-water-swachh-bharat/story/1/27180.html

Bose, A. (2021, June 12). Pulled Out of School, Pushed Into Marriage: What the Pandemic is Doing to India's Teenaged Girls. *News 18.* Retrieved from https://www.news18.com/news/buzz/pulled-out-of-school-pushed-into-marriage-what-the-pandemic-is-doing-to-indias-teenaged-girls-2665297.html

Census of India (2011). *District census handbook: Tiruchirappalli. Village and town wise primary census abstract*. Tamil Nadu: Directorate of census operations.

Central Square Foundation (CSF) (2020a). The future of EdTech: Gaps and learnings from implementation during Covid-19. An interview with Prachi Windlass, Director of Education at the Michael & Susan Dell Foundation in India. *The Edge* Retrieved from https://www.centralsquarefoundation.org/articles/The-future-of-EdTech-gaps-and-learnings-from-implementation-during-COVID-19-prachi-windlass-msdf.html

Central Square Foundation (CSF) (2020b). *State of the Sector Report on Private Schools in India*. Retrieved from https://centralsquarefoundation.org/State-of-the-Sector-Report-on-Private-Schools-in-India.pdf

Chakrabarty, A. (2020). COVID-19, JAGA Mission and the value of already existing solutions. *International Institute for Environment and Development.* Retrieved from https://www.iied.org/covid-19-jaga-mission-value-already-existing-solutions

Child Rights And You (CRY) (2020). *COVID-19: Its impact on children*. Retrieved from https://www.cry.org/wp-content/uploads/2020/08/COVID-19-Its-Impact-on-Children.pdf

City Development Plan (CDP). *City development plan for Tiruchirappalli local planning area draft final report*. Tiruchirappalli: Infrastructure Management and Advisory Services Private Limited

Das, S. (2007). The higher education in India and the challenge of globalisation. *Social Scientist*, 47-67.

Deccan Herald. (2020, April 06*).* COVID-19 lock down: TCS offers free, 15 day digital certification programme. *Deccan Herald.* Retrieved from https://www.deccanherald.com/business/covid-19-lockdown-tcs-offers-free-15-day-digital-certification-programme-821954.html

Department of School Education & Literacy. (2020). *PRAGYATA Guidelines for Digital Education*. Ministry of Human Resource Development.
https://www.mhrd.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/pragyata-guidelines_0.pdf

Deshpande, S., & Zacharias, U. (Eds.). (2013). *Beyond inclusion: The practice of equal access in Indian higher education*. New Delhi: Routledge.

EMpower (2021) *Covid in her Voice: A girl-lead and a centred participatory research study.* Delhi: EMpower. Retrieved from
https://empowerweb.org//assets/uploads/publications/COVID_In_Her_Voice.pdf

Ghatak, N., Yareseeme, A. S. & Jha, J. (2020). *Life in the time of Covid-19: Mapping the impact of Covid-19 on the lives of school-going children especially girls in India*. Centre for Budget and Policy Studies and India Champions for Girls' Education. Retrieved from http://cbps.in/wp-content/uploads/Report-Final-1.pdf

Ghosh, R. (2020, November 03). In Odisha, Children of Returnee Migrants See Bleak Future with School Closure Notice. *News Click.* Retrieved from https://www.newsclick.in/Odisha-Children-Returnee-Migrants-Bleak-Future-School-Closure-Notice

Government of India (GoI) (2020a) *Allowing identified urban street vendors to sell essential items during the lockdown period due to COVID-19*. New Delhi: Ministry of Housing and Urban Affairs, Government of India

Government of India (GoI) (2020b). National education policy. New Delhi: Department of School Education and Literacy, MHRD. Retrieved from
https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf

Government of Tamil Nadu (GoTN) (2020a). *Public Distribution System.* G.O. (Ms) No. 72. Chennai: Government of Tamil Nadu

Government of Tamil Nadu (GoTN) (2020b). *Violation of the lockdown measures on maintaining social distance.* GO. (D). No. 195. Chennai: Government of Tamil Nadu

Government of Tamil Nadu (GoTN) (2020c). *Extending restrictions in the territorial jurisdiction of the state of Tamil Nadu up to 30.06.2020 with guidelines and relaxations*. GO. (Ms). No. 262. Chennai: Government of Tamil Nadu

Hindustan Times (2020, May 20). As Delhi returns to work, RWAs set guidelines for domestic help. Retrieved from https://www.hindustantimes.com/delhi-news/rwas-set-rules-for-domestic-help/story-kJZfeBofu4oi0df0enLxQN.html

Iftikhar, F. (2020, June 13). Two more Delhi teachers succumb to COVID-19, others demand protective gear. *Hindustan Times*. Retrieved from https://www.hindustantimes.com/delhi-news/two-more-delhi-teachers-succumb-to-virus-others-demand-protective-gear/story-ZBXg0LS4XyUniPISGntkOO.html

IGSSS. (2020). *Seeking justice for the informal sector during Covid-19 lockdown: An analysis of government policy for informal sector workers during the nationwide lockdown*. IGSSS

Indian Express (2021, April 10). As learning moves online amid COVID-19, EWS students worst hit: Survey. *Indian Express.* Retrieved from https://indianexpress.com/article/education/lack-of-infrastructure-to-move-online-students-find-learning-amid-covid-19-hard-ews-worst-hit-6355212/

Jain, G., Jigyasu, R., Gajjar, S.P. & Malladi, T. (2015). *Cities provide transformational opportunity to reduce risk accumulation.* Bengaluru: Indian Institute for Human Settlements.

Jain, S., Lall, M., Singh, S. (2020) Teachers' voices on the impact of Covid-19 on school education: Are ed-tech companies really the panacea? *Contemporary Education Dialogue, 18 (1) 58-89.*DOI: https://journals.sagepub.com/doi/full/10.1177/0973184920976433

Jan Sahas (2020b). *Voices of the invisible citizens: A rapid assessment on the impact of Covid-19 lockdown on internal migrant workers, recommendations for the state, industry & philanthropies*. Retrieved from https://freedomfund.org/wp-content/uploads/Voices-of-Invisible-Citizens.pdf

Jan Sahas. (2020a). *Rapid assessment report: The impact of Covid-19 lockdown on internal migrant workers in India.* New Delhi: Jan Sahas. Retrieved from https://coronapolicyimpact.org/2020/04/05/rapid-assessment-report-the-impact-of-Covid-19-19-lockdown-on-internal-migrant-workers-india/

Jayaram, N. (1977). Higher Education as status stabilizer: students in Bangalore. *Contributions to Indian Sociology*.

Juneja, N. (2010). Access to what? Access, diversity and participation in India's schools. Sussex: CREATE (Consortium for Research on Educational Access, Transitions and Equity). Retrieved from https://archive.azimpremjiuniversity.edu.in/sitepages/pdf/Scale-and-Diversity.pdf

Kumar, V. (2020). *The Perils of being poor in the age of Covid-19: A report on the situation of south Rajasthan migrant workers after the lockdown.* Udaipur: Aajeevika Bureau.

Madan, K. (2020, July 24). Migrant crisis or cosmopolitan crisis: India's middle-class apathy to the plight of the migrant class. *The New Leam.* Retrieved from https://www.thenewleam.com/2020/07/migrant-crisis-or-cosmopolitan-crisis-indias-middle-class-apathy-to-the-plight-of-the-migrant-class/

MHRD (2020). *India report: Digital education: Remote learning initiatives across India: June 2020.* New Delhi: Ministry of Human Resource Development, Government of India.

Mid-Day Meal Scheme (MDM) (2018). *About the Mid-Day Meal scheme*. Retrieved from: https://middaymeal.tn.gov.in/Pages/about

Ministry of Education. (2020). *All India Survey on Higher Education 2019-20.* New Delhi: Government of India.

Mishra, S. and Aziz, T. (2021). *Jamlo Walks: An Illustrated Book about Life During Lockdown.* Penguin Random House India Pvt. Ltd: India Puffin.

Mohanty, B. K. (2021, July 09). Pandemic excuse to sterilize syllabus. *The Telegraph Online.* Retrieved from https://www.telegraphindia.com/india/coronavirus-outbreak-pandemic-excuse-to-sterilise-syllabus-by-cbse/cid/1785782

MWSN (2020). *Citizens and the sovereign-Stories from the largest human exodus in contemporary Indian history*. Retrieved from http://ruralindiaonline.org/en/

Nair, J. (2019). Seeing like the Missionary: An Iconography of Education in Mysore, 1840–1920. *Studies in History*, *35* (2), 178–217. DOI: https://doi.org/10.1177/0257643019865233

National Statistics Office (NSO) (2020). *Annual report: Periodic labour force survey (PLFS) July 2018-June 2019.* New Delhi: Ministry of Statistics and Programme Implementation, Government of India. Retrieved from http://mospi.nic.in/sites/default/files/publication_reports/Annual_Report_PLFS_2018_19_HL.pdf

NCERT. (2020). *Student's Learning Enhancement Guidelines*. New Delhi: Department of School Education and Literacy. Retrieved from https://ncert.nic.in/pdf/announcement/Learning_%20Enhancement_Guidelines.pdf

Oxfam India. (2020). *Status report- Government and private schools during COVID-19*. Oxfam India. Retrieved from https://www.oxfamindia.org/sites/default/files/2020-09/Status%20report%20Government%20and%20private%20schools%20during%20COVID%20-%2019.pdf

Patil, S. M. (2021). Gender equity and COVID-19: Dalit standpoints. *Economic and Political Weekly*, *56* (11).

Pragati, B. H., Sudha, A., Dsouza, V., Chilgod, L. & Amin, A. (2020). Healthcare delivery in India amid the Covid-19 pandemic: Challenges and opportunities. *Indian Journal of Medical Ethic*, *5* (3), 215-218

Press Bureau of India (2020). *MHRD issues directions to UGC, AICTE, NTA, NIOS, CBSE, NCTE and all autonomous organisations under it for the postponement of all examinations till 31st March 2020 as a precautionary measure in the wake of Novel Coronavirus (COVID-19)*. New Delhi: Ministry of Education. Retrieved from https://pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=1607035

PUCL. (2020). *Broken slates and blank screens: Education under lockdown*. Maharashtra: PUCL. Retrieved from http://pucl.org/sites/default/files/reports/pucl%20lockdown%20series%20-%20education.pdf

Rajagopal, K. (2021, June 14). 'One Nation One Ration Card' scheme makes food security portable: Centre tells SC. *The Hindu.* Retrieved from https://www.thehindu.com/news/national/one-nation-one-ration-card-scheme-makes-food-security-portable-centre-tells-sc/article34810261.ece

Rai Chowdhury, A., Bhan, G., Sampat.K, & RMKU. (2020*). Impact of Covid-19 and lockdowns on domestic workers: First report*. Rajasthan Mahila Kaamgaar Union (RMKU) and the Indian Institute for Human Settlements (IIHS). DOI: https://doi.org/10.24943/ICLDW10.2020

Revi, A., Idicheria, C., Jain, G., Anand, G., Sudhira, H. S., Seddon, J., . . . Srinivasan, S. (2011). *Urban India 2011: Evidence.* Bengaluru: Indian Institute for Human Settlements.

Sangal, A. (2021, January 18) India Covid 19: New Delhi's teachers are being sent to the Covid frontlines, some without training, PPE or even pay. *CNN.* Retrieved from https://edition.cnn.com/2021/01/17/india/delhi-covid-teachers-frontlines-hnk-intl-dst/index.html

Sarkar, S. (2020). The Idea of a University in India. *Economic and Political Weekly, 55*(14). Retrieved from https://www.epw.in/journal/2020/14/commentary/idea-university-india.html#:~:text=Speaking%20of%20the%20%E2%80%9Cidea%20of,Catholic%20priest%20John%20Henry%20Newman%20

Sengupta, A., Kannan, K., Srivastava, R. S., Yugandhar, B. N., & Papola, T. S. (2007). *Report on social security for unorganised workers.* New Delhi: National Commission for Enterprises in Unorganised Sector.

Shah, F. & Luthra, D. (2020). A generation at stake: Protecting India's children from the impact of Covid-19. Gurugram. Retrieved from https://resourcecentre.savethechildren.net/node/18515/pdf/a_generation_at_stake_report_final_3.pdf

Sharma, K. (2021, January 28) Can't go back to classroom-only teaching, 'blended learning' is the future, say experts. *The Print.* Retrieved from https://theprint.in/india/education/cant-go-back-to-classroom-only-teaching-blended-learning-is-the-future-say-experts/590556/

Singh, G. (2020, June 14). Maid in India, banned by housing societies. *The New Indian Express.* Retrieved from https://www.newindianexpress.com/opinions/2020/jun/14/maid-in-india-banned-by-housing-societies-2156454.html
Srivastava, R. (2020). Labour Migration, vulnerability, and development policy: The pandemic as inflexion point?. *The Indian Journal of Labour Economics volume 63,* 859–883.

State Planning Commission (2017) *Tiruchirappalli: District human development report 2017.* Tiruchirappalli: State Planning Commission

Sudhira, H. S., Ramachandra, T. V., & Subrahmanya, M. H. B. (2007). Bangalore. *Cities*, *24* (5), 379–390. DOI: https://doi.org/10.1016/j.cities.2007.04.003

SWAN (2020a). *21 days and counting: Covid-19 lockdown, migrant workers, and inadequacy of welfare measures in India*. SWAN. Retrieved from http://strandedworkers.in/mdocuments-library/

SWAN (2020b). *To leave or not to leave: Lockdown, migrant workers, and their journeys home*. SWAN. Retrieved from http://strandedworkers.in/mdocuments-library/

SWAN (2020c). *32 days and counting: Covid-19 lockdown, migrant workers, and inadequacy of welfare measures in India*. SWAN. Retrieved from http://strandedworkers.in/mdocuments-library/

SWAN (2020d). *No data, no problem: Government of India in denial about migrant worker deaths and distress in the monsoon session of parliament.* SWAN. Retrieved from https://www.im4change.org/upload/files/SWAN%20Response%20to%20GoI%26%23039%3Bs%20Data%20on%20Migrant%20Workers%26%23039%3B%20Deaths.pdf

The Hindu (2020, July 24). Online Education: With scanty access to the Internet, the poor are excluded. *The Hindu.* Retrieved from: https://www.thehindubusinessline.com/opinion/editorial/online-education-with-scanty-access-to-the-internet-the-poor-are-excluded/article32185041.ece

The Hindu (2020a, April 23). Government to distribute herbal concoction to boost immunity. *The Hindu.* Retrieved from https://www.thehindu.com/news/national/tamil-nadu/government-to-distribute-herbal-concoction-to-boost-immunity/article31415335.ece

The Hindu (2020b, July 03). Primary and upper primary school children to get dry rations under midday meal scheme. *The Hindu.* Retrieved from https://www.thehindu.com/news/national/tamil-nadu/primary-and-upper-primary-school-children-to-get-dry-rations-under-midday-meal-scheme/article31979470.ece

The Logical Indian (2021, April 29) Teachers Died During Panchayat Poll Duty in UP: Teachers' Unions. *The Logical Indian.* Retrieved from https://thelogicalindian.com/trending/577-teachers-died-panchayat-poll-duty-uttar-pradesh-sec-27996

Tilak, J. B. G. (2012). Higher Education Policy in India in Transition. *Economic & Political Weekly*, *47* (13), 36–40.

Tilak, J. B. G. (2015). How Inclusive Is Higher Education in India? *Social Change*, *45* (2), 185–223.DOI: https://doi.org/10.1177/0049085715574178

Tiruchirappalli City Municipal Corporation (2021). *City information.* Retrieved from https://www.trichycorporation.gov.in/cityinfo.php#menu

Tomar S. (2021, June 2) 850 teachers died of Covid during pandemic-related duties in Madhya

Pradesh. *The Hindustan Times*. Retrieved from https://www.hindustantimes.com/cities/bhopal-news/850-teachers-died-of-covid-during-pandemic-related-duties-in-madhya-pradesh-101622621584385.html

Tukdeo, S. (2014). The not-so-hidden power of mobility and education: Indian diaspora, knowledge industries and the development imperatives. *Diaspora Studies*, *7* (1), 56–69. DOI: https://doi.org/10.1080/09739572.2013.871892

Tukdeo, S. (2015). Class divided: Global pressures, domestic pulls and a fractured education policy in India. *Policy Futures in Education*, *13* (2), 205–218. DOI: https://doi.org/10.1177/1478210314567287

Tukdeo, S., & Mali, A. (2021). Urban Dislocations and the Politics of Educational Access: Metro Colonies, Bengaluru.. *Education and the Urban India, 14,* 1-28.

UNESCO (2020). *Education: From disruption to recovery*. Paris: UNESCO.

United Nations, Department of Economic and Social Affairs, Population Division (2019*). World urbanization prospects: The 2018 revision* (ST/ESA/SER.A/420). New York: United Nations. Retrieved from https://population.un.org/wup/Publications/Files/WUP2018-Report.pdf

World Bank (2020a). *The Covid-19 pandemic: Shocks to education and policy responses.* Washington, DC: World Bank. Retrieved from: https://openknowledge.worldbank.org/bitstream/handle/10986/33696/148198.pdf?sequence=4&isAllowed=y

World Bank (2020b) *Reversal of fortunes: Poverty and share prosperity 2020.* Washington DC: World Bank. Retrieved from https://openknowledge.worldbank.org/bitstream/handle/10986/34496/9781464816024.pdf

Yadav, S. (2020, July 28). 43,000 children shift from private to government schools in Haryana. *The Tribune*. Retrieved from https://www.tribuneindia.com/news/schools/43-000-children-shift-from-private-to-government-schools-in-haryana-119027

Appendix

पैनल चर्चाओं और फोकस ग्रुप डिस्कशंस का ब्यौरा :

क्र. स.	ऑनलाइन पैनल चर्चा का शीर्षक	तारीख	पैनलिस्टों का विवरण		
			नाम	पद	संगठन
1.	कोविड-19 महामारी के दौरान प्रवासी मज़दूरों के लिए राहत उपाय : गैर-सरकारी संगठनों की प्रतिक्रिया	30 सितंबर, 2020	चंदन कुमार	राष्ट्रीय संयोजक	वर्किंग पीपुल्स चार्टर
			क्रति गुप्ता	संयोजक	पारस इंडिया, दिल्ली
			राघव मेहरोत्रा	शोधकर्ता	आजीविका ब्यूरो, उदयपुर
			आशीष सूद	संयोजक	स्ट्रेंडेड वर्कर्स ऐक्शन नेटवर्क, (स्वान), गुड़गांव नागरिक एकता मंच (जीएनईएम)
2.	कोविड-19 का स्कूली शिक्षा पर प्रभाव : गैरसरकारी संगठनों की प्रतिक्रिया (पैनल 1)	05 अक्तूबर, 2020	अनुस्तुप नायक	डायरेक्टर, क्लासरूम इंस्ट्रक्शंस ऐण्ड प्रेक्टिस टीम	सेंट्रल स्क्वेयर फाउंडेशन
			अर्जुन सान्याल	सीनियर प्रोग्राम मैनेजर	आगा ख़ान फाउंडेशन, नई दिल्ली
			सयांतनी गड्डम	एग्ज़ीक्यूटिव डायरेक्टर	आह्वान, नई दिल्ली
			मिहिका शर्मा	सीनियर मैनेजर - प्रोग्राम मैनेंजमेंट	प्रथम, दिल्ली
			शेषाद्री आनंदराव	राज्य प्रमुख (कर्नाटक)	
			शेषाद्री रविंद्रनाथ	एसोसिएट डायरेक्टर - रिसर्च ऐण्ड इम्पेक्ट	ड्रीम ए ड्रीम, बेंगलोर
3.	कोविड-19 का स्कूली शिक्षा पर प्रभाव : गैरसरकारी संगठनों की प्रतिक्रिया (पैनल 2)	06 अक्तूबर 2020	लीना राजोरिया	सीनियसर को-वर्कर - एजुकेशन	एसओएस विलेज ऑफ़ इंडिया, नई दिल्ली
			नंदिनी मिश्रा	करिक्युलम डिज़ाइनर	

			ईशा प्रशांत	प्रोजेक्ट इन्चार्ज, (लिंकिंग कम्युनिटी ऐण्ड स्कूल्स टुवड्र्स क्वालिटी एजुकेशन, खेड़, पुणे) महाराष्ट्र प्रोजेक्ट	एकलव्य फाउंडेशन, भोपाल
			त्रिशला	प्रोजेक्ट इन्चार्ज (ट्रांसफ़ॉर्मिंग लर्निंग आउटटकम्स इन 'मिशन अंत्योदय' ब्लॉक्स), मध्य प्रदेश प्रोजक्ट	
			पूर्णिमा गुप्ता	प्रोग्राम डायरेक्टर - वीमेन्स लिट्रेसी ऐण्ड एजुकेशन	निरंतर, नई दिल्ली
			जसवंत कौर	एग्ज़िक्यूटिव डायरेक्टर	दीपालय, नई दिल्ली
4.	कोविड- 19 के दौरान असमानताएं	23 अक्तूबर, 2020	आशिमा फ्रीडॉग	सहसंस्थापक एवं संपादक	The life of Science.com
			कोयल घोष	मैनेजिंग ट्रस्टी	सैफ़ो फॉर इक्वॉलिटी, कोलकाता
			कुमार शैलाभ	को-डायरेक्टर	हक़ : सेंटर फॉर चाइल्ड राइट्स, नई दिल्ली
			ऋतुपर्णा बोराह	सहसंस्थापक एवं सहनिदेशक	नज़रिया, दिल्ली
ऑनलाइन फोकस ग्रुप डिस्कशन					
1.	कोविड- 19 से उच्च शिक्षा पर पड़े प्रभाव	29 अक्तूबर, 2020	बैचलर्स ऑफ एलीमेंटरी एजुकेशन प्रोग्राम (बीएलएड), दिल्ली विश्वविद्यालय की 27 छात्राएं		

TE | SF

टीईएसएफ एक जीसीआरफ फ़ंडेड नेटवर्क प्लस है। इसका समन्वय युनिवर्सिटी ऑफ़ ब्रिस्टल से किया जा रहा है और इसे भारत, रवांडा, सोमालिया/सोमालियालैंड, दक्षिण अफ़्रीका, युनाइटेड किंगडम और नीदरलैंड्स के साथ संयुक्त रूप से क्रियान्वित किया जा रहा है।

हम टिकाऊ भविष्य हेतु शिक्षा के रूपांतरण के उद्देश्य से साझा शोध में विश्वास रखते हैं। टीईएसएफ के साझीदार संगठन ये हैं :

इंडियन इंस्टिट्यूट फ़ॉर ह्यूमन सेटलमेंट्स
रोड्स युनिवर्सिटी

ट्रांसपेरेंसी सॉल्यूशंस
युनिवर्सिटी ऑफ़ ब्रिस्टल
युनिवर्सिटी ऑफ़ नॉटिंघम
युनिवर्सिटी ऑफ़ रवांडा
वेगेनिंजन युनिवर्सिटी

www.tesf.network
info@test.network
@TransfomingESF

TE | SF India
Transforming Education for Sustainable Futures

iihs®
INDIAN INSTITUTE FOR HUMAN SETTLEMENTS

www.tesfindia.iihs.co.in